प्रमुख उपनिषदों एवं आधुनिक विज्ञान में कार्य–कारण सिद्धान्त

(Pramukha Upaniṣadon evam Ādhunika Vijñāna mein Kārya-Kāraṇa Siddhānta)

पीएच. डी. उपाधि हेतु

शोध–प्रबन्ध

शोध निर्देशक

प्रो. राम नाथ झा

शोधकर्त्री

प्रियंका उपाध्याय

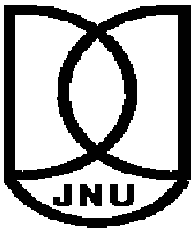

विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली – 110067

2017

विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली – 110067

SPECIAL CENTRE FOR SANSKRIT STUDIES
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI – 110067

8 June 2017

DECLARATION

I declare that the Thesis entitled 'प्रमुख उपनिषदों एवं आधुनिक विज्ञान में कार्य–कारण सिद्धान्त' submitted by me for the award of degree of **Doctor of Philosophy** is an original research work and has not been previously submitted for any other degree or diploma in any other Institution/University.

Priyanka

Priyanka Upadhyay

विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली – 110067

SPECIAL CENTRE FOR SANSKRIT STUDIES
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI – 110067

8 June 2017

CERTIFICATE

The Thesis entitled '**Pramukha Upaniṣadon evam Ādhunika Vijñāna mein Kārya-Kāraṇa Siddhānta**' submitted by Priyanka Upadhyay to **Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi -110067** for the award of degree of **Doctor of Philosophy** is an original research work and has not been submitted so far, in part or full, for any other degree or diploma in any University. This may be placed before the examiners for evaluation.

Prof. Girish Nath Jha
(Chairperson)

PROF. GIRISH NATH JHA
Chairperson
Special Centre for Sanskrit Studies
Jawaharlal Nehru University
New Delhi-110067, INDIA

08/06/2017
Prof. Ram Nath Jha
(Supervisor)

Dr. Ram Nath Jha
Professor
Special Cetre for Sanskrit Studies
Jawaharlal Nehru University
New Delhi-110067

“ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥”

(ईशावास्योपनिषद्, शान्ति मंत्र)

प्राक्कथन

उपनिषदों में भौतिक एवं आध्यात्मिक जगत् का संश्लेषण करते हुए एक संतुलित दृष्टि प्रदान की गयी है जिसका मुख्य उद्देश्य व्याप्त भेददृष्टि को समाप्त करते हुए एकत्वानुभूति को स्थापित करना है । यह मौलिक एकता एवं अभिन्नता आधुनिक वैज्ञानिक चिन्तन का भी विषय है । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध 'प्रमुख उपनिषदों एवं आधुनिक विज्ञान में कार्य–कारण सिद्धान्त' का उद्देश्य समग्र ब्रह्माण्ड का एक ही कारण है, यह सिद्ध करना है । जिसे ऋषियों ने बहुत पहले ही अनुभूत किया तथा विज्ञान में भी आज उसे स्वीकार किया गया है । ब्रह्माण्ड के कण–कण में ब्रह्म (परमतत्त्व) की सत्ता विद्यमान है अर्थात् सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म का ही विवर्त रूप है । जगत् में मूलतत्त्व की सत्ता सर्वत्र व्याप्त है अतः सभी तत्त्व ब्रह्मात्मैक्य भाव से परिपूर्ण है । एक ही मूल कारण ने स्वयं को कार्य रूप में अभिव्यक्त किया है । इस प्रकार कारण का ही अभिव्यक्त रूप कार्य होने से कारण एवं कार्य में परस्पर अभेद है, क्योंकि कारण से कार्य की उत्पत्ति के अनन्तर, कार्य नष्ट होने पर पुनः कारण में ही विलीन हो जाता है । इसी अभेद ज्ञान के द्वारा समस्त ब्रह्माण्डीय तत्त्वों में परस्पर सम्बद्धता को स्वीकार किया गया है तथा जड़ एवं चेतन सभी में ईशतत्त्व की सत्ता को अन्तर्निहित माना है इसीलिये ऋषियों ने कहा भी है कि 'सोऽहमस्मि' जो वह परब्रह्म परमेश्वर है, वह परमपुरुष अर्थात् उसी का स्वरूप मैं भी हूं । उपनिषदों में स्थूलजगत् और प्रत्यक्ष शरीर में जगत् के कारण रूप ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप, उसके आनन्द को जानने तथा अनुभूत करने के लिये अन्न से आनन्द तक का मार्ग प्रशस्त किया है ।

उपनिषदों में वर्णित कार्य–कारण सिद्धान्त से जिस सर्वात्मभाव का बोध होता है, उससे व्यक्ति स्वयं, प्रकृति, समाज तथा जगत् के प्रत्येक तत्त्व के प्रति अपने दायित्वों का बोध करते हुए दृष्टिकोण में सुधार के लिये प्रेरणा प्राप्त करता है । यह चिन्तन व्यक्ति की निर्णय प्रक्रिया को वैज्ञानिक बनाता है एवं व्यवहार में परिवर्तन लाने में समर्थ है, क्योंकि वर्तमान समय में सर्वत्र भेददृष्टि व्याप्त है, जो कि शास्त्रीय भौतिकी विचारधारा का ही परिणाम है । जिसमें प्रत्येक तत्त्व को परस्पर असम्बद्ध मानकर व्यवहार किया गया जिससे मानव की स्वयं को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने की भावना नित्य प्रतिदिन बढ़ने लगे । इसी दृष्टिकोण ने मनुष्य की प्रवृति को ही परिवर्तित

कर दिया, परिणामस्वरूप मानव ने अपनी प्रगतिशील सभ्यता एवं संस्कृति में ऋषि चेतना प्रदत्त प्राकृतिक नियमों का अतिक्रमण कर अनेक समस्याओं को आमन्त्रित किया है । ये सभी समस्याएं मनुष्य के संकुचित दृष्टिकोण के कारण उत्पन्न हुई है । निरन्तर बढ़ती हुई भौतिकवादी प्रवृत्ति से मानव की इच्छाएं, आवश्यकताएं भी अनन्त रूप धारण करने लगी सर्वत्र भय, असुरक्षा, धनी–निर्धन का भेद, भ्रष्टाचार, नैतिक मूल्यों का अवमूल्यन, हिंसा–आतंक, शारीरिक मानसिक समस्याएं, ऐसे अनेक तत्त्व वैयक्तिक और वैश्विक स्तर पर मानव जीवन को प्रभावित कर रहे हैं अतः ऐसे समय में औपनिषदिक दृष्टि की आवश्यकता है जो मानव जीवन को उत्तम मार्ग प्रशस्त कर सके । औपनिषदिक तत्त्वज्ञान से वैयक्तिक स्वामित्व के भाव को निरस्त करके समष्टिभाव से सब के हित के लिये कर्म करते हुए उपनिषदों ने मानव जीवन को पूर्ण, सफल और सार्थक करने का मार्ग प्रशस्त किया है ।

वर्तमान समय में सभी विज्ञान ब्रह्माण्ड के मूलतत्त्व का अन्वेषण कर रहे हैं । मूलतत्त्व की खोज के लिये विभिन्न सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये हैं । जिनमें एक ऊर्जा को ही समग्र जगत् का आधार माना गया है अतः उपनिषदों में दर्शन एवं विज्ञान दोनों है । विज्ञान रूप में वे अन्तर्जगत् के सत्यों का आविष्कार करते हैं तथा दूसरों को उसी आविष्कार के लिये उत्साहित करते हैं और दर्शन रूप में वे मूल सत्य को समग्रता में प्रस्तुत करने के लिये अन्तर्जगत् के विज्ञान को बाह्य जगत् के अन्य विज्ञानों के साथ संश्लिष्ट करते हैं ।

ऋषियों द्वारा अनुभूत एकत्व से आत्मा अथवा ब्रह्माण्ड को सम्पूर्णता में देखने पर जीव और जगत् से सम्बन्धित जो निष्कर्ष प्राप्त हुए है, वे आज भी प्रासंगिक है । औपनिषदिक तत्त्वज्ञान के अनुसार स्वयं को ब्रह्म रूप समझने पर मनुष्य की दृष्टि व्यापक एवं विशाल हो जाती है जिससे प्रकृति के सभी घटकों में वह स्वयं का ही प्रतिबिम्ब देखता है इस प्रकार की दृष्टि होने पर पर्यावरण में प्रदूषण एवं असन्तुलन उत्पन्न नहीं हो सकता है क्योंकि प्रकृति को विकृत करने का अर्थ स्वयं को विकृत करना है अतः वर्तमान पारिस्थितिकीय असन्तुलन के समाधान के लिये इस ब्रह्ममयी दृष्टि की अत्यन्त आवश्यकता है । उपनिषदों में मानव की ब्रह्माण्ड के प्रत्येक तत्त्व के साथ सम्बन्धों की अभिव्यक्ति स्वाभाविक रूप से वर्णित है जिसे विरूप करने का अर्थ ब्रह्माण्ड की परमसत्ता को चुनौती देना है । वर्तमान युग खतरों और अवसरों से परिपूर्ण है । आज विज्ञान में प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की बात की जाती है अतः ऐसे समय में संस्कृति के मूलाधार एवं आध्यात्मिक ज्ञान के धरोहर उपनिषदों का

अध्ययन करना आवश्यक प्रतीत होता है । मानव मन में विभिन्न प्रश्न उपस्थित होते हैं । क्या औपनिषदिक मन्त्रों के द्वारा एककारणवाद की स्थापना संभव है ? क्या उपनिषदों के मन्त्र कारण एवं कार्य के अभेदात्मक ज्ञान को स्पष्ट कर सकते हैं ? क्या औपनिषदिक मंत्र मनुष्य के दृष्टिकोण परिवर्तन में सहायक सिद्ध हो सकते हैं ? क्या उपनिषदों के मंत्र समाज में व्याप्त भेद दृष्टि को समाप्त कर सकते हैं ? क्या औपनिषदिक मंत्र समाज में अद्वैत भावना के प्रतिस्थापन में समर्थ हैं ? क्या औपनिषदिक मूल्य पथभ्रमित मानव को सन्मार्ग पर प्रेरित कर सकते हैं ? क्या ऋषि प्रदत्त विचार एवं आधुनिक विज्ञान के सिद्धान्त परस्पर साम्यता रखते हैं ? इन सभी प्रश्नों का वैध एवं विश्वसनीय उत्तर खोजने का प्रयास इस शोध में किया गया है जो वर्तमान समय में प्रासंगिक हो सकता है ।

प्रथम अध्याय 'विषय की शोधार्हता, प्रविधि एवं परियोजना' के अन्तर्गत उपनिषद् शब्द का अर्थ, प्रमुख उपनिषदों का वर्ण्य विषय, वेदों तथा उपनिषदों में कारण एवं कार्य विषयक जिज्ञासा, कारण एवं कार्य का स्वरूप, शोध विषय के चयन का कारण एवं औचित्य, शोध विषय का क्षेत्र एवं उद्देश्य, इससे सम्बन्धित पूर्ववर्ती शोधकार्यों का विश्लेषण, अनुसन्धान प्रविधि तथा निर्दिष्ट शोध कार्यों से विशिष्टता का प्रतिपादन किया गया है ।

द्वितीय अध्याय 'वैदिक परम्परा में कार्य–कारण सिद्धान्त' में वैदिक संहिताओं (ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद), ब्राह्मण ग्रन्थों एवं आरण्यकों में कार्य–कारण सिद्धान्त को वर्णित किया गया है । ऋग्वेद के विभिन्न सूक्तों नासदीय, हिरण्यगर्भ, पुरुष, वाड़मनस, अमघर्षण सूक्तों का वर्णन कर सृष्टि के मूल कारण विषयक विचारो को बताया गया है । वेदों एवं उपनिषदों में एक ही कारण को स्वीकार किया है, जिसकी सत्ता कण–कण में व्याप्त है ।

तृतीय अध्याय 'न्याय–वैशेषिक एवं पारम्परिक भौतिकी में कार्य–कारण सिद्धान्त' में न्याय वैशेषिक दर्शन में मूल कारण क्या है तथा सृष्टि की रचना किस प्रकार हुई है । न्याय–वैशेषिक में कार्य–कारण सिद्धान्त को वैशेषिक दर्शन में द्रव्यों का विवेचन, परमाणुवाद संहार प्रक्रिया , त्रिविध कारणों का स्वरूप, असत्कार्यवाद इत्यादि बिन्दुओं के माध्यम से विवेचित किया गया है । पारम्परिक भौतिकी में कार्य–कारण सिद्धान्त, शास्त्रीय भौतिकी का उद्भव एवं विकास, शास्त्रीय भौतिकी के कार्य–कारण विषयक सिद्धान्त, शास्त्रीय भौतिकी एवं न्याय वैशेषिक में समानता, शास्त्रीय भौतिकी विचारधारा का वर्तमान में प्रभाव को वर्णित किया है । विज्ञान के भी पारम्परिक दृष्टिकोण में न्याय वैशेषिक के समान ही कार्य–कारण सिद्धान्त को स्वीकृत किया

गया है । दोनों के ही सिद्धान्तों में साम्यता दृष्टिगोचर होती है । परमाणुओं को ही सृष्टि का कारण मानते हुए अन्तिम सत्ता के रूप में माना है जो अविभाज्य है । इस दृष्टिकोण के कारण ही अनेक समस्याएं बढ़ती गयी जो आज भी बनी हुई है ।

चतुर्थ अध्याय 'प्रमुख उपनिषदों एवं आधुनिक विज्ञान में कार्य–कारण सिद्धान्त' में कार्य–कारण सिद्धान्त को निम्न बिन्दुओं औपनिषदिक कार्य–कारण विषयक जिज्ञासा, कारण एवं कार्य का स्वरूप, कारण एवं कार्य में सम्बन्ध के माध्यम से स्पष्ट किया गया है । आधुनिक विज्ञान में कार्य–कारण सिद्धान्त के अन्तर्गत आधुनिक विज्ञान का उद्भव एवं विकास, आधुनिक भौतिकी में कार्य–कारण सम्बन्धी मत, आधुनिक विज्ञान एवं औपनिषदिक चिन्तन में साम्यता का वर्णन किया गया है । आधुनिक विज्ञान के विभिन्न सिद्धान्त तापगतिकी का सिद्धान्त, आइन्सटीन का सापेक्षता सिद्धान्त, क्वाण्टम सिद्धान्त, कण भौतिकी, बिग बैंग इत्यादि सिद्धान्तों तथा औपनिषदिक चिन्तन में समानता दिखाई देती है ।

पंचम अध्याय 'औपनिषदिक कार्य–कारण सिद्धान्त की वर्तमान उपादेयता' में ब्रह्म एवं ब्रह्माण्ड में एकत्व, त्यागपूर्वक उपभोग की भावना का विकास, जड़ एवं चेतन में अभेद, कारण एवं कार्य में अभेद, पर्यावरण सम्पोषण में सहायक, एक कारणवाद की स्थापना, समष्टिपरक दृष्टिकोण का विकास, एकांगी दृष्टिकोण का उन्मूलन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण में परिवर्तन बिन्दुओं को विवेचित किया गया है । यहां औपनिषदिक कार्य–कारण सिद्धान्त को जानने के बाद वर्तमान में वह मानव जीवन के लिये कैसे उपयोगी हो सकता है तथा समस्याओं का समाधान कैसे संभव है ।

सर्वप्रथम सृष्टि के कण–कण में व्याप्त उस परमपिता परमेश्वर को मैं शत–शत नमन अर्पित करती हूं जिसकी असीम अनुकम्पा से यह महनीय कार्य सम्पन्न हुआ ।

इस शोधकार्य के सम्पन्न होने में गुरू की क्या भूमिका रही है, उसे शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करना दुष्कर कार्य है । शोध प्रबन्ध को गति प्रदान करने में अत्यन्त सजग, आद्योपान्त परिष्कृत एवं परिमार्जित करने वाले, सतत कार्य करने के प्रेरणा स्त्रोत, पितृतुल्य स्नेहमय गुरूवर डॉ रामनाथ झा के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करना तो औपचरिकता ही होगी । यह शोध कार्य उनके वैदुष्यपूर्ण एवं वात्सल्यमय कुशल निर्देशन तथा वैदिक परम्परा और विज्ञान के अन्तर्सम्बन्धित दृष्टि सम्पन्न मार्ग निर्देशन से ही निष्पन्न हुआ है ।

विशिष्ट संस्कृताध्ययन केन्द्र के अध्यक्ष प्रो. गिरीश नाथ झा तथा संकाय सदस्य डॉ. सन्तोष कुमार शुक्ल, डॉ. हरिराम मिश्र, डॉ. रजनीश कुमार मिश्र, प्रो. सी. उपेन्द्र राव, डॉ. सुधीर कुमार, डॉ. सत्यमूर्ति, डॉ. टी. महेन्द्र, डॉ गोपाल लाल मीणा, डॉ ब्रजेश कुमार पाण्डेय को धन्यवाद देना चाहूँगी जिनके अमूल्य सुझाओं ने शोधकार्य को सारगर्भित रूप में प्रस्तुत करने में सहयोग किया । प्रो. शशिप्रभा कुमार का शोधकार्य में दिये गये सुझाव के लिये हृदय से आभारी । संस्कृत विभाग के सभी कर्मचारी गणों का आभार जिन्होंने समय समय पर कार्यालयीय कार्यों को सम्पन्न करने में सहयोग दिया ।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, विशिष्ट संस्कृताध्ययन केन्द्र, लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, साहित्य अकादमी, दिल्ली विश्वविद्यालय, वनस्थली विद्यापीठ, इन्द्रप्रस्थ महिला महाविद्यालय, आदि के पुस्तकालयों से मिला सहयोग शोध को समृद्ध करने में अति महत्त्वपूर्ण रहा, अतः इनका आभार ।

परिवार के सहयोग एवं शुभकामना के बिना शोधकार्य की साफल्यपूर्ण परिणति असंभव थी । मम्मी–पापा जी ने श्रेष्ठ संस्कारों का बीजवपन कर विकट परिस्थितियों में भी धैर्यपूर्ण तथा सकारात्मक दृष्टि के साथ आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान की । मेरे आदरणीय श्वसुर जी के लक्ष्य के प्रति सजग रहने की प्रेरणा तथा पुत्री गार्गी को समय देकर दिये गये सहयोग की आभारी हूं । स्वं. सास भानेश्वरी देवी शर्मा के वात्सल्यमय स्नेह का स्मरण सदैव जीवन को सम्बल प्रदान करने वाला है । पति दीपक कुमार ने सदैव मेरे अध्ययन के अनुकूल वातावरण बनाने तथा शोध विषय के विज्ञान सम्बन्धी तथ्यों को समझने में जो सहयोग प्रदान किया उसे विस्मृत करना असम्भव प्रतीत होता है । मेरे अनुज भ्राता रोहित का अविचल स्नेह सदा मेरे साथ बना रहा । तीनों दीदियों–जीजाजी के सहज स्नेहपूर्ण योगदान एवं अमूल्य सत्परामर्श हेतु मैं इनकी अत्यधिक ऋणी हूं । मेरी आत्मजा गार्गी की बालक्रिडाओं ने मुझे अधिक श्रम करने के बावजूद क्लान्त–श्रान्त नहीं होने दिया ।

मेरी प्रिय सखी डॉ वन्दना यादव एवं डॉ वीरेन्द्र यादव द्वारा मिला प्रोत्साहन अविस्मरणीय है । डॉ सुनीता नागर द्वारा शोधकार्य में दिये गये सहयोग के लिये उनकी आभारी हूं ।

अन्त में उन सभी का भी आभार जिन्होंने प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से मुझे शोध में सहायता प्रदान की ।

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ सं.

- **प्राक्कथन** **i- v**
- **विषयानुक्रमणिका** **vi -viii**
- **संकेताक्षर सूची** **ix- xi**
- **प्रथम अध्याय– विषय की शोधार्हता, प्रविधि एवं परियोजना** 1–33
  - क्षेत्र एवं उद्देश्य
  - विषय चयन का महत्व एवं औचित्य
  - उपनिषद् शब्द की व्युत्पत्ति, अर्थ एवं परिचय
  - सर्वेक्षण
  - पूर्ववर्ती शोध कार्यों से प्रस्तुत शोध कार्य की विशिष्टता
  - शोध प्रविधि
- **द्वितीय अध्याय– वैदिक परम्परा में कार्य–कारण सिद्धान्त** 34–72
  - वैदिक संहिताओं में कार्य–कारण सिद्धान्त
  - ब्राह्मण ग्रन्थों में कार्य–कारण सिद्धान्त
- **तृतीय अध्याय– न्याय–वैशेषिक एवं पारम्परिक भौतिकी में कार्य - कारण सिद्धान्त** 73–110
  - न्याय–वैशेषिक में कार्य–कारण सिद्धान्त

- वैशेषिक दर्शन में द्रव्यों का विवेचन
- जगत् के मूल कारण के स्वरूप का विवेचन (परमाणुवाद)
- संहार प्रक्रिया
- त्रिविध कारणों का स्वरूप
- असत्कार्यवाद

➢ पारम्परिक भौतिकी में कार्य–कारण सिद्धान्त
- शास्त्रीय भौतिकी का उद्भव एवं विकास
- शास्त्रीय भौतिकी के कार्य–कारण विषयक सिद्धान्त
- शास्त्रीय भौतिकी एवं न्याय वैशेषिक में समानता
- शास्त्रीय भौतिकी विचारधारा का वर्तमान में प्रभाव

• **चतुर्थ अध्याय प्रमुख उपनिषदों एवं आधुनिक विज्ञान में कार्य–कारण सिद्धान्त 111–173**

➢ प्रमुख उपनिषदों में कार्य–कारण सिद्धान्त
- औपनिषदिक कार्य–कारण विषयक जिज्ञासा
- कार्य एवं कारण का स्वरूप
- कार्य एवं कारण में सम्बन्ध

➢ आधुनिक विज्ञान में कार्य–कारण सिद्धान्त
- आधुनिक विज्ञान का उद्भव एवं विकास
- आधुनिक विज्ञान में कार्य–कारण सम्बन्धी सिद्धान्त
- आधुनिक विज्ञान एवं औपनिषदिक चिन्तन में समानता

- **पञ्चम अध्याय –औपनिषदिक कार्य–कारण सिद्धान्त की वर्तमानकालीन प्रासंगिकता** **174–204**
  - ➢ त्यागपूर्वक उपभोग की भावना स्थापित करना
  - ➢ ब्रह्म एवं ब्रह्माण्ड में एकत्व
  - ➢ जड़ एवं चेतन में अभेद
  - ➢ पर्यावरण सम्पोषण में सहायक
  - ➢ एक कारणवाद की स्थापना
  - ➢ कारण एवं कार्य में अभेदात्मक ज्ञान
  - ➢ समष्टिपरक दृष्टिकोण का विकास
  - ➢ एकांगी दृष्टिकोण का उन्मूलन
  - ➢ वैज्ञानिक दृष्टिकोण परिवर्तन में सहायक

- **उपसंहार** **205–212**
- **सन्दर्भ–ग्रन्थ–सूची** **213–228**

संकेताक्षर सूची

अ.	–	अमरकोश
अथर्व.	–	अथर्ववेद
अष्टा.	–	अष्टाध्यायी
ईश. उप.	–	ईशावास्योपनिषद्
ईश.उप.शा. भा.	–	ईशावास्योपनिषद् शाङ्करभाष्य
ऐ. आ.	–	ऐतरेय आरण्यक
ऐ. उप.	–	ऐतरेयोपनिषद्
ऐ. ब्रा.	–	ऐतरेय ब्राह्मण
ऋ.	–	ऋग्वेद
क. उप.	–	कठोपनिषद्
क. उप. शा. भा.	–	कठोपनिषद् शाङ्करभाष्य
किरणा.	–	किरणावली
के. उप.	–	केनोपनिषद्
गो. ब्रा.	–	गोपथ ब्राह्मण
छा. उप.	–	छान्दोग्योपनिषद्
जै. उ. ब्रा.	–	जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण

त. स.	–	तर्कसंग्रह
त. स. दी.	–	तर्कसंग्रह दीपिका
त. भा.	–	तर्कभाषा
ता. ब्रा.	–	ताण्ड्य ब्राह्मण
तै. उप.	–	तैत्तिरीयोपनिषद्
तै. आ.	–	तैत्तिरीय आरण्यक
तै. ब्रा.	–	तैत्तिरीय ब्राह्मण
न्या. क.	–	न्यायकन्दली
न्या. कु.	–	न्यायकुसुमाञ्जलि
न्या. सि. मु.	–	न्यायसिद्धान्तमुतावली
न्या. सू.	–	न्यायसूत्र
न्या. वा.	–	न्यायवार्तिक
प्र. उप	–	प्रश्नोपनिषद्
प्र. पा. भा.	–	प्रशस्तपादभाष्य
बृ. उप.	–	बृहदारण्यकोपनिषद्
ब्र. सू.	–	ब्रह्मसूत्र
ब्र.सू. शां. भा.	–	ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य
माण्डू .उप.	–	माण्डूक्योपनिषद्
मु. उप.	–	मुण्डकोपनिषद्
मु. उप.	–	मुक्तिकोपनिषद्

यजु.	–	यजुर्वेद
लक्षणा.	–	लक्षणावली
वे. सा.	–	वेदान्तसार
वे. प.	–	वेदान्तपरिभाषा
वै. सू.	–	वैशेषिक सूत्र
व्यो.	–	व्योमवती
श. ब्रा.	–	शतपथ ब्राह्मण
षड्. ब्रा.	–	षड्विंश ब्राह्मण
ष. वि. ब्रा.	–	षड्विधान ब्राह्मण
स. द. सं.	–	सर्वदर्शनसंग्रह
सा.	–	सांख्यकारिका
सं. शा.	–	संक्षेप शारीरकम्
श्वे. उप.	–	श्वेताश्वतरोपनिषद्
श्रीमद्भग.	–	श्रीमद्भवद्गीता

प्रथम अध्याय

विषय की शोधार्हता, प्रविधि एवं परियोजना

क्षेत्र एवं उद्देश्य (Scope and Objective)

वैदिक संस्कृति के ज्ञान दीपक, जो सृष्टि को सदियों से प्रकाश देते चले आ रहे हैं और लय पर्यन्त प्रकाशित करते रहेंगे, ऐसे उपनिषदों के प्रकाश में वह अमरत्व है जिन्होनें भारतीय संस्कृति का सिञ्चन एवं संवर्धन किया है । उपनिषदों में सृष्टि के साथ मनुष्य के अन्तः सम्बन्ध को प्रतिपादित किया गया है । सभी प्राणियों में ब्रह्म की सत्ता को स्वीकार करते हुए ब्रह्म एवं ब्रह्माण्ड में भी एकत्व स्थापित किया है । ब्रह्माण्ड–पिण्ड की इस विशाल सृष्टि में पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश आदि तत्त्वों के प्रति प्रत्येक जिज्ञासु के मन में यह प्रश्न उपस्थित होता है कि– सृष्टि उत्पत्ति का आदि कारण क्या है ? सृष्टि–जगत् का सम्पूर्ण चक्र कैसे गतिमान है ? क्या महाभूत स्वतः संचालित हैं या इनसे पृथक् कोई सत्ता इन्हें संचालित कर रही है ? कारण द्वारा उत्पन्न कार्य का क्या स्वरूप है ? कार्य–कारण में परस्पर क्या सम्बन्ध हैं ? कार्य–कारण का ही अभिव्यक्त रूप है अथवा नवीन रचना है, इन सभी प्रश्नों का समाधान कार्य–कारण सिद्धान्त पर आधारित है । कार्य–कारण विषय न केवल मानव के लिये जिज्ञासा का विषय है अपितु भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शन तथा विज्ञान के लिये भी मौलिक समस्या है । ऋषि मुनियों ने अपने प्रातिभ चक्षु के द्वारा जिन सूक्ष्म तत्त्वों का साक्षात्कार किया है और अपनी कुशाग्र बुद्धि के द्वारा जिन सिद्धान्तों का विश्लेषण किया है वह कार्य–कारण सिद्धान्त पर ही आधारित है । प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का उद्देश्य प्रमुख उपनिषदों एवं आधुनिक विज्ञान में कार्य–कारण सिद्धान्त को प्रस्तुत करते हुए औपनिषदिक समग्र दृष्टि को प्रस्तुत करना है ।

विषय चयन का महत्व एवं औचित्य

कार्य–कारण सम्बन्धी रहस्यों को प्रकाशित करने में वेदों का महत्वपूर्ण स्थान है । वैदिक ऋषियों ने मानस–चक्षु से साधना कर जिस सत्य का साक्षात्कार किया उसी पर समग्र वैदिक वाङ्मय आधारित है । वैदिक ज्ञान की अनुपम निधि हिरण्यगर्भ, नासदीय, पुरुष आदि दार्शनिक

सूक्तों में मनोरम रूप में वर्णित है । पुरुष सूक्त में विराट् पुरुष से ही सृष्टि की उत्पत्ति मानी गयी है । नारायण ऋषि ने पुरुष सूक्त में परम शक्ति परमात्मा की रचनात्मक शक्ति तथा सर्वव्यापकता को स्पष्ट करते हुए बताया है-

"सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात् ।

स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥" [1]

सर्वशक्तिमान् परमात्मा अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त है । सृष्टि का आदि तत्त्व पुरुष है जो चतुष्पाद, सहस्त्र शिरों वाला, सहस्त्र आँखों वाला, सहस्त्र पैरों वाला कहा गया है । प्रकृति का सब ओर से वरण करने के बाद भी वह इससे दश अंगुल पर सुशोभित होकर स्थित है । वह भोग एवं कर्मफल से परे है, संसार में सर्वत्र उसी की सत्ता विद्यमान है, उसी की शक्ति कार्यरत है ।

हिरण्यगर्भ सूक्त में सृष्टि के आदि में हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है–

"हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥" [2]

हिरण्यगर्भ विराट् पुरूष का ही रूप है और वह सारे संसार का स्वामी है । पंचतत्त्वों की उत्पति का एकमात्र स्वामी है । ऋग्वेद के नासदीय सूक्त का प्रारम्भ सृष्टि की पूर्वावस्था वर्णन से होता है । सृष्टि के आरम्भ में न सत् का और न ही असत् का अस्तित्व था । अन्तरिक्ष, आकाश, अमृतत्व, दिन–रात्रि का भेदात्मक ज्ञान भी नहीं था । केवल मात्र एक ही तत्त्व अपनी अन्तर्निहित शक्ति से स्वयं बिना वायु के श्वास ले रहा था अर्थात् चेतनावस्था में विद्यमान था ।

"नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।

किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥

[1] ऋ. 10/90/1

[2] वही 10/121/1

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः ।

आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ॥" [3]

प्रजापति द्वारा उस 'एक' तत्त्व के लिए कहा गया कि वह अन्धकार में अतिसूक्ष्म रूप तरल अवस्था में था ।

"तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ॥" [4]

वह गतिमान पदार्थ कैसे प्रकट हुआ इसका वर्णन करते हुए दीर्घतमस् ऋषि कहते हैं–

"यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।

श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥" [5]

सृष्टि के आरम्भ में सर्वप्रथम जो 'एक' उत्पन्न हुआ वह घोर शब्द करता हुआ, सूर्य के समान प्रकाशमान, बाज की बाहों के समान विस्तीर्ण तथा हरिण के पैरों के समान अत्यन्त वेग से ऊपर फैल गया ।

दीर्घतमस् ऋषि ने सृष्टि उत्पत्ति के रहस्य को उद्घाटित करते हुए कहा है–

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥" [6]

दो पक्षी एक ही वृक्ष पर पास–पास बैठे हैं । इन दोनों में से एक वृक्ष के फलों को खाकर स्वाद ले रहा है, दूसरा बिना खाए पक्षी की गतिविधि का अवलोकन कर रहा है । इससे व्यक्त होता है कि सृष्टि निर्माण में दो प्रमुख तत्त्व हैं ।

पुरुष सूक्त में पुरुष का विवेचन सृष्टि के मूल कारण रूप में किया गया है–

"तस्माद्विराडजायत विराजो अधिपुरूषः ।

---

[3] ऋ., 10/129/1–2
[4] वही 10/129/3
[5] वही, 1/163/1
[6] वही, 1/164/20

स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥" [7]

यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड विराट् की शक्ति का अंशमात्र है । सर्वप्रथम पुरुष से 'विराट्' का, विराट् से जीवात्मा रूपी पुरुष का सृजन हुआ । देवताओं ने उस पुरुष से यज्ञ सम्पन्न किया जिससे समस्त प्राणी, पशु, मनुष्य, सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्र, अग्नि आदि विभिन्न लोक उत्पन्न हुए ।

सर्वशक्तिमान् की व्यापकता का वर्णन अथर्ववेद में भी किया गया है–

"बालादेकमणीयस्कमुतैकं नैव दृश्यते ।

ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया ॥" [8]

एक ऐसा तत्त्व जो बाल से भी सूक्ष्म है (जीव), दूसरा तत्त्व और भी सूक्ष्म होने से दिखाई नहीं देता (सूक्ष्म अदृश्य प्रकृति), तीसरा तत्त्व जिससे समस्त जगत् का आलिंगन किया हुआ है वही सर्वव्यापक देवता है । वह 'एक' पंच महाभूतों का एकमात्र कारण बना ।

इस प्रकार वैदिक वाङ्मय में सृष्टि के मूल में एक कारण को स्वीकार किया गया है । विभिन्न भारतीय दार्शनिक शाखाओं (वेदान्त, सांख्य एवं योग, न्याय–वैशेषिक, बौद्ध) में कार्य–कारण विषय पर भिन्न–भिन्न मत प्रस्तुत किये गये हैं । इन चारों दार्शनिक शाखाओं द्वारा स्वीकृत सिद्धान्तों को क्रमशः एक–कारणतावाद, द्वि–कारणतावाद, अनेक–कारणतावाद, शून्य–कारणतावाद के नाम से अभिहित किया गया है ।

"इह कार्यकारणभावे चतुर्था विप्रतिपत्तिः प्रसरति । असतः सज्जायत इति सौगताः संगिरन्ते । नैयायिकादयः सतोऽसज्जायत इति । वेदान्तिनः सतो विवर्तः कार्यजातं न वस्तुसदिति । सांख्याः पुनः सतः सज्जायत इति ॥" [9]

यहां पर कार्य–कारण के परस्पर सम्बन्ध को लेकर चार प्रकार के भिन्न–भिन्न मत हैं । बौद्ध (शून्यवादी) कहते हैं कि असत् से सत् पदार्थ की उत्पत्ति होती है । नैयायिक और वैशेषिक भी कहते हैं कि सत् कारण से सत् कार्य की उत्पत्ति होती है किन्तु कार्य कारण में पहले से विद्यमान नहीं होता है । वेदान्तियों (अद्वैत) की मान्यता है कि सत् कारण से विवर्त कार्य उत्पन्न

[7] ऋ.10/90/5
[8] अथर्व. 10/8/25
[9] स. द. सं. पृ. 539

होता है और सारे कार्यों की वास्तविक सत्ता नहीं रहती है । सांख्य दर्शन में कहते है कि सत् कारण से सत् कार्य उत्पन्न होता है किन्तु कार्य में कारण पहले से विद्यमान होता है ।

उपनिषद में ऋषियों ने सृष्टि सम्बन्धी जिज्ञासा का निराकरण करते हुए जिस कार्य–कारण सिद्धान्त को बताया है उसमें भी सृष्टि का मूल एक ही कारण है । समस्त औपनिषदिक साहित्य का मुख्य उद्देश्य भेद ज्ञान को समाप्त करते हुए अद्वैतभाव को ग्रहण करना है । उपनिषदों में भिन्नत्व भाव की निन्दा तथा समग्र सृष्टि के साथ मनुष्य के अन्तर्सम्बन्ध पर बल दिया गया है । सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक चेतन तत्त्व से प्रादूर्भूत हुआ है । ऋषियों ने उस असीम सत्ता का कण–कण में अवलोकन किया है । यह मौलिक एकता, यह अभिन्नता आधुनिक वैज्ञानिक चिन्तन का भी विषय है । आध्यात्मिक दृष्टि से सर्वत्र एक ही तत्त्व है, वास्तव में कोई भेद नहीं है । भौतिक जगत् का बाह्य स्वरूप भेद उत्पन्न करता है । समस्त विश्व, ब्रह्माण्ड, खगोल, पार्थिव शरीर में आध्यात्मिक एकता है । आकार, मात्रा, कार्यभार भेद की दृष्टि से है, मूलतत्त्व में भेद नहीं है । सभी तत्त्व परमसत्ता की ही अभिव्यक्ति होने से एकत्व रूप को धारण करते हैं ।

उपनिषदों के तत्त्वद्रष्टा ऋषियों ने ब्रह्माण्ड एवं पिण्ड के साथ एकत्व स्वीकार करते हुए मूल तत्त्व का अन्वेषण किया है । वस्तुजगत् के मूलकारण का अन्वेषण ही उपनिषदीय सृष्टिशास्त्र की विशेषता है । परमेश्वर एक ही है, ऋषियों की यह अनुभूति उपनिषदों में सर्वत्र वर्णित है । छान्दोग्योपनिषद् के ऋषि ने एकत्वानुभूति को स्पष्ट करते हुए बताया है– "एकोऽहं बहुस्याम्"[10] एक ही मैं अनेक हो जाता हूँ । माण्डूक्योपनिषद् में भी बताया है–"सर्वं ह्येतद् ब्रह्म"[11] सृष्टि में विद्यमान प्रत्येक तत्त्व आध्यात्मिक परमसत्ता के अंश को धारण करने के परिणामस्वरूप सभी में एकत्व निहित है । सर्ग के आदि में एक सच्चिदानन्दघन ब्रह्म ही था, उसने विचार किया कि मैं प्रकट होकर बहुत हो जाऊँ–"सोऽकामयत । बहु स्यां प्रजायेयेति"[12] इस प्रकार परब्रह्म एक ही बहुत रूपों में हो गया । यह जो कुछ जड़–चेतन, स्थावर–जंगम जगत् है, वह परमात्मा का ही स्वरूप है । ऋषियों ने आन्तरिक प्रकाश में अनुसंधान किया कि ब्रह्माण्ड के नित्य प्रपञ्च का सूत्राधार एवं सर्वाधार एक परब्रह्म है । यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ब्रह्म के तेज से परिव्याप्त है । माण्डूक्योपनिषद् में ब्रह्म की महत्ता को बताते हुए कहा गया है–

[10] छा. उप. 6/2/3
[11] माण्डू. उप., आगम प्रकरण 2
[12] तै. उप. 2/6/1

"ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव । यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव ॥" [13]

ॐ यह अक्षर ही सब कुछ है । समस्त सृष्टि ओम् की व्याख्या है । यह जो कुछ भूत, भविष्यत् और वर्तमान है उसी की व्याख्या है, इसलिए यह सब ओंकार है । इसके अतिरिक्त जो अन्य त्रिकालातीत वस्तु है वह भी ओंकार ही है ।

'तैत्तिरीयोपनिषद्' में ब्रह्म को कारण और सम्पूर्ण सृष्टि को कार्य कहा गया है । जिस प्रकार कारण अपने कार्य में निहित होता है उसी प्रकार कार्य रूप सृष्टि ब्रह्म रूपी कारण की ही अभिव्यक्ति है ।

"तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः । आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः । अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी । पृथिव्या ओषधयः । ओषधीभ्योऽन्नम् । अन्नात्पुरुषः । स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः ॥" [14]

उस ब्रह्म से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि , अग्नि से जल, जल से पृथिवी, पृथिवी से औषधि, औषधि से अन्न और अन्न से पुरूष उत्पन्न हुआ अतः निश्चय ही यह पुरुष अन्नरसमय है । इस प्रकार एक आत्मतत्त्व से ही क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, औषधि, अन्न एवं पुरूष की उत्पत्ति हुई, जो अन्नरसमय है । सभी तत्त्व परस्पर सम्बद्ध हैं । 'प्रश्नोपनिषद्' का प्रारम्भ ही सृष्टि विषयक प्रश्नों से होता है । 'प्रश्नोपनिषद्' के छः प्रश्नों में शिष्यों की सृष्टि सम्बन्धी जिज्ञासा का निराकरण महर्षि पिप्पलाद द्वारा किया गया है । शिष्य कबन्धी का सृष्टि विषयक प्रथम प्रश्न एवं उसका समाधान निम्नलिखित है–

"भगवन् कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ॥" [15]

भगवन् यह सारी प्रजा किससे उत्पन्न होती है ? महर्षि पिप्पलाद ने उत्तर दिया –

---

[13] माण्डू.उप.,आगम प्रकरण, 1
[14] तै. उप. 2/1/1
[15] प्र. उप. 1/3

"स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते । रयिं च प्राणं चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति । आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा रयिर्वा एतत् सर्वं यन्मूर्तं चामूर्तं च तस्मान्मूर्तिरेव रयिः ॥" [16]

प्रजापति ने प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से तप किया और रयि तथा प्राण का जोड़ा उत्पन्न किया । ये दोनों ही अनेक प्रकार की प्रजा उत्पन्न करने वाले हैं । निश्चय आदित्य ही प्राण है और रयि चन्द्रमा है । यह जो कुछ मूर्त (स्थूल) और अमूर्त (सूक्ष्म) है वह सब रयि ही है । इस प्रकार मूल रूप (प्रजापति) ही मिथुन रूप हो गया । ये दोनों ही अनेक प्रकार की प्रजा उत्पन्न करने वाले हैं । 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' में भी जगत् के कारणभूत तत्त्व के विषय में वर्णित किया गया है–

"किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः ॥" [17]

क्या संसार का कारण ब्रह्म है ? हम किससे उत्पन्न हुए हैं ? किसके द्वारा जीवित रहते हैं? कहां स्थित हैं ? हम किससे प्रेरित होकर सुख–दुःख की व्यवस्था में विद्यमान रहते हैं ?

इस प्रकार वस्तु जगत् के मूलतत्त्व का ज्ञान उपनिषदीय सृष्टिशास्त्र की विशेषता है । अखिल ब्रह्माण्ड में एक ही मूल तत्त्व है जिससे जगत् की उत्पत्ति हुई है । उपनिषदों के तत्त्व–द्रष्टा ऋषियों ने ब्रह्म में प्राणि जगत् तथा प्रकृति–जगत् के एकत्व का प्रतिपादन किया है ।

कार्य–कारण सिद्धान्त के क्षेत्र में विज्ञान के दो प्रमुख आयामों का अध्ययन किया जाता है ।

1. पारम्परिक / चिरसम्मत भौतिकी
2. आधुनिक भौतिकी

19वीं शताब्दी से पूर्व जो भौतिक ज्ञान अर्जित किया गया था और तत्सम्बन्धी जो नियम एवं सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये, उनका समावेश पारम्परिक/चिरसम्मत भौतिकी में किया गया है । उस समय की विचारधारा के प्रेरणास्रोत गैलीलियो (Galileo Galilie 1564- 1642) तथा न्यूटन (Issac Newton 1642- 1727) थे । पारम्परिक भौतिकी के अन्तर्गत मुख्य रूप से

[16] प्र. उप. 1/4–5
[17] श्वे. उप. 1/1

स्थूल परिघटनाओं पर विचार किया जाता है । [18] ल्यूसिपस एवं डेमोक्रिटस के द्वारा जिस भेद दृष्टि का प्रारम्भ किया गया उसी का विस्तृत रूप पारम्परिक भौतिकी में विद्यमान है । पारम्परिक भौतिकी में मनुष्य एवं प्रकृति के अन्तर्सम्बन्धों को स्वीकार नहीं किया गया । अरस्तु ने चेतन (mind) तथा जड़ (matter) की पृथक्–पृथक् सत्ता को स्वीकार करते हुए चेतन (mind) भाग पर अधिक बल दिया जिससे मनुष्य में स्वयं के गुणगान करने का प्रचलन बढ़ता गया और यह स्वीकार किया गया कि मनुष्य जो कुछ करने का निश्चय कर ले वह कर सकता है । इस प्रकार मनुष्य केन्द्रित विचारधारा को समर्थन मिला ।

पारम्परिक भौतिकी के प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन ने कार्टिजियन मैकेनिज्म (Cartesian machanism) अर्थात् पाश्चात्य दार्शनिक एवं गणितज्ञ रेने देकार्त (Rene Descartes) के mind-matter Dualism के सिद्धान्त का समर्थन किया । पारम्परिक भौतिकी में निम्न सिद्धान्तों को स्वीकृत किया गया ।

- प्रत्येक पदार्थ की रचना परमाणुओं से मिलकर हुई है ।
- प्रत्येक परमाणु स्वतन्त्र, अविभाज्य तथा पदार्थ की सबसे छोटी ईकाई है ।
- एक परमाणु का दूसरे परमाणु से कोई सम्बन्ध नहीं है ।
- परमाणु नैसर्गिक रूप से असम्बद्ध हैं ।

17वीं शताब्दी के दार्शनिक रेने देकार्त ने पदार्थ को मन (mind) तथा द्रव्य (matter) दो भागों में विभाजित करते हुए चेतन (mind) तथा जड़ (matter) रूप में स्वीकार किया ।

"Seventeenth century in the philosophy of Rene Descartes who based his view of nature on a fundamental division into two separate and independent realms; that of mind (res cogitans) and that of matter (res extensa)." [19]

रेने देकार्त के अनुसार सभी प्राणी यंत्रवत् है एवं विश्व का संचालन व्यक्तिगत नियमानुसार होता है । सृष्टि के प्रथम संचालन के पश्चात् विश्व स्वतः संचालित होता रहता है । न्यूटन द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त कि यह संसार एक विस्तृत मशीन है, जिस प्रकार मशीन बनाने वाला व्यक्ति मशीन बनाकर उससे पृथक् हो जाता है उसी प्रकार ईश्वर द्वारा इस सृष्टि में नियम डाल दिये गये हैं, जिनके अनुरूप यह सृष्टि गतिमान् है ।

[18] भौतिकी, पृ. 3

[19] Capra, Fritjof, The Tao of Physics, p. 27

"In the Newtonian view, God had created, In the beginning, the material particles, the forces between them, and the fundamental laws of motion. In this way, the whole universe was set in motion and it has continued to run ever since, like a machine, governed by immutable laws." [20]

न्यूटन द्वारा प्रतिपादित यह सिद्धान्त पाश्चात्य दार्शनिक रेने देकार्त के मत पर अवलम्बित है जिसमें विश्व को जड़ एवं चेतन के रूप में स्वीकार किया गया है ।

"The 'Cartesian' division allowed scientists to treat matter as dead and completely separate from themselves, and to see the material world as a multitude of different objects assembled into a huge machine. Such a mechanistic world view was held by Issac Newton who constructed his mechanics on its basis and made it the foundation of classical physics." [21]

न्यूटन एवं रेने देकार्त के यांत्रिकता सम्बन्धी विचारों से अनेक समस्याएँ प्रकट हुई । 16–17वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप मनुष्य की भौतिक विलासिता की पूर्ति के लिये प्रकृति के निर्मम दोहन का वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत किया गया । जिस मनुष्य की सुख–सुविधा के लिये औद्योगिक विकास किया गया आज उसी मनुष्य का अस्तित्व खतरे में है । इस प्रकार शास्त्रीय भौतिकी ने बहुकारणवाद के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए एकांगी दृष्टिकोण वाली विचारधारा प्रस्तुत की जो भारतीय परम्परा के विपरीत थी, आधुनिक भौतिकी ने इसे अस्वीकार करते हुए एक ऐसी विचारधारा प्रस्तुत की जिसमें सृष्टि का मूल एक तत्त्व को ही स्वीकार किया गया ।

19वीं शताब्दी के पश्चात् भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए जिनमें सूक्ष्म परिघटनाओं अर्थात् परमाणुओं तथा नाभिकों के स्तर के सूक्ष्मतम पैमाने पर द्रव्य के संघटन व संरचना तथा इनकी विभिन्न अन्वेषियों यथा–इलेक्ट्रान, फोटॉन, तथा अन्य मूल कणों से अन्योन्य क्रियाओं पर विचार किया जाने लगा । इस प्रकार नये–नये तथ्यों के अध्ययन करने और उनके विषय को स्पष्टतया प्रतिपादन करने के लिये भौतिकी में जिस शाखा की उत्पत्ति हुई उसको 'आधुनिक भौतिकी' (Modern Physics) नाम से अभिहित किया गया है । भौतिकी की इस नवीन शाखा ने वैज्ञानिक विचारधारा का एक नया आयाम प्रस्तुत किया ।

[20] Capra, Fritjof, The Tao of Physics, p.65
[21] वही, p. 27

आधुनिक भौतिकी को मुख्य रूप से क्वांटम सिद्धान्त की सूक्ष्म परिघटनाओं का अध्ययन करने के लिये उचित माना गया है । आधुनिक भौतिकी के कतिपय सिद्धान्तों यथा–आइन्सटाइन द्वारा प्रतिपादित सामान्य और विशेष सापेक्षता के सिद्धान्त (General & Special theory of Relativity), जेम्सक्लार्क मैक्सवेल के तापगतिकी नियम (Laws of Thermo-dynamics), मैक्स प्लांक का क्वाण्टम सिद्धान्त (Quantum theory), हाइजेनबर्ग का अनिश्चितता सिद्धान्त (Principle of uncertainty), कण भौतिकी (Particle physics), एकीकृत क्षेत्र सिद्धान्त (Unifield field theory), एवं बिगबैंग सिद्धान्त (Bigbang theory) को प्रकाशित किया । जिनमें कार्य–कारण सम्बन्ध में मत प्रस्तुत किये गये हैं ।

20वीं शताब्दी में आधुनिक विज्ञान के निष्कर्ष के आधार पर न्यूटन एवं रेने देकार्त का जड़ व चेतन सम्बन्धी दृष्टिकोण परिवर्तित हुआ । Quantum Physics के अनुसार निम्न सिद्धान्तों को स्वीकार किया गया ।

- परमाणु अन्तिम सत्ता नहीं हैं । परमाणुओं के भी विभाग किये जा सकते हैं ।
- सभी परमाणु परस्पर सम्बद्ध हैं ।
- परमाणुओं का सम्बन्ध समस्त सृष्टि का आधार है ।

इस प्रकार आधुनिक विज्ञान (Modern Physics) ने यह सिद्ध कर दिया कि सृष्टि किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा संचालित नहीं हो सकती है और पारम्परिक भौतिकी के सिद्धान्त को अस्वीकार किया । इस प्रकार आधुनिक विज्ञान में उपनिषदों के समान ही एक–कारणवाद को स्वीकार किया गया है ।

सृष्टि का मूल कारण क्या है एवं कार्य क्या है ? इस प्रश्न पर न्याय–वैशेषिक एवं पारम्परिक विज्ञान में तथा औपनिषदिक चिन्तन एवं आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि में साम्यता दृष्टिगोचर होती है । न्याय–वैशेषिक दर्शन में सप्त पदार्थ का विवेचन किया गया है–

"द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाभावाः सप्तपदार्थाः । तत्र द्रव्याणि पृथिव्यप्तेजो वाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि नवैव ॥" [22]

[22] त.सं.,सप्त पदार्थ विवेचन, पृ.17

द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय तथा अभाव सप्त पदार्थ है । द्रव्य नौ भागों में विभक्त है–पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा तथा मन । इनमें पृथिवी, जल, तेज और वायु ये चार भूत ही समवायिकारण के रूप में सृष्टि का आधार है । इस प्रकार न्याय–वैशेषिक के अनुसार परमाणुओं का संयोग होने पर सृष्टि का निर्माण होता है । वैशेषिक सूत्रों में असंख्य परमाणुओं को जगत् का मूल कारण माना गया है । असंख्य परमाणुओं के संयोग से ही सृष्टि के विभिन्न पदार्थ निर्मित होते हैं । परमाणु स्वयं अचेतन एवं निष्क्रिय होते है अतः वे स्वयं सृष्टि का आरम्भ नहीं कर सकते हैं । न्याय–वैशेषिक दर्शन के अनुसार ईश्वर अपनी इच्छा से सृष्टि की उत्पत्ति नहीं करता अपितु मनुष्यों के अदृष्ट के अनुरूप एक परमाणु का दूसरे परमाणु से संयोग स्थापित कर सृष्टि का सम्पूर्ण कार्य संपादित करता है जिससे भौतिक विश्व एवं ब्रह्माण्ड का सृजन होता है ।

उपादान एवं निमित्त कारण के विषय में भी न्याय–वैशेषिक एवं पारम्परिक भौतिकी में तथा आधुनिक विज्ञान व औपनिषदिक विचारों में समानता दिखाई देती है । पारम्परिक भौतिकी में उपादान कारण परमाणु एवं निमित्त कारण ईश्वर, आकाश, काल को स्वीकार किया गया है । इसी प्रकार न्याय–वैशेषिक में भी परमाणुओं को उपादान कारण एवं ईश्वर को निमित्त कारण माना गया है । काल व दिक् को नित्य माना गया है । इस प्रकार न्याय–वैशेषिक एवं पारम्परिक भौतिकी में उपादान एवं निमित्त कारण भिन्न–भिन्न है किन्तु आधुनिक विज्ञान एवं उपनिषदों में उपादान एवं निमित्त कारण एक ही है । आधुनिक विज्ञान में एकीकृत क्षेत्र सिद्धान्त (Unifield field theory), एवं बिगबैंग सिद्धान्त (Bigbang theory) में एक कारण पर प्रयोग सिद्ध करने का प्रयास किया गया है तथा जगत् के एककारण को स्वीकार करते हुए समग्र ब्रह्माण्ड में उस एक तत्त्व व्याप्त माना है । उपनिषदों में सृष्टि के साथ मनुष्य के अन्तः सम्बन्ध का प्रतिपादन करते हुए सभी प्राणियों में ब्रह्म को अनुस्यूत माना है । मुण्डकोपनिषद् में ऋषि ने कहा है–

"यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति

यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम् ॥" [23]

उर्णनाभि (मकड़ी) जिस प्रकार अपने शरीर से अभिन्न तन्तुओं को बाहर फैलाती है और समाहित भी कर लेती है, उसी प्रकार पृथिवी भी अनेक प्रकार की औषधियां उत्पन्न करती है ।

[23] मु. उप. 1/1/7

जीवित पुरुष से केश लोम उत्पन्न होते हैं, वैसे ही ब्रह्म से समस्त विश्व उत्पन्न होता है । परब्रह्म परमात्मा अपने अन्दर सूक्ष्म रूप में विद्यमान जड़–चेतन रूप जगत् को सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न करते हैं और प्रलय काल में पुनः अपने अन्दर समाहित कर लेते हैं । पृथिवी जिस प्रकार बिना पक्षपात के अन्न, तृण, वृक्ष, लता आदि को उत्पन्न करती है उसी प्रकार जीव भी विभिन्न कर्मों के अनुसार विभिन्न योनियों में उत्पन्न होते हैं ।

इसी प्रकार पारम्परिक भौतिकी में भी प्रत्येक पदार्थ की रचना परमाणुओं से हुई है किन्तु आधुनिक विज्ञान एवं उपनिषदों में यह स्वीकार नहीं किया गया है । आधुनिक विज्ञान में यह माना गया है कि सम्पूर्ण सृष्टि ऊर्जा का ही विविध रूप है अर्थात् सृष्टि में जो कुछ भी दृश्यमान है वह वह सब ऊर्जा ही है ऐसा अल्बर्ट आइन्सटाइन ने अपने सापेक्षवाद सिद्धान्त में स्वीकार किया है ।

"This process thinking came into physics with Einstein's relativity theory . The recognition that mass is a form of energy eliminated the concept of a material substance from science and with it also that of fundmantal structure . Subatomic particals are not made of any material stuff; they are patterns of energy. Energy, however, is associated with activity, with processes, and this implies that the nature of subatomic particles is intrinsically dynamic." [24]

"A conscious being only has motion. Consciousness is the root of all energy."[25]

सम्पूर्ण सृष्टि एक ही कारण का अभिव्यक्त रूप है । श्वेताश्वतरोपनिषद् में कार्य–कारण संघात के विषय में बताते हुए कहा गया है–

"मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।

तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥" [26]

प्रकृति को माया जानना चाहिए और महेश्वर को मायावी, उसी के अवयवभूत (कार्य–कारण संघात) से यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है ।

---

[24] Capra, Fritjof, The Tao of Physics, p.362
[25] SWAMI, JITATMANANDA, MODERN PHYSICS AND VEDANTA p.130
[26] श्वे.उप. 4/10

Fritjof Capra ने '*The Tao of Physics'* में बताया है कि कारण की ही कार्य रूप में अभिव्यक्ति होती है । सृष्टि के मूल कारण ब्रह्म की माया रूपी शक्ति से ही कार्य रूपी ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होती है–

"Brahman is the great magician who transforms himself in to the world and he performs this feat with his 'magic creative power', which is the original meaning of maya in the RigVeda"[27]

पारम्परिक भौतिकी एवं न्याय वैशेषिक में व्यष्टि से समष्टि की ओर गति प्राप्त करने पर बल दिया गया है किन्तु आधुनिक विज्ञान एवं औपनिषदिक दृष्टि में समष्टि से व्यष्टि की ओर बढ़ने का ज्ञान प्राप्त होता है क्योंकि समग्र ज्ञान होने पर प्रत्येक तत्व का ज्ञान स्वतः ही हो जाता है । इसी भाव को '*The Tao of Physics'* में Relationship between part and the whole के माध्यम से बताया गया है –

"The awareness of the unity and mutual interrelation of all things and events, the experience of all phenomena as manifestation of a basic oneness, is also the most important common characteristic of Eastern world view …… All things are seen as interdependent, inseparable, and as transient patterns of the same ultimate reality."[28]

पारम्परिक विज्ञान में सृष्टि का मूलाधार चेतना को स्वीकार नहीं किया अपितु जड़ व चेतन को भी पृथक–पृथक् रूप में स्वीकार किया है । आधुनिक भौतिक वैज्ञानिकों ने सृष्टि में रहस्य को स्वीकार करते हुए चेतना को सृष्टि का मूल कारण स्वीकार किया है तथा सम्पूर्ण जगत् चेतना का ही विस्तृत रूप है । उपनिषदों के समान ही आधुनिक वैज्ञानिकों ने यह भी स्वीकार किया कि चेतनतत्त्व ने स्वयं को ब्रह्माण्ड के रूप में व्यक्त किया है । परमतत्त्व की सत्ता कण–कण में विद्यमान होते हुए भी ब्रह्माण्ड से भिन्न प्रतीत होता है । Fritjof Capra ने '*The Tao of Physics'* में बृहदारण्यकोपनिषद् को इस प्रकार उद्धृत किया है–

"He who ,dwelling in all things,

Yet is other than all things,

[27] Capra, Fritjof, *The Tao of Physics*, p.100
[28] वही, p.362

Whom all things do not know,

Whose body all things are,

Who controls all things from within

He is your Soul, the inner Controller,

The Immortal ॥" [29]

'ईशावास्योपनिषद्' में इसी भाव को स्पष्ट करते हुए बताया है–

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥" [30]

अखिल ब्रह्माण्ड में जो भी चल एवं अचल स्थित है वह सभी चेतना से व्याप्त है । इस चेतन स्वरूप जगत् में सर्वत्र परमेश्वर विद्यमान है, समस्त जगत् उसी से परिपूर्ण है, इसका कोई भी अंश उससे रहित नहीं है । परमात्मा का सर्वदा स्मरण करते हुए निरासक्त भाव से कर्तव्य का पालन करना चाहिए । ऋषि ने प्रकृति के प्रति समग्र दृष्टि का भाव विकसित करते हुए त्यागपूर्वक उपभोग का सन्देश दिया है ।

इस प्रकार कार्य एवं कारण विषय पर औपनिषदिक चिन्तन एवं आधुनिक वैज्ञानिक विचारों में साम्यता दृष्टिगोचर होती है । कार्य कोई नवीन सृष्टि नहीं है अपितु कार्य को कारण का ही अभिव्यक्त रूप स्वीकार किया गया है । कार्य–कारण के सिद्धान्त में चेतना का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि वही सबका मूल कारण है किन्तु शास्त्रीय भौतिकी में चेतना को पृथक् कर दिया गया तथा उसी प्रकार न्याय वैशेषिक में भी यह माना गया कि चेतना उत्पन्न होती है जबकि वैदिक चिन्तन में चेतन तत्त्व की सत्ता कण–कण में व्याप्त है । 'छान्दोग्योपनिषद्' में एकत्व की सम्पुष्टि को इस प्रकार बताया गया है–

"एकमेवाद्वितीयम् ॥" [31]

---

[29] Capra, Fritjof, The Tao of Physics, p.30

[30] ईश. उप. 1

[31] छा. उप. 6/2/1

एक ही तत्त्व की अभिव्यक्ति यह अनेक रूप संसार है । 'बृहदारण्यकोपनिषद्' में प्रारम्भ में ही उद्घोषणा करते हुए बताया है–

''ब्रह्म वा इदमग्र आसीत् ॥'' [32]

ब्रह्म ही आरम्भिक तत्त्व है । 'छान्दोग्योपनिषद्' में "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" [33] की अनुभूति समस्त जड़–चेतन पर्यावरण के प्रति आत्मभाव जाग्रत करती है । अतः एक ही मूल चेतन तत्त्व से जगत् की सृष्टि हुई है । वह चेतन तत्त्व कण–कण में विद्यमान है । श्री मद्भगवद्गीता में सभी कर्मों का आधार प्रकृति को बताया गया है–

"प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।

अहंकार विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥ " [34]

वास्तव में सम्पूर्ण कर्म सब प्रकार से प्रकृति के गुणों द्वारा किये जाते हैं तो भी जिसका अन्तःकरण अहंकार से मोहित हो रहा है, ऐसा अज्ञानी 'मैं कर्ता हूं' ऐसा मानता है ।

उपनिषदों एवं आधुनिक विज्ञान के अनुसार ब्रह्माण्ड के मूल कारण चेतनतत्त्व के ज्ञान प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त किया है वह पूर्ण ज्ञान (Absolute knowladge) है जबकि पारम्परिक भौतिकी एवं न्याय–वैशेषिक दर्शन आंशिक ज्ञान (Approximate knowledge) प्रदान करता है ।

"Mystics are generally not interested in approximate knowledge. They are concerned with absolute knowledge involving an understanding of the totality of existence."॥ [35]

तैत्तिरीयोपनिषद् में समस्त जगत् को एक ही परम तत्त्व का अभिव्यक्त रूप बतलाते हुए कहा गया है–''यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तद्विजिज्ञासस्व । तद् ब्रह्मेति ॥''[36] जिससे निश्चय ही ये सब भूत उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होने पर

---

[32] बृ. उप. 1/4/10
[33] छा. उप. 3/14/1
[34] श्रीमद्भग. 3/27
[35] Capra, Fritjof, The Tao of Physics, p. 367
[36] तै. उप. 3/1/1

जिसके आश्रय से जीवित रहते हैं और अन्त में विनाशोन्मुख होकर जिसमें ये लीन होते हैं उसे विशेष रूप से जानने की इच्छा कर, वही ब्रह्म है ।

SWAMI JITATMANANDA ने '*MODERN PHYSICS AND VEDANTA*' में स्वामी विवेकानन्द के मत को इस प्रकार उद्धृत किया है–"Newton and Galileo 'Prophets of physical science', and the Upanishadic Rishis 'Prophets of spirituality', and declared that "the whole universe mental and material will be fused into one."॥ [37] सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का आधार एक तत्व है यह औपनिषदिक चिन्तन ही नहीं अपितु आधुनिक विज्ञान के भी चिन्तन का विषय है–

"The basis oneness of the universe is not only the central characteristic of the mystical experience, but is also one of the most important revelations of modern physics. It becomes appareant at the atomic level and manifests itself more and more as one penetrates deeper into matter, down into the realm of subatomic particles. The unity of all things and events will be a recurring theme throughout our comparison of modern physics and Eastern philosophy. As we study the various models of subatomic physics we shall see that they express again and again, in different ways, the same insight that the constituents of matter and the basis phenomena involving them are all interconnected, interrelated and interdependent; that they cannot be understood as isolated entities, but only as integrated parts of the whols,"॥ [38]

वर्तमान में वैज्ञानिक ब्रह्माण्ड के जिस मूल तत्त्व का अन्वेषण कर रहे हैं उस मूल तत्त्व का औपनिषदिक ऋषियों नें साक्षात्कार किया है । इस प्रकार उपनिषदों में दर्शन एवं विज्ञान दोनों है । विज्ञान रूप में अन्तर्जगत् के सत्यों का आविष्कार करते हैं तथा दर्शन के रूप में वे मूल सत्य को समग्रता में प्रस्तुत करने के लिये अन्तर्जगत् के विज्ञान को बाह्य जगत् के अन्य विज्ञानों के साथ संश्लिष्ट करते हैं ।

दार्शनिक चिन्तन का मूल व्यष्टि एवं समष्टि दोनों के बीच के विश्लेषण पर आधारित होता है । इसी के आधार पर कार्य–कारण की अभिव्यक्ति है अथवा एक नवीन सृष्टि है यह भी सुनिश्चित होता है । इसके साथ ही कार्य–कारण की प्रक्रिया में चेतना की स्थिति कैसी है ? क्या वह

[37] SWAMI, JITATMANANDA, MODERN PHYSICS AND VEDANTA p.156
[38] Capra, Fritjof, The Tao of Physics, p.142

स्वयं मूल कारण है अथवा किसी अन्य कारण का कार्य है ? एक सत्ता इस जगत् का मूल है या अनेक उपर्युक्त विषय आधुनिक विज्ञान में भी ज्वलन्त समस्या के रूप वैज्ञानिकों के समक्ष उपस्थित है । वर्तमान काल में उपनिषद् के ऋषियों तथा आधुनिक वैज्ञानिकों के चिन्तन में कितना सान्य एवं वैषम्य है । इसका शोधपरक विश्लेषण अपेक्षित है । भारतीय परम्परा में उपनिषद् के सिद्धान्त के आधार पर करोड़ो लोगों का दैनिक जीवन अग्रसर होता है । इसके साथ ही उन लोगों का विज्ञान पर भी अटूट विश्वास है क्या वैज्ञानिक शोध औपनिषद् चिन्तन के अनुकूल है या नहीं यह लोगों की आकांक्षा का विषय है । अनेक वैज्ञानिक आज आधुनिक विज्ञान के सिद्धान्तों को उपनिषद् के सिद्धान्तों के समक्ष मानते हैं तथा कुछ इसका विरोध भी करते हैं । उपर्युक्त मौलिक समस्याओं के विषय में भारतीय वैदिक चिन्तन एवं आधुनिक वैज्ञानिकों के निष्कर्ष किस प्रकार एक–दूसरे के पूरक हैं तथा दोनों का निष्कर्ष कहां तक पहुंच पाया है । विज्ञान को उपनिषदों से कितनी प्रेरणा मिली है तथा विज्ञान को उपनिषद् के किस बिन्दु तक पहुंचना है । इन सभी पक्षों को शोध के माध्यम से प्रस्तुत करना शोधार्थिनी, समाज, परम्परागत ज्ञान एवं वैज्ञानिक निष्कर्ष इन सभी बातों को ध्यान में रखकर शोधार्थिनी ने विषय का चयन किया है ।

ब्रह्माण्ड के रहस्यात्मक प्रश्नों पर वैज्ञानिक एवं वैदिक ऋषियों दोनों ने ही अपने ज्ञान पर आधारित तथ्यों को प्रस्तुत किया । अतः शोध प्रबन्ध के विषय में यह प्रश्न उपस्थित होना स्वाभाविक है कि दो भिन्न–भिन्न दृष्टियों वाली विचारधाराओं में तुलना कैसे सम्भव है ? तथा तुलनात्मक अध्ययन करना क्यों आवश्यक प्रतीत हुआ ? एक तरफ आधुनिक विज्ञान है जो कि प्रयोगों पर आधारित और विभिन्न कठिन गणितीय समीकरणों पर आधारित है और दूसरी तरफ आध्यात्मिकता से परिपूर्ण वैदिक चिन्तन है, जो अन्तर्ज्ञान पर आधारित है । वैज्ञानिकों द्वारा दिये गये निष्कर्षो एवं ऋषियों द्वारा अनुभूत तत्त्वज्ञान के मध्य में क्या साम्यता है ? क्या यह सिद्ध करना सम्भव है ?

किसी भी विषय को जानने के लिये दो प्रकार की दृष्टियों का उल्लेख किया जाता है–एक अन्तर्दृष्टि तथा दूसरी बाह्य दृष्टि । बाह्य ज्ञान सामान्यतः गणितीय, ज्यामितीय नियमों एवं प्रयोगों पर आधारित होता है जिसे आसानी से समझा जा सकता है । Fritjof Capra ने *'The Tao of physics'* में Rational knowledge के विषय में इस प्रकार बताया है–

"Rational knowledge is thus a system of abstract concepts and symbols, characterized by the linear, sequential structure which is typical of our thinking and speaking. In most languages this linear structure is made explicit by the use of alphabet which server to communicate experience and thought in long lines of letters."[39]

जिस प्रकार वैज्ञानिक जगत् में नियम आधारित ज्ञान को महत्व प्रदान किया गया है उसी प्रकार औपनिषदिक चिन्तन में अनुभूत अन्तर्ज्ञान को बताया गया है । कठोपनिषद् में बताया है कि अन्तर्ज्ञान होने पर क्या स्थिति होती है इसका वर्णन किया है–

"अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत् ।

अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥" [40]

जो अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय तथा रसहीन, नित्य और गन्धरहित है;जो अनादि, अनन्त, महतत्त्व से भी पर और ध्रुव (निश्चल) है उस आत्मतत्त्व को जानकर पुरुष मृत्यु के मुख से छूट जाता है ।

"न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्यो न विजानीमो यथैतदनु न विद्यो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि ॥"[41]

वहां उस ब्रह्म तक नेत्रेन्द्रिय नहीं जाती, वाणी नहीं जाती, मन नहीं जाता अतः जिस प्रकार शिष्य को इस ब्रह्म का उपदेश करना चाहिये, वह हम नहीं जानते वह हमारी समझ में नहीं आता । वह विदित से अन्य ही है तथा अविदित से भी परे है ।

आधुनिक विज्ञान एवं वैदिक ऋषि प्रदत्त रहस्यात्मक चिन्तन का तुलनात्मक अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि आधुनिक विज्ञान के अनुसार यह दृश्य जगत् अनन्त असीमित संभावनाओं से परिपूर्ण है तथा बहुआयामी है । अतः जो नियम एवं तर्क आधारित ज्ञान वैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रयोगों के आधार पर प्राप्त किया है वह वास्तविक ज्ञान का अंश मात्र है ।

---

[39] Capra, fritjof, The Tao of physics, p.35

[40] क.उप. 1/3/15

[41] के.उप.1/3

"We can only expect and approximate representation of reality from such a procedure, and all rational knowledge therefore necessarily limited."[42]

वैज्ञानिकों द्वारा दिये प्रयोगों पर आधारित ज्ञान को मुख्यतया तीन चरण में विभक्त करके देख सकते हैं ।

1. प्रयोगों के आधार पर तथ्य एकत्र करना ।
2. इन प्रायोगिक तथ्यों को गणितीय समीकरणों से जोड़कर सिद्ध करना ।
3. सिद्धान्त प्रतिपादित करना ।

वैज्ञानिक जगत् में किसी भी प्रयोग को करने से पहले विभिन्न तथ्यों का एकत्रीकरण किया जाता है उसी प्रकार औपनिषदिक चिन्तन में भी ज्ञान प्राप्त करने के लिये जिज्ञासाएं व्यक्त की गयी है । जिस प्रकार उपरोक्त प्रथम चरण में नवीन जिज्ञासाओं को आधार बनाकर वैज्ञानिकों द्वारा विभिन्न प्रयोग किये जाते हैं उसी प्रकार जिज्ञासात्मक प्रवृत्ति रखते हुए उपनिषदों में भी प्रश्न उपस्थित किये गये हैं–

"किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः ।

अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम् ॥" [43]

जगत् का कारणभूत ब्रह्म कैसा है ? हम किससे उत्पन्न हुए हैं ? किसके द्वारा जीवित रहते हैं ? कहां स्थित है ? और है ब्रह्मविद्गण ! हम किसके द्वारा सुख–दुख में प्रेरित होकर व्यवस्था का अनुवर्तन करते हैं । इस प्रकार जगत् की व्यवस्था, उत्पत्ति इत्यादि को देखकर यह प्रश्न मानस पर अङ्कित होते हैं कि कौन सत्ता सबके कारण रूप में विद्यमान है तथा उसी कारण शक्ति का ऋषियों ने साक्षात्कार किया है । प्रश्नोपनिषद् में सभी छः शिष्य गुरु से प्रश्न करते हैं । कात्यायन कबन्धी ने महर्षि पिप्पलाद के समीप जाकर पूछा–

"भगवन् कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ॥" [44]

भगवन् ! यह सारी प्रजा किससे उत्पन्न होती है । इस प्रकार सृष्टि सम्बन्धी प्रश्न करने पर महर्षि पिप्पलाद ने उत्तर दिया–"स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते । रयिं च प्राणं

[42]Capra, fritjof, The Tao of physics, p.35
[43] श्वे. उप. 1/1
[44] प्र.उप. 1/3

चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति ॥" [45] प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से प्रजापति ने तप किया । तप करके रयि और प्राण यह जोड़ा उत्पन्न किया और सोचा कि ये दोनों ही मेरी अनेक प्रकार की प्रजा उत्पन्न करेंगे । "आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा रयिर्वा एतत् सर्वं यन्मूर्तं चामूर्तं च तस्मान्मूर्तिरेव रयिः ॥" [46] निश्चय आदित्य ही प्राण है और रयि ही चन्द्रमा है । यह जो कुछ मूर्त (स्थूल) और अमूर्त (सूक्ष्म) है सब रयि ही है । यहां प्रजापति ही उस परमतत्त्व रूपी ब्रह्म का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं ।

वैज्ञानिक जिस प्रकार तथ्यों को सिद्ध करने के लिये प्रयत्न करते हैं तथा किये गये प्रयासों में असफलता मिलने पर भी निरन्तर सफलता के लिये प्रयत्न करते रहते हैं । उसी प्रकार ऋषियों द्वारा भी जब शिष्यों को अन्तर्ज्ञान का मार्ग प्रशस्त किया जाता है तो असफल होने पर भी पुनः प्रयत्नशील रहने का उपदेश दिया जाता है और इससे शिष्य अत्यन्त गहन स्तर तक ज्ञान प्राप्त करते हैं । छान्दोग्योपनिषद् में वर्णित न्यग्रोध फल का दृष्टान्त दिया गया है । यहां महर्षि उद्दालक श्वेतकेतु को न्यग्रोध फल लाकर उसे तोड़ने का आदेश देते हैं । शिष्य द्वारा फल के अन्दर देखने पर दाने दिखाई देते हैं परन्तु गुरु द्वारा निरन्तर प्रयत्नशील रहने का निर्देश देने पर पुनः शिष्य फल का अवलोकन करता है पर उसको कुछ भी नहीं दिखाई देता है तब गुरु ने शिष्य का मार्ग प्रशस्त करते हुए बताया कि जिसे तुम् नहीं देख पा रहे हो वही वास्तविक शक्ति है । इस प्रकार निरन्तर किये गये गहन अध्ययन के फलस्वरूप एक सार्वभौमिक सिद्धान्त की प्राप्ति हुई जो सर्वत्र पर समान रूप से सिद्ध होने वाला है ।

वैज्ञानिक किये गये समस्त प्रयोंगो के निष्कर्षों को आधार बनाकर उन्हें गणितीय समीकरणों में डालकर एक सार्वभौमिक सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं । उसी प्रकार औपनिषदिक ऋषियों ने भी गहन तप साधना के अनन्तर प्राप्त तत्त्वज्ञान को सार्वभौमिक सिद्धान्त रूप में प्रस्तुत किया । यह ऐसे सिद्धान्त है जो व्यक्ति, देश, काल की सीमा से इतर अर्थात् जिनका कहीं बाध सम्भव नहीं है, सार्वभौमिक दृष्टि से सर्वत्र व्याप्त होता है । उदाहरणतया आइन्सटीन द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त $E = m c^2$ सार्वभौमिक है । जिसके अनुसार ऊर्जा का द्रव्यमान में एवं द्रव्यमान का ऊर्जा में रूपान्तरण सम्भव है अर्थात् समस्त दृश्य जगत् ऊर्जा के ही विभिन्न रूप है ।

---

[45] प्र.उप. 1/4

[46] वही 1/5

ऋषि प्रदत्त "अहं ब्रह्मास्मि"[47] "तत्त्वमसि"[48] के अनुसार एक ही तत्त्व की सत्ता सर्वत्र व्याप्त है । अतः उपरोक्त तथ्यों को जानने के बाद यह कहना सम्भव है कि विज्ञान एवं ऋषियों का अन्तर्ज्ञान दोनों भिन्न–भिन्न मार्ग होते हुए भी एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होते हैं ।

उपनिषद् शब्द की व्युत्पत्ति, अर्थ एवं परिचय –

उपनिषद् शब्द की व्युत्पत्ति 'उप' तथा 'नि' उपसर्गपूर्वक 'सद्' धातु में 'क्विप्' प्रत्यय लगने से होती है । पाणिनि धातुपाठ में 'सद्' धातु के तीन अर्थ है– "षदलृ विशरण गत्यावसादनेषु"

1) विशरण– नाश होना, विशीर्ण होना ।

2) गति– गमन, प्राप्त होना ।

3) अवसादन– शिथिल करना, उन्मूलन करना ।

उपर्युक्त व्युत्पत्ति के अनुसार उपनिषद् वह है जो ब्रह्म के विषय में अनादिकाल आत्मस्थ अज्ञान को निर्बाध, निःसंशय और नितान्त रूप में शिथिल कर दे अथवा जीव को ब्रह्म के समीप निःसशंय पहुचायें वह उपनिषद् है । जीव को ब्रह्म के समीप पहुचाने का अर्थ है कि इन दोनों के बीच में दूरी उत्पन्न करने वाले ब्रह्म–जीव ऐक्य के अज्ञान और तन्मूलक भ्रम को दूर करके जीव में ब्रह्मैक्य का संपादन करने वाले ज्ञान का नाम उपनिषद् है । उपर्युक्त सभी अर्थों के अनुसार उपनिषद् शब्दका अर्थ है–ब्रह्मविद्या । यह ब्रह्मविद्या तीन कार्य करती है ।

1) संसार सारतामतिं सादयति– यह संसार ही सारवस्तु है, वह इस प्रकार की बुद्धि को शिथिल देती है ।
2) प्रत्यागात्मानं सादयति गमयतीति वा– यह प्रत्यागात्मा को ब्रह्म के समीप पहुचां देती है ।
3) अज्ञानं सादयति उन्मूलयतीति वा– यह अज्ञान का नाश कर देती है जिससे जीव दुःख, जन्मादि प्रवृतियों को प्राप्त नहीं करता है ।

[47] बृ. उप. 1/4/10
[48] छा. उप. 6/12/3

जिससे अविद्या या अज्ञान का नाश, ब्रह्म की प्राप्ति, दुःख या बन्धन का क्षय हो वह उपनिषद् है । इन तीन अर्थों को लेकर ही शंकराचार्य उपनिषद् को ब्रह्मविद्या का द्योतक मानते है ।

"सदेर्धातोर्विशरणगत्यवसादनार्थस्योपनिपूर्वस्य क्विप् प्रत्ययान्तस्य रूपमुपनिषद् इति ॥" [49]

'उप' तथा 'नि' उपसर्ग पूर्वक जिस 'सद्' धातु से उपनिषद् शब्द की व्युत्पत्ति हुई है, वह 'सद्' धातु गति अर्थ में प्रयुक्त होती है, जिसके ज्ञान, गमन और प्राप्ति ये तीन अर्थ होते हैं । इन तीनों में से गति का प्राप्ति अर्थ प्रयोग करना अत्यन्त उपयुक्त है–

"उप सामीप्येन नि–नितरां प्राप्नुवन्ति परं ब्रह्म यया सा उपनिषद् ॥" [50]

उपनिषद् शब्द उस विद्या का अर्थवाची है, जिसके द्वारा व्यक्ति परमात्मा के अत्यन्त निकट पहुंच जाता है । भारतीय तत्त्वज्ञान तथा धर्म–सिद्धान्तों के मूल स्त्रोत होने का गौरव उपनिषदों को प्राप्त है । वैदिक धर्म की मूल तत्त्व प्रतिपादिका 'प्रस्थानत्रयी' (उपनिषद्, गीता, ब्रह्मसूत्र) में मुख्य उपनिषद् ही है । वेद के सारभूत सिद्धान्तों के निदर्शक उपनिषद् ही 'वेदान्त'के नाम से विख्यात है । वेदान्तसार के प्रणेता सदानन्द ने स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है–

"वेदान्तो नामोपनिषत्प्रमाणं तदुपकारीणि शारीरिकसूत्रादीनि च ॥" [51]

जिसमें उपनिषदों के वाक्य प्रमाण स्वरूप दिये गये हैं अथवा जिसमें जीव का सम्यक् सूक्ष्म विवेचन किया गया है, वह वेदान्त है । मूल रूप में उपनिषद् ही वेदान्त नाम से जाने गये । उपनिषद् शब्द ज्ञान–काण्ड के उस विशाल दार्शनिक साहित्य का द्योतक है, जो कर्म की अपेक्षा ज्ञान को अधिक महत्व देता है । उपनिषद् शब्द मुख्यतया ब्रह्मविद्या का संकेतक है, क्योंकि इस विद्या के अनुशीलन से मुमुक्षुजनों की संसारबीज रूपी अविद्या नष्ट हो जाती है, वह ब्रह्म की प्राप्ति करा देती है तथा मनुष्य के गर्भवास, जन्म, जरा, मृत्यु आदि दुःख सर्वथा शिथिल हो जाते हैं ।

---

[49] क. उप. शां. भा., गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. 174
[50] श्री रामशर्मा आचार्य, 108 उपनिषद् ज्ञान खण्ड
[51] वेदान्तसार, का. 3

"अविद्यादेः संसारबीजस्य विशरणाद्धिंसनाद् विनाशनादित्यनेनार्थयोगेन.... परं ब्रह्म गमयतीति ब्रह्मगमयितृत्वेन योगाद्....गर्भवासजन्मजराद्युपद्रववृन्दस्य लोकान्तरे पौनः पुन्येन प्रवृतस्यावसादयितृत्वेन वा.... उपनिषदित्युच्यते ॥"[52]

आचार्य शंकर के मत में 'उपनिषद्' का मुख्य अर्थ ब्रह्मविद्या तथा गौण अर्थ ब्रह्मविद्या प्रतिपादक ग्रन्थ विशेष है । प्राचीन उपनिषदों ने वैदिक देवताओं से ऊपर उठकर एक अनाम– रूप ब्रह्म को ही इस विश्व का स्रष्टा, नियन्ता तथा पालनकर्ता विवेचित किया है । ब्रह्म एक ऐसी सर्वव्यापी सत्ता है, जो सृष्टि के अणु– अणु में परिव्याप्त है, जो निर्विकार, निराकार, अविनाशी, चैतन्य तथा आनन्दमय है । ब्रह्म अनन्त एवं अद्वितीय है । समस्त जगत् ब्रह्म का ही विवर्त रूप है । उपनिषदों में ब्रह्म तत्त्व का निरूपण विशद् रूप में प्राप्त होता है । एक ही परम सत्ता की प्रतिष्ठा उपनिषदों में सर्वत्र व्याप्त है । अमरकोष में उपनिषद् शब्द गूढ. धर्म एवं रहस्य के अर्थ में प्रयुक्त होता है–

"धर्मे रहस्युपनिषद् स्यात् ॥" [53]

"तद्वेदगुह्योपनिषत्सुगूढम् ॥" [54]

अर्थात् उपनिषद् वेदों के गुह्यभाग हैं और इन्हीं में आत्मा का स्वरूप निगूढ़ है अतः उपनिषद् शब्द का अर्थ गुह्य विद्या और रहस्य विद्या भी है ।

उपनिषदों की संख्या के विषय में बलदेव राज शर्मा ने 'The Concept of Atman in the Principal Upanisads' में विभिन्न विद्वानों के मत को उल्लिखित किया है । 'मुक्तिकोपनिषद्' में 108 उपनिषदों की सूची दी गयी है जिनमें दश उपनिषद् प्रमुख माने गये हैं, जो निम्न हैं– ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक ।

"सर्वोपनिषदो मध्ये सारमष्टोत्तरं शतम् ।

सकृच्छ्रवणमात्रेण सर्वाघौघनिकृन्तम् ॥"[55]

---

[52] क.उप. शां. भा., गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. 174–175

[53] अ. 3/3/93

[54] श्वे. उप. 5–6

[55] मु.उप. 1/30–39

श्वेताश्वतरोपनिषद् को ग्यारहवें उपनिषद् के रूप में स्वीकार किया गया है । मैक्समूलर महोदय ने 'मैत्रायणी उपनिषद्' को सम्मिलित करते हुए उपनिषदों की संख्या बारह स्वीकार की है । ह्यूम ने 'कौषीतकि' का परिगणन करते हुए कुल तेरह उपनिषद् माने हैं । डाइसन (Deussen) ने 'महानारायण उपनिषद्' को स्वीकारते हुए कुल चौदह उपनिषद् माने हैं । राधाकृष्णन् ने ह्यूम के 13 उपनिषदों में 5 उपनिषदों सुबाल(Subala), जाबाल(Jabala), पैंगल (Paingala), कैवल्य (Kaivalya), वज्रसूचिका (Vajrasuchika) को सम्मिलित करते हुए कुल 18 उपनिषद् स्वीकार किये हैं ।[56]

ईश, कठ, केन, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक इन दस उपनिषदों को प्रमुख उपनिषद् स्वीकार किया गया है । शंकराचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य में इन उपरिवर्णित दस उपनिषदों के अतिरिक्त कौषीतकि, जाबाल, महानारायण, पैङ्गल और मैत्रायणी इन उपनिषदों को भी उद्धृत किया है परन्तु इन पर शांकरभाष्य उपलब्ध नहीं होता है । श्वेताश्वतरोपनिषद् पर सम्प्रति जो तथाकथित भाष्य मिलता है वह आदि शंकराचार्य द्वारा रचित है या नहीं, यह विवादास्पद है । उपनिषदों पर रचित शंकराचार्य के उन्हीं भाष्यों को प्रमाण माना है जिन पर 'आनन्दगिरि' की टीका उपलब्ध होती है । प्रमुख दस उपनिषदों के शांकरभाष्य पर ही उनकी टीका मिलती है । परम्परानुसार इन सभी उपनिषदों को वैदिक एवं प्रमुख माना गया है । इनके अतिरिक्त शेष उपनिषद् वेद की अपेक्षा या तो पुराणों और तन्त्रों से जुड़ी हुई है, या किसी दर्शन विशेष से सम्बद्ध है । यहां यह कहना तर्कसंगत है कि प्रमुख और वैदिक उपनिषद् वे है जो सम्प्रदाय से रहित है । [57]

इस प्रकार उपनिषदों की संख्या के विषय में विद्वानों के भिन्न–भिन्न मत हैं, किन्तु शोधार्थिनी का विषय ग्यारह उपनिषदों (ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्यो बृहदारण्यक और श्वेताश्वतर) तक सीमित है क्योंकि उनके ऊपर शंकर के भाष्य उपलब्ध होते हैं ।

ईशावस्योपनिषद्–ईशावस्योपनिषद् का नाम उसके प्रथम मंत्र ईशावास्यमिदं के आधार पर रखा गया है । यह उपनिषद् यजुर्वेद का चालीसवां अध्याय है । इसमें 14 मंत्र है और सभी पद्यात्मक है । इसमें आत्मा का महत्वपूर्ण रहस्यात्मक वर्णन, कर्मयोग का प्रतिपादन और अन्त

[56] SHARMA, BALDEV RAJ, The concept of Atman in Principal Upanisads, p. 5
[57] वैदिक, वेदवती, उपनिषद् वाङ्मयः विविध आयाम, पृ. 16

में कर्म और ज्ञान का समुचित समन्वय प्रदान किया गया है । विद्या–अविद्या, व्यष्टि–समष्टि, सम्भूति–असम्भूति का निरूपण भी तर्कपूर्ण है । तत्त्वज्ञान के अतिरिक्त नीति विषयक अनेक प्रेरक निर्देश भी वर्णित है । सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को ईश तत्त्व से व्याप्त बताया है तथा त्यागपूर्वक उपभोग का सन्देश दिया है । ज्ञान अनुष्ठान से अमृतत्त्व की उपलब्धि होती है ।

केनोपनिषद्– इस उपनिषद् का नामकरण भी आरम्भिक शब्द केनेषितं पर आधारित है । यह उपनिषद् गद्य–पद्य मिश्रित है । सामवेद के तवलकार ब्राह्मण से सम्बन्धित यह उपनिषद् तवलकार उपनिषद् के नाम से भी प्रसिद्ध है । इसमें यक्षोपाख्यान के अन्तर्गत इन्द्र, वायु, अग्नि और पुराण प्रसिद्ध 'उमा–हेमवती आख्यान' का उल्लेख मिलता है । इसमें चार खण्ड है । प्रथम खण्ड में उपास्य ब्रह्म तथा निर्गुण ब्रह्म में अन्तर वर्णित है । द्वितीय खण्ड एवं चतुर्थ खण्ड में उमा–हेमवती आख्यान के माध्यम से परब्रह्म को सर्वशक्तिमान और देवों की अल्पशक्तिमत्ता को प्रदर्शित किया गया है ।

कठोपनिषद्– इस उपनिषद् का नाम कृष्णयजुर्वेद की कठ शाखा पर आधारित है । इस उपनिषद् में दो अध्याय है और प्रत्येक अध्याय तीन वल्लियों में विभाजित है । इसमें नचिकेता और आचार्य यम के संवाद के माध्यम से आत्मतत्त्व का निरूपण किया गया है । यम नचिकेता के प्रसिद्ध कथा से भौतिक भोगों की क्षण भंगुरता, मरणोत्तर जीवन और आत्मा के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है । नचिकेता के तीन वर एवं यमराज द्वारा उनको प्रदान करने का वर्णन है । द्वितीय वल्ली में श्रेय और प्रेय नामक दो औपनिषदिक सारतत्त्वों का उल्लेख है । शरीर रथ के प्रसिद्ध रूपक उल्लेख है ।

प्रश्नोपनिषद्– प्रश्नोपनिषद् का नाम सुकेशा, भारद्वाज आदि छः ऋषियों के महर्षि पिप्पलाद से किये गये छः प्रश्नों के आधार पर रखा गया है । यह उपनिषद् अथर्ववेद के पिप्पलाद शाखीय ब्राह्मण का अंश है और प्रत्येक प्रश्न पर एक अध्याय है । यह उपनिषद् गद्य–पद्य मिश्रित है । शिष्यों द्वारा पिप्पलाद ऋषि से ब्रह्मज्ञान पर पूछे गये प्रश्नों प्रजा की उत्पत्ति कहां से होती है ? प्रजा के धारक एवं प्रकाशक देवता कौन है ? इनमें सर्वश्रेष्ठ कौन है ? प्राणोत्पत्ति, शरीर में आगमन तथा उत्क्रमणादि कैसे होता है ? स्वप्न जागरण आदि की जिज्ञासा तथा षोडश कला सम्पन्न पुरुष का निरूपण किया गया है एवं उत्तरों का वर्णन किया गया है ।

मुण्डकोपनिषद्– यह अथर्ववेद की शौनक शाखा से सम्बद्ध है । इस उपनिषद् का विभाजन मुण्डक क्रम में है इसीलिये इसका नाम मुण्डकोपनिषद् है । इसमें तीन मुण्डक हैं तथा प्रत्येक मुण्डक के दो खण्ड है । इसमें ब्रह्मविद्या का उपदेश वर्णित है जिसे सर्वप्रथम ब्रह्मा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को दिया । यहां परा एवं अपरा रूप में विद्याओं का वर्गीकरण किया है । प्रथम खण्ड में पर ब्रह्म से सृष्टि कैसे होती हैं इत्यादि विषयों का विशद वर्णन है ।

माण्डूक्योपनिषद्– यह उपनिषद् अथर्ववेद से सम्बन्धित है । इसमें 12 मन्त्र है । इसकी मार्मिकता तथा सारगर्भिता के कारण ही आचार्य गौडपाद ने माण्डूक्यकारिकाओं की रचना की, जो चार भागों में विभक्त है–आगम प्रकरण, वैतथ्य प्रकरण, अद्वैत प्रकरण तथा अलातफल शान्ति प्रकरण के नाम से प्रसिद्ध है । इसमें ब्रह्मा को ओङ्कार स्वरूप वाला बताया गया है तथा ब्रह्म के चतुष्पाद का वर्णन है । ये चारों पाद क्रमशः अकार, उकार, मकार तथा अमात्र रूप है । इन चारों चरणों की अवस्था क्रमशः जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय है । ब्रह्म के अकार चरण को स्थूल जगत् तथा वैश्वानर कहा गया है । उकार चरण हिरण्यगर्भ, तैजस तथा सूक्ष्म जगत् माना गया है । मकार चरण को आनन्द स्वरुप प्रज्ञानघन कहा गया है । चतुर्थ चरण अमात्र, अव्यवहार्य, प्रपञ्चोपशम तथा शुद्ध स्वरूप है ।

ऐतरेयोपनिषद्– यह ऋग्वेदीय ऐतरेय आरण्यक का अंश है । यह गद्यात्मक है । ऋग्वेदीय बह्वृचों का उपनिषद् होने से इसे बह्वृचोपनिषद् भी कहा गया है । प्रथम शब्द आत्मा होने से इसे आत्मोपनिषद् भी कहा गया है । सम्पूर्ण उपनिषद् तीन अध्यायों में विभक्त है । प्रथम अध्याय में तीन खण्ड है तथा द्वितीय एवं तृतीय अध्याय में एक–एक ही खण्ड है । प्रथम अध्याय के प्रथम खण्ड में आत्मा से अनेक लोकों की उत्पत्ति, द्वितीय खण्ड में इन्द्रियों की उत्पत्ति तथा उनके निवास स्थान, तृतीय खण्ड में विभिन्न लोकों के लोकपालों की उत्पत्ति तथा उनका परमात्मा में विलय का विवेचन है । द्वितीय अध्याय में पुरुष के तीन जन्मों का वर्णन है । तृतीय अध्याय मे जीव तथा ईश्वर में उपास्य कौन है ? इसका वर्णन है ।

तैत्तिरीयोपनिषद्–कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के तैत्तिरीय आरण्यक के दस अध्यायों में से 7 से 9 तक के प्रपाठकों को तैत्तिरीयोपनिषद् कहा गया है । इन तीनों प्रपाठकों को क्रमशः शिक्षावल्ली, ब्रह्मानन्दवल्ली तथा भृगुवल्ली कहा जाता है । शिक्षावल्ली में ओङ्कार के माहात्म्य, ब्रह्मानन्दवल्ली में ब्रह्मतत्त्व विवेचन तथा भृगुवल्ली में वरुण द्वारा अपने पुत्र भृगु को दिये गये उपदेश का वर्णन है ।

छान्दोग्योपनिषद्– यह सामवेद की छन्दोग शाखा से सम्बन्धित है । सामवेद के तवलकार ब्राह्मण का अंश है । यह आठ अध्याय तथा प्रपाठकों में विभक्त है । इसमें सृष्टि विषयक चर्चा के साथ ऊकार के महत्व और अर्थ, साम के भेद और नाम, प्रणव की उत्पत्ति इत्यादि विषयों पर विचार किया है ।

बृहदारण्यकोपनिषद्– शुक्लयजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मण के आरण्यक का अन्तिम भाग है । यह उपनिषदों में सर्वाधिक विशाल है । इसमें कुल छः अध्याय है । इसमें वस्तुजगत् की उत्पत्ति होने का सिद्धान्त, अजातशत्रु और गार्ग्य का संवाद, याज्ञवल्क्य–मैत्रेयी संवाद, आत्मा का निरूपण इत्यादि विषय वर्णित हैं ।

श्वेताश्वतरोपनिषद्–यह कृष्णयजुर्वेद से सम्बन्धित है । छः अध्यायों में पद्यबद्ध है । इसमें सांख्य–योग, सगुण–निर्गुण, द्वैत–अद्वैत इत्यादि सिद्धान्तों का वर्णन है । इसका प्रारम्भ जगत् के कारण की मींमासा से होता है ।

प्रस्तुत शोध कार्य के अनन्तर निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति सम्भव हो सकेगी–

- कार्य–कारण विषयक जिज्ञासा का निराकरण किया जा सकेगा ।
- औपनिषदिक चिन्तन एवं आधुनिक विज्ञान में समन्वय स्थापित किया जा सकेगा ।
- पारम्परिक भौतिकी एवं न्याय–वैशेषिक द्वारा स्वीकृत बहुकारणवाद के स्थान पर एककारणवाद की स्थापना की जा सकेगी ।
- कार्य–कारण विषयक विभिन्न सिद्धान्तों का ज्ञान संभव हो सकेगा ।
- सृष्टि की आदि कारण के विषय में ज्ञान प्राप्त किया जा सकेगा ।
- एक कारणवाद की भावना का स्थापन किया जा सकेगा ।
- एक सार्वभौमिक दृष्टि को विकसित किया जा सकेगा ।
- एकांगी दृष्टिकोण के स्थान पर वैश्विक दृष्टिकोण का विकास सम्भव हो सकेगा ।
- प्रत्येक तत्त्व के प्रति आत्मभाव की भावना विकसित की जा सकेगी ।
- कार्य–कारण सम्बन्धी गहनदृष्टि को भारतीय जनमानस में अनुस्यूत किया जा सकेगा ।
- ऋषि के द्वारा उद्भूत वैदिक ज्ञान की सनातनता और अधिक दृढ़ हो पाएगी ।
- वैदिक वाङ्मय के प्रति पाठकों की दृष्टि और अधिक वैज्ञानिक हो पाएगी ।

- कार्य रूपी ब्रह्माण्ड ब्रह्म रूपी कारण का ही अभिव्यक्त रूप है यह सिद्धान्त प्रस्तुत किया जा सकेगा ।
- जड़–चेतन सम्बन्धी भेद को समाप्त किया जा सकेगा ।
- समष्टिपरक दृष्टिकोण विकसित किया जा सकेगा ।
- कारण व कार्य में अभेद को स्वीकार किया जा सकेगा ।
- पारम्परिक भौतिकी द्वारा स्वीकृत जड़ एवं चेतन के पार्थक्य को बताते हुए उसकी हानि के प्रति जागरूक किया जा सकेगा ।
- समग्र सृष्टि को एक ही चेतनतत्त्व से प्रादूर्भूत होती है इस भावना को जन मानस में व्याप्त किया जा सकेगा ।

सर्वेक्षण (Existing Research in this area)

- Naess, Arne, *'Ecology, Community and Lifestyle, outline of an Ecology'*, Cambridge University Press,1989
- Capra, Fritjof, '*The Tao of Physics: An Exploration of the Parallels between Modern Physics and Eastern Mysticism',* Shambhala Publications, Berkley, California, 1991
- Capra, Fritjof, *'The Web of Life 'A New Synthesis of Mind and Matter from the author of the Tao of Physics',* Harper Collins Publishers, 1996
- Schrodinger, Erwin, 'What is Life?', London Cambridge University Press, 2010
- TATHAGATANANDA, SWAMI, *'ALBERT EINSTEIN HIS HUMAN SIDE',* The Vedanta Socienty of New York, 2009
- Panda, N. C., '*Māyā in Physics'*, Motilal Banarsidass Publishers Private Limited, Delhi, 2005
- MUKHYANANDA, SWAMI, *'VEDANTA IN CONTEXT OF MODERN SCIENCE (A COMPARATIVE STUDY)'* , Bharatiya Vidya Bhavan, Mumbai, 1997
- JITATMANANDA, SWAMI, '*MODERN PHYSICS AND VEDANTA'*, BHARATIYA VIDYA BHAWAN, MUMBAI, 2012
- JITATMANANDA, SWAMI, '*HOLISTIC SCIENCE AND VEDANTA'* , BHARATIYA VIDYA BHAWAN, MUMBAI, 1991

- Deshpande, Dhananjay, '*MODERN SCIENCES IN VEDAS'*, BHARATIYA VIDYA BHAWAN, MUMBAI, 2007
- Verma, Shri Ram, '*Vedas: The Sourse of Ultimate Science'*, Nag Publication, Delhi, 2005
- Das,Indulata, '*MYSTICISM AND THE UPANISADS'*, Nag Publishers, Delhi, 2007
- DAKSHINAMURTI, CHIRRAVURI, '*ORIGIN OF UNIVERSE VEDIC APPROCH'*, BHARTIYA VIDHYA BHAWAN, MUMBI, 2004
- ITHAMAR THEODOR and ZHIHUM YAO, '*BRAHMAN AND DAO'*, (Comparative Studies of Indian and Chinese Philosophy and Religion), Lexington Books, United Kingdom 2014
- Mishra, Umesh, '*Nyaya-vaisesika Conception of matter in Indian Philosophy'*; Bhartiya kala Prakashan, Delhi **,** 2006
- Mishra, Rudrakanta, *'Theory of Creation'*, Tirabhukti publication, Allahabad, 1992
- Schrondinger, Erwin, '*My View of the world'*, Ox Bow Press, USA, 1961|
- मुळ, गुणाकर, '*आइन्सटाइन और ब्रह्माण्ड'*, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2009
- कुमार, शशिप्रभा, '*वैशेषिक दर्शन में पदार्थ निरूपण*'; प्रकाशन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1992
- तातेड,सिंह, सोहन, विद्यासागर, '*भारतीय दर्शन की मौलिक अवधारणाएं'*, लिट्रेरी सर्किल, जयपुर,2011
- शर्मा राममूर्ति, *'न्याय–वैशेषिक एक चिन्तन',राष्ट्रीयसंस्कृतसंस्थानम्,* नई दिल्ली 1998
- वर्मा, विष्णुकान्त, '*सृष्टि उत्पत्ति की वैदिक परिकल्पना'*, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली 2008
- ओझा, डी.डी., '*विज्ञान और वेद'*, साईण्टिफिक पब्लिशर्स, जोधपुर, 2005
- भाटिया, ऋषि गोपाल, *सृष्टि की उत्पत्ति,* सिद्धार्थ पब्लिकेशन, दिल्ली 1990
- सुरेश्वर मेहर, '*भारतीय दर्शन एवं विज्ञान में सृष्टि संरचना का अनुशीलन ('जगदीश चन्द्र हसीजा–कृत अविनाशी विश्व–नाटक' के विशेष परिपेक्ष्य में)'* ,जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 2012 (शोध–प्रबन्ध)
- जैन, सपना, '*वैशेषिक दर्शन एवं जैन दर्शन में परमाणुवादः एक तुलनात्मक अध्ययन'*, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 2010

पूर्व शोध कार्यों से प्रस्तुत शोधकार्य की विशिष्टता (In what way is this research is going to be different from existing work in this area)

- Arne Naess ने *'Ecology, Community and Lifestyle, outline of an Ecology'* में गहन पारिस्थितिकीय विचारधारा विस्तृत रूप में बताते हुए मनुष्य एवं प्रकृति के अन्तर्सम्बन्धों पर बल दिया है तथा प्रकृति को स्व का सार बताया है ।
- Fritjof Capra ने '*The Tao of Physics'* में पारम्परिक भौतिकी की रूपरेखा को प्रस्तुत करते हुए पूर्व के रहस्यवाद तथा आधुनिक भौतिकी में निहित साम्यता को प्रतिपादित किया है । यहां हिन्दूदर्शन, बौद्ध दर्शन, चीन का ताओ दर्शन, जापान के येन दर्शन का भी विवरण प्रस्तुत किया गया है ।
- Fritjof Capra ने *'The Web of Life'* में गहन पारिस्थितिकीय चिन्तन के द्वारा मनुष्य का प्रकृति के प्रति एवं पृथिवी समुदाय के साथ व्यवहार तथा जीवन पद्धति का उल्लेख किया है ।
- ERWIN Schrodinger ने '*What is Life?'* पुस्तक में क्लासिक भौतिकी एवं आधुनिक भौतिकी का विश्लेषण करते हुए Mind और Matter विषय का विस्तृत विवेचन किया है ।
- SWAMI TATHAGATANANDA, '*ALBERT EINSTEIN HIS HUMAN SIDE'* में आइन्सटाइन के जीवन के विभिन्न पक्षों तथा सिद्धान्तों को वर्णित किया है । आइन्सटाइन ने वैज्ञानिक सिद्धान्तों के द्वारा जिस रहस्य को प्रतिपादित किया वह ऋषि प्रदत्त रहस्यवाद की ही एक स्वरूप प्रतीत होता है ।
- N. C. Panda ने '*Māyā in Physics'* में विज्ञान एवं शास्त्र का सामान्य वर्णन प्रस्तुत किया गया है । यहां वैशेषिक दर्शन का भी सामान्य विवेचन प्रस्तुत किया गया है । आधुनिक विज्ञान सम्बन्धी प्रमुख सिद्धान्तों एवं खोजों का विवरण भी प्रस्तुत किया है । भौतिक जगत् के मूल कारण के विषय में जिज्ञासा प्रकट की है तथा अद्वैत वेदान्त के प्रमुक सिद्धान्तों एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण में सामञ्जस्य को वर्णित किया गया है ।
- SWAMI MUKHYANANDA, '*VEDANTA IN CONTEXT OF MODERN SCIENCE (A COMPARATIVE STUDY)'* में वेदान्त, सांख्य, आधुनिक विज्ञान एवं पाश्चात्य विचारधारा का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है ।

- Swami Jitatmanand ने *'Modern Physics and Vedant'* में आधुनिक विज्ञान एवं वेदान्त के सिद्धान्तों की समानता को स्पष्ट करते हुए उनमें एक्यनिरूपित करने का प्रयास किया है ।
- Swami Jitatmanand ने '*HOLISTIC SCIENCE AND VEDANTA'* सार्वभौमिक दृष्टि को प्रस्तुत किया है, जिसमें जड़ एवं चेतन तत्त्व के सार्वभौमिक चिन्तन को प्रस्तुत करते हुए उनका नवीन दृष्टि से प्रतिपादन किया है । नवीन वैज्ञानिक सिद्धान्तों में व्याप्त सार्वभौमिक दृष्टि को प्रस्तुत किया है ।
- ITHAMAR THEODOR and ZHIHUM YAO ने '*BRAHMAN AND DAO'*, (Comparative Studies of Indian and Chinese Philosophy and Religion), पुस्तक में Metaphysics and Soteriology , ethics, Body, health and speiritality, language and culture इत्यादि विषयों का वर्णन किया है ।
- Umesh Mishra ने '*Nyaya-vaisesika Conception of matter in Indian Philosophy'* में न्याय–वैशेषिक दर्शन में पदार्थ के विवेचन को प्रस्तुत किया है ।
- Rudrakanta Mishra ने '*Theory of Creation'* में वैदिक संहिताओं, उपनिषदों, न्याय–वैशेषिक दर्शन, सांख्य–योग, पूर्व मींमासा तथा वेदान्त में सृष्टि उत्पत्ति की अवधारणा को प्रस्तुत किया है ।
- गुणाकर मुळ ने '*आइन्सटाइन और ब्रह्माण्ड*' में आइन्सटाइन के वैज्ञानिक जीवन को प्रस्तुत किया है । इसमें सामान्य एवं विशेष सापेक्षता सिद्धान्त तथा पदार्थ तथा ऊर्जा का परस्पर रूपान्तरण संभव है यह प्रतिपादित किया है ।
- सोहन राज तातेड, विद्यासागर सिंह ने '*भारतीय दर्शन की मौलिक अवधारणाएं'*, नामक पुस्तक में आत्मा, कार्य–कारण, कर्म एवं पुनर्जन्म, बन्धन एवं मोक्ष, मायावाद, विज्ञान और दर्शन, विज्ञान और अध्यात्म आदि विभिन्न विषयों का वर्णन किया है ।
- डॉ विष्णु कान्तवर्मा ने '*सृष्टि उत्पत्ति की वैदिक परिकल्पना'* पुस्तक में सृष्टि उत्पत्ति की वैदिक प्रक्रिया को समझाते हुए सृष्टि उत्पत्ति सम्बन्धी आधुनिक वैज्ञानिक अवधारणाओं को भी तर्कसंगत ढंग से प्रस्तुत किया है ।
- डॉ डी.डी. ओझा ने '*विज्ञान एवं वेद'* में वेद के विभिन्न पक्षों को वैज्ञानिक दृष्टि से प्रस्तुत किया है ।

- राममूर्ति शर्मा ने '*न्याय–वैशेषिक एक चिन्तन' में* न्याय एवं वैशेषिक दर्शन की मूल दृष्टि तथा सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया गया है ।
- ऋषि गोपाल भाटिया ने '*सृष्टि की उत्पत्ति'* में विभिन्न दर्शन सम्प्रदायों में वर्णित ब्रह्माण्ड उत्पत्ति के सिद्धान्तों का वर्णन किया है ।
- सपना जैन ने *'वैशेषिक दर्शन एवं जैन दर्शन में परमाणुवादः एक तुलनात्मक अध्ययन'* में वैशेषिक दर्शन एवं जैन दर्शन में परमाणुवाद का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है । यहां भारतीय परम्परा एवं पाश्चात्य परम्परा में वर्णित परमाणुवाद पर संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया गया है ।
- सुरेश्ववर मेहर के शोध–प्रबन्ध '*भारतीय दर्शन एवं विज्ञान में सृष्टि संरचना का अनुशीलन ('जगदीश चन्द्र हसीजा–कृत अविनाशी विश्व–नाटक' के विशेष परिपेक्ष्य में)'* में भारतीय दर्शन एवं विज्ञान में सृष्टि संरचना सम्बन्धी सिद्धान्तों का विस्तृत विवेचन किया गया है ।

इस प्रकार पूर्वोक्त कार्यों के अवलोकन से स्पष्ट है कि 'प्रमुख उपनिषदों एवं आधुनिक विज्ञान में कार्य–कारण सिद्धान्त' विषय पर अभी तक कोई स्वतन्त्र शोध कार्य नहीं हुआ है । कार्य–कारण सिद्धान्त, उपनिषदों एवं आधुनिक विज्ञान विषय पर स्वतन्त्र रूप से उच्चकोटि के कार्य उपलब्ध हैं तथा वर्तमान में भी हो रहे हैं । लेख व पुस्तकें भी लिखी गयी है । किन्तु उपनिषद् एवं आधुनिक विज्ञान दोनों का समन्वित रूप से कोई शोध कार्य नहीं हुआ है । उपनिषद् सनातन विज्ञान है तथा उपनिषदों की पद्धति वैज्ञानिक है । अतः उपनिषदों एवं आधुनिक विज्ञान को तुलनात्मक दृष्टि से समझना एवं प्रस्तुत करना आवश्यक है । इस प्रकार विषय को शोध की दृष्टि से विकसित करने की आवश्यकता है ।

शोध प्रविधि (Approach/Method/Technique)

यह शोध कार्य मुख्यतः विश्लेषणात्मक (Analytical), सान्दर्भिक (Contextual), तुलनात्मक(Comparetive) प्रविधि से किया गया है । इसमें निम्न बिन्दुओं को प्राथमिकता देते हुए एवं उनकी सहायता लेते हुए कार्य किया गया है–

- प्रमुख उपनिषदों एवं आधुनिक विज्ञान में वर्णित कार्य–कारण सिद्धान्त का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है ।

- पारम्परिक भौतिकी एवं न्याय वैशेषिक दर्शन में स्वीकृत कार्य–कारण सिद्धान्त को आधार बनाकर कार्य किया गया है ।

उपर्युक्त प्रविधि के आधार पर प्रमुख उपनिषदों एवं आधुनिक विज्ञान में कार्य–कारण से सम्बद्ध प्रसंगों का अन्वेषण किया गया है । विश्लेषणात्मक विधि के द्वारा जहां सम्बद्ध प्रसङ्गों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण किया गया है वहीं सान्दर्भिक विधि से विषय की वैश्विकता को प्रतिपादित करते हुए शोध–प्रारूप में उक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु विश्लेषण किया गया है । न्याय–वैशेषिक, पारम्परिक भौतिकी, आधुनिक भौतिकी एवं प्रमुख उपनिषदों में वर्णित कार्य–कारण सम्बन्धी प्रसंगों का अध्ययन किया है तथा आवश्यकतानुसार यथोचित अध्यायों में विभाजित करके अध्यायों को पुनः बिन्दु व उपबिन्दुओं में विभाजित करते हुए तार्किक विश्लेषण के द्वारा प्रस्तुत किया गया है । इस क्रम में अनेक पुस्तकालयों की सहायता ली गयी है । अन्ततः सम्पूर्ण शोध–प्रबन्ध इसी प्रविधि से पूर्ण किया गया है ।

द्वितीय अध्याय

वैदिक परम्परा में कार्य–कारण सिद्धान्त

वेद धर्म, दर्शन, संस्कृति एवं सभ्यता के आदि स्त्रोत है । विश्व के सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ के रूप में मान्य वेद शाश्वत् एवं यथार्थ ज्ञानराशि के समुच्चय हैं, जिन्हें वैदिक ऋषियों ने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा है, अनुभव किया है । वैदिक ऋचाओं में निहित ज्ञान अनन्त है तथा उनकी शिक्षाओं में मानव–मात्र ही नहीं अपितु समस्त सृष्टि के जीवधारी घटकों के कल्याण एवं सुख की भावना निहित है अतः वेदों की महिमा एवं गरिमा अतुलनीय है ।

वैदिक संहिताओं में कार्य–कारण सिद्धान्त

वैदिक ऋषिगणों ने अपनी दिव्यदृष्टि से जिस परमसत्य का साक्षात्कार किया उसका विवेचन ही वैदिक दर्शन के रूप में प्रकट हुआ है अतः वैदिक ऋषियों की गहन तप साधना की प्रभावी फलश्रुति ही वैदिक दर्शन है । ऋषियों ने तपोवन में विज्ञान के विविध रूपों का अनुसंधान किया तथा प्रकृति एवं पदार्थ के रहस्यात्मक वैज्ञानिक पक्ष को भी उजागर किया है । अनादिकाल से ही प्रबुद्धमानव की यह शाश्वत् जिज्ञासा रही है कि समग्र ब्रह्माण्ड का मूल कारण क्या है ? ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के मूल में कारण एक है या अनेक ? कहां से उत्पन्न हुआ है ? कैसे उत्पन्न हुआ है ? इसके निर्माण में किन उपकरणों का प्रयोग किया गया है ? कारण एवं कार्य परस्पर किस प्रकार सम्बन्धित हैं ? कार्य कारण का ही अभिव्यक्त रूप है अथवा नवीन उत्पत्ति है ? आदि प्रश्न स्वतः ही हमारे अन्तःकरण में प्रादूर्भूत होते हैं । यह प्रश्न ऋग्वेद में इस प्रकार उपस्थित किया गया है–

"को अद्धा वेद क इह प्र वोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ।

अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ॥" [1]

कौन मनुष्य जानता है और कौन यह कह सकता है कि यह सृष्टि कहां से और किस प्रकार से उत्पन्न हुई ? क्योंकि विद्वान लोग भी इस सृष्टि के उत्पन्न होने के बाद ही पैदा हुए, इसलिये यह जो सृष्टि उत्पन्न हुई, उसे ठीक–ठीक बताने में कौन समर्थ है ?

---

[1] ऋ. 10/129/6

"इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ॥

यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग. वेद यदि वा न वेद ॥" [2]

इस सृष्टि का उत्पादन कहां से हुआ, किसने रचना की और किसने नहीं की ये सभी वही एक मात्र परमेश्वर ही जानते हैं ? जो इस परमधाम में रहते हुए इस सृष्टि के अध्यक्ष है । सम्भव है, वे भी इस सम्बन्ध में पूर्णतया न जानते हो ।

"किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।

संतस्थाने अजरे इतऊती अहानि पूर्वीरुषसो जरन्त ॥" [3]

वह कौन सा वृक्ष और कौन सा वन है, जिससे उपादान प्राप्त करके दिव्यलोक और पृथिवी लोक को रचा गया है ? ये दोनों लोक परस्पर आश्रित, देवताओं से संरक्षित तथा जीर्णरहित हैं, दिन और रात्रि दोनों इनसे परिचित हैं ।

ऋग्वेद की एक ऋचा में जगत्कर्ता का तक्षा रूप में स्मरण किया गया है । जिस प्रकार बढ़ई काष्ठ के उपकरणों से सजाकर भवन निर्माण करता है, उसी प्रकार प्रजापति ने जगत् की रचना की है ।

"कि स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत् ।

यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥" [4]

सृष्टि निर्माण से पूर्व परमात्मा किस आश्रय पर अधिष्ठित थे ? सृष्टि के निर्माण में प्रयुक्त होने वाला मूल द्रव्य क्या था ? कैसा था ? उन सर्वदृष्टा विश्वकर्मा परमात्मा ने इस सुविस्तृत पृथिवी और महान् द्युलोक का सृजन अपनी सामर्थ्य से कहां रहकर किया ? इस प्रकार मानव मन की जिज्ञासा को ऋषियों ने पहले ही स्पष्ट कर दिया है ।

वेद की ऋचाओं में एक गुह्य, प्रतीकात्मक एवं रहस्यमय ज्ञान निहित है । वैदिक दर्शन में वर्णित कार्य–कारण सिद्धान्त भी प्रतीकों एवं रहस्यों से आवृत है । मन्त्रों में निहित गूढ़ ज्ञान

---

[2] ऋ. 10/129/7
[3] वही 10/31/7
[4] वही 10/81/2

को प्राप्त करने के लिये इन संकेतों का अनावरण आवश्यक है । सृष्टि रचना की आधारभूत सत्ता को वेद में अनेक नामों से सम्बोधित किया गया है– विश्वकर्मा, इन्द्र, बृहस्पति, पुरुष, अदितिः, आपः, ब्रह्मा, आत्मा, हिरण्यगर्भः, मित्र, वरुणः, अश्वः, बृहतीः, आपः, अपानपात्, अर्यमा, वसिष्ठः, अगस्त्यः, पुरूरवः, अप्सरा, उर्वशी आदि विविध नामों से सम्बोधित किया गया है । एक ही परमात्मा की विभिन्न शक्तियों को विभिन्न रूप व नाम देकर अनेकानेक देवों की कल्पना की गयी है किन्तु जगत् की रचना करने वाली वास्तविक शक्ति एक ही है जिसे भिन्न–भिन्न नाम से सम्बोधित किया गया है । वैदिक परम्परा में कार्य–कारण सिद्धान्त का जो स्वरूप वर्णित किया है, उसमें उपादान एवं निमित्त कारण भिन्न–भिन्न नहीं है । जगत् जिस उपादान कारण निर्मित हुआ है, उसे परमतत्त्व रूप एकात्मक सत्ता से भिन्न नहीं माना है । उपादान एवं निमित्त दोनों ही कारण एक ही सत्ता में अनुस्यूत है । इस प्रकार रचयिता एवं रचित जगत् नितान्त भिन्न नहीं माने गये हैं, अपितु रचयिता जगत् की रचना करके उसी में व्याप्त हो जाता है अर्थात् रचयिता ही रचित हो जाता है । वेदों में सृष्टि संरचना के विभिन्न प्रतीकों का उल्लेख किया गया है ।

- अदिति– यह तीन मूल भौतिक तत्त्वों मित्र, वरुण, अर्यमा के संघात का प्रतीक है । अदिति का दूसरा नाम अनर्वन भी है ।
- आपः– यह मित्र, वरुण, अर्यमा की उद्वेलित क्रियाशील अवस्था के समग्र रूप का प्रतीक है । इस अवस्था के अन्य नाम सलिल, माया एवं असत् है ।
- बृहती आपः– यह क्रियाशील तीन तत्त्वों की अवस्था का प्रतीक है, जब इनमें परस्पर क्रिया के परिणामस्वरूप यौगिक बनते हैं ।
- शम्बर– यह द्रव आपः में स्वनिर्मित चक्रीय परिवर्तन रूपे अनेकानेक भंवरों के समग्र रूप का प्रतीक है ।
- हिरण्यगर्भ– वज्रपात के अनन्तर बृहतीः आपः में हुए अग्नि ताण्डव का प्रतीक है । इसे मार्तण्डव भी कहा गया है ।
- उषा– सृष्टिकाल का प्रतीक है ।
- नक्तः–प्रलयकाल का प्रतीक है ।
- सोमः– विकिरण उर्जा का प्रतीक है ।
- मित्र– वरुण–मित्र वरुण मौलिक कण है ।
- अर्यमन्– यह प्रकृति का विकिरण अंश है ।

- भृगु– प्रलयकाल में सुरक्षित रखा गया ऊर्जा तत्त्व है जो सृष्टि के आरम्भ में गति का तारतम्य बनाये रखता है ।
- वैश्वानर अग्नि– यह भौतिक शक्ति तत्त्व है । जिससे मानव में अन्य प्राणियों से उत्कृष्ट मानसिक विकास संभव हुआ है ।
- अश्वः– शक्ति का, ऊर्जा का प्रतीक है ।

ऋग्वेद में कार्य–कारण सिद्धान्त

इस प्रकार ब्रह्माण्ड का मूल कारण क्या है ? एवं इसकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई ? यह प्रारम्भ से ही मानव जिज्ञासा का विषय रहा हैं । ज्ञान की अनुपम निधि वेद के हिरण्यगर्भ, नासदीय, पुरुष, वाङ्मनस आदि दार्शनिक सूक्तों में सृष्ट्युत्पत्ति पूर्व की अवस्था तथा सृष्टि सर्जन विषयक तथ्य मनोरम रूप में वर्णित हुए हैं । ऋग्वेद के विभिन्न सूक्तों में दर्शन, तत्त्वज्ञान तथा आचार एवं नीति विषयक मन्त्रों का बाहुल्य है । ब्रह्माण्ड का मूल कारण क्या हैं ? इस विषय में ऋग्वेद का '**अमघर्षण सूक्त**' (ऋग्वेद 10/190/1–3) भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं जिसके देवता भाववृतम् है । भाव का अर्थ है होना, तदनुसार भाववृतम् का अर्थ होता है जो हुआ है, उसका वृत या चक्र । इस सूक्त में सृष्टि के विलय–प्रलय तथा पुनः सृष्टि होने के चक्र का सूत्रात्मक वर्णन किया गया है–

"ऋतं च सत्यं चाभीद्धातपसोऽध्यजायत । ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः । समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत । अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी । सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् । दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥" [5]

महान् प्रकाशमान तप से ऋत एवं सत्य (मूल तत्त्व तथा भासित होने वाले प्रकृति पदार्थों की अधिकृत उत्पत्ति हुई । सृष्टि काल पूरा होने पर तब रात्रि उत्पन्न हुई फिर समुद्र उत्पन्न हुआ । अर्णव समुद्र के माध्यम से संवत्सर (समय–कालचक्र) का प्रादूर्भाव हुआ । विश्व को वश में रखने वाले परमात्मा ने पलक झपकने की तरह दिनों एवं रात्रियों को स्वरूप दिया । विधाता परमात्मा ने सूर्य एवं चन्द्रमा को, आकाश एवं पृथिवी को, अन्तरिक्ष एवं स्वर्गलोक को पहले के ही तरह विनिर्मित किया ।

[5] ऋ. 10/190/1–3

ऋग्वेद के दशम मण्डल के **नासदीय सूक्त** (ऋग्वेद 10/129/1–7) में जगत् की उत्पत्ति से पूर्व किस प्रकार की अवस्था थी तथा उत्पत्ति के निमित्त साधन कौन–कौन से थे, तथा सत् और असत् से भिन्न स्थिति किस प्रकार थी, इत्यादि विषयों का वर्णन किया गया है–

"नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।

किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥" [6]

प्रलयकाल में पंचभूतादि सृष्टि का अस्तित्व नहीं था और न अभावग्रस्त असत् सृष्टि का अस्तित्व था । उस समय भूलोक, आकाश तथा आकाशादि से परे अन्य लोक नहीं थे । सबको आच्छादित करने वाले ब्रह्माण्ड भी नहीं थे । किसका स्थान कहां था ? अगाध और गम्भीर जल का भी अस्तित्व कहां था ?

"न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः ।

आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ॥" [7]

उस समय न मृत्यु थी, न अमरता का अस्तित्व था, (सूर्य–चन्द्र के अभाव से) दिन–रात्रि का ज्ञान भी नहीं था । प्राणवायु भी नहीं थी । एक मात्र ब्रह्म का अस्तित्व विद्यमान था । अन्य किसी भी वस्तु का अस्तित्व उस समय नहीं था ।

"तम आसीत्तमसा गू∞हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ।

तुच्छयेनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम् ॥" [8]

सृष्टि से पूर्व प्रलयकाल में सम्पूर्ण विश्व मायावी अन्धकार से ग्रस्त था, सभी अव्यक्त और सर्वत्र एक ही प्रवाह था । उस समय जो कुछ था, वह चारों ओर से सत् असत् तत्त्व से आच्छादित था । वही एक अविनाशी तत्त्व तपश्चर्या के प्रभाव से उत्पन्न हुआ ।

---

[6] ऋ. 10/129/1
[7] वही 10/129/2
[8] वही 10/129/3

"कामस्तदग्रे समवर्ततााधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।

सतो बन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥" [9]

सर्वप्रथम परब्रह्म परमात्मा के मन में विराट् सृष्टि को उत्पन्न करने की इच्छा शक्ति प्रकट हुई । तत्पश्चात् उस मन से सबसे पहले उत्पत्ति का कारण उत्पन्न हुआ । ज्ञानीजनों ने विवेक, बुद्धि द्वारा हृदय में विचार करके व्यक्त न होने वाले असत् से सत् तत्त्व के उत्पत्ति स्थान निरूपित किये ।

वैदिक कार्य–कारण सिद्धान्त की दृष्टि से ऋग्वेद का **पुरुष सूक्त** (ऋग्वेद 10/90/1–16) भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है । पुरुष सूक्त में पुरुष का विवेचन मूल कारण के रूप में किया गया है । इस सूक्त के ऋषि 'नारायण' तथा देवता 'पुरुष' हैं । इसमें कुल 16 मन्त्रों में परमपुरुष परमात्मा से विराट् यज्ञ पुरुष के प्रकट होने तथा उसके द्वारा क्रमशः सृष्टि विकसित होने का रहस्यात्मक विवेचन किया गया है । पुरुष सूक्त में पहले विराट् पुरुष की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है–

"सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात् ।

स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठदद्दशाङ्गुलम् ।

.....

ततो विष्वड् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥" [10]

सहस्त्र शिरों वाले, सहस्त्रों नेत्र वाले, सहस्त्रों चरण वाले, जो विराट् पुरुष हैं, वे सारे ब्रह्माण्ड का अतिक्रमण करके उसे दस अङ्गुलियों में आवृत किये हुए हैं । जो कुछ इस समय वर्तमान है, जो कुछ उत्पन्न हुआ है तथा जो कुछ उत्पन्न होने वाला है वह सब पुरुष ही है । पुरुष के एक चतुर्थांश से सम्पूर्ण सृष्टि का सृजन हुआ है । इस जगत् का जितना भी विस्तार है, उससे भी बड़ा विराट् पुरुष है । इस अमर जीव जगत् का भी वही स्वामी है । जो अन्न द्वारा वृद्धि को प्राप्त करते हैं उनके भी वही स्वामी है । ऊपर दिव्यलोक में जिसके तीन चरण हैं, उस विराट्

[9] ऋ.10/129/4

[10] वही. 10/90/1–4

पुरुष के एक भाग से यह पुनः प्रकट हुआ । तब अन्न खाने वाले प्राणियों तथा अन्न न खाने वाले वनस्पति आदि को भी संव्याप्त किया ।

परम पुरुष परमात्मा से विराट् की उत्पत्ति के पश्चात् किस प्रकार विराट् से सृष्टि की रचना हुई यह बताया गया है –

"तस्माद्विराञ्जायत विराजो अधिपूरुषः ।

स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥" [11]

अधिष्ठाता परम पुरुष परमात्मा से उस विराट् की उत्पत्ति हुई । वह विराट् (मूलतत्त्व) प्रकट होने पर विभाजित होने लगा, उससे भूमि आदि पिण्डों तथा प्राणियों की उत्पत्ति हुई ।

"तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।

पशून्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये ॥" [12]

उस सर्वहुत यज्ञ से तृप्तिकारक आज्य (पोषक सार तत्त्व) उत्पन्न हुआ । उससे वायु में गमनशील, वनों तथा ग्रामों में रहने वाले प्राणियों की उत्पत्ति हुई । "तस्मादश्वा अजायन्त ये के .....लोकाँ अकल्पयन् ॥" [13] उस विराट् यज्ञ पुरुष से दोनों तरफ दातँ वाले पशु, घोड़े, बकरी और भेड़े आदि उत्पन्न हुए । इस विराट् पुरुष के मुख से ब्रह्मविद् की, बाहुओं से शौर्यवान् क्षत्रिय, ऊरू प्रदेश से तथा पैरों से शुद्र वर्गों की प्रवृत्तियों की उत्पत्ति हुई । विराट् पुरुष की नाभि से अन्तरिक्ष, सिर से द्युलोक, पैरो से भूमि, कानों से दिशाएं प्रकट हुई इसी प्रकार लोकों को निर्मित किया गया ।

ऋग्वेद के दशम मण्डल का वाड़मनस/ वागाम्भृणी सूक्त (ऋग्वेद 10/125/1–8) में भी जगत् के मूल कारण का वर्णन है ।इसमें आठ मन्त्रों में परमात्मा अपनी ज्ञानशक्ति की प्रतीक वाक् के वायु रूप में स्वयं अपनी महिमा तथा अपने बल एवं ऐश्वर्य का वर्णन करते हैं ।

"अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।

---

[11] ऋ. 10/90/5

[12] वही 10/90/8

[13] वही 10/90/10–14

परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव ॥"[14]

समस्त लोकों को विनिर्मित करती हुई मैं वायु के समान सभी जगह संचरित होती हूँ । मेरी महिमा स्वर्गलोक और पृथिवी से भी महान् है ।

"अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्माद्विषे शरवे हन्तवा उ ।

अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥" [15]

जिस समय रूद्रदेव ब्रह्मद्रोही शत्रुओं का विध्वंस करने के लिये सचेष्ट होते हैं उस समय दुष्टों को पीड़ित करने वाले रूद्र के धनुष बाण का सन्धान मैं ही करती हूँ । मनुष्यों के हित के लिये में संग्राम करती हूँ । मैं ही द्युलोक और पृथ्वी लोक दोनों को संव्याप्त करती हूँ ।

कार्य–कारण सम्बन्धी जिज्ञासा के समाधान में ऋग्वेद के **हिरण्यगर्भ सूक्त** (ऋग्वेद 10/121/1–10) में सृष्टि के आदि में हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है । इस सूक्त के ऋषि हिरण्यगर्भ–प्राजापत्य है तथा देवता 'क' है जो प्रजापति परमात्मा का वाचक है । यहां दस मन्त्रों में जगत् रचयिता परमात्मा का स्मरण किया गया है ।

"हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥"[16]

आदिकाल में हिरण्यगर्भ सम्यक् रूप से अवस्थित था । सभी उत्पत्तिशील पदार्थों का एक ही स्थायी परमात्मा है । वही इस पृथिवी और द्युलोक को भी धारण किये हुए है । हम हवि के द्वारा उसी की अर्चना का विधान करें ।

"यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।

य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥" [17]

---

[14] ऋ. 10/125/8
[15] वही 10/125/6
[16] वही 10/121/1
[17] वही 10/121/3, यजु. 23/3

जो अपनी महान् सामर्थ्य से प्राणयुक्त और देखने वाले सम्पूर्ण प्राणिसमुदाय के एक मात्र अधिपति हैं, जो इन द्विपद (मनुष्यों) और चतुष्पदों (गवादि पशुओं) के स्वामी है । उन सुखस्वरूप अद्वितीय परमेश्वर की हम श्रेष्ठ रीति से अर्चना करते हैं ।

"यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।

यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥" [18]

जिनकी महिमा से ये सभी हिमाच्छादित पर्वत हुए हैं । जिनकी सामर्थ्य को जलपूर्ण नदियाँ, गतिशील पृथिवी, समुद्र, आकाशादि व्यक्त कर रहे हैं । सभी मुख्य दिशाएं भुजाओं के समान जिनकी सामर्थ्य का संकेत कर रही हैं ।

"येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळहा येन स्वः स्तम्भितं येन नाकः ।

यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥" [19]

जिन्होनें इन ऊँचे अन्तरिक्ष और पृथिवी को अपने–अपने निर्धारित स्थानों पर कुशलता पूर्वक स्थापित किया है । स्वर्गलोक को स्थिर किया है और सूर्य को अन्तरिक्ष में केन्द्रित किया है ।

ऋग्वेद के इन्द्र–वृत्र रूपक में भी यथार्थ सृष्टि विज्ञान वर्णित है । इन्द्र सृष्टिकर्ता ईश्वर है और वृत्र सृष्टि विकासके क्रम में आया हुआ नैसर्गिक अवरोध है जिसका निवारण कर ईश्वर प्रकृति में सृष्टि–विकास करने की योजना का बीजारोपण करते हैं । दार्शनिक दृष्टि वृत्र प्रकृति की निष्क्रिय अवस्था है और इन्द्र (परमात्मा) उसी में से सूर्य आदि को निकालकर उसकी सृष्टि कर देता है

"यदिन्द्राहन्प्रथमजामहीनामान्मायिनाममिनाः प्रोत मायाः ।

आत्सूर्यं जनयन्द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से ॥"[20]

---

[18] ऋ. 10/121/4

[19] वही 10/121/5, यजु.32/6

[20] वही 1/32/4

हे इन्द्रदेव ! आपने मेघों में प्रथम उत्पन्न मेघ को बेध दिया । मेघरूप में छाए धुन्ध (मायवियों) को दूर किया, फिर आकाश में उषा और सूर्य को प्रकट किया । अब कोई भी अवरोधक शत्रु शेष न रहा ।

"स माहिन इन्द्रो अर्णो अपां प्रैरयदहिहाच्छा समुद्रम् ।

अजनयत्सूर्यं विदद्गा अक्तुनाह्नां वयुयानि साधत् ॥" [21]

अहि नामक राक्षस को मारने वाले इन्द्रदेव ने अन्तरिक्ष के जल को सीधे समुद्र की ओर प्रवाहित किया, उन्हीं ने सूर्य और रश्मियों को प्रकट किया । जिसके प्रकाश से दिन में होने वाले सभी कार्यों को हम करते हैं ।

इन्द्र वृत्र की कथा को आदि सृष्टिकाल में सृष्टि रचना की दिशा में आदि भौतिक सत्ता में क्रमिक विकास के तारतम्य से भी जोड़ा जाता है । इस कथा में सृष्टि उत्पत्ति से सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन रहस्यमय तरीके से किया गया है । इन्द्र को सर्वव्यापी एवं सृष्टिकर्ता निरूपित किया गया है । "एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् ॥"[22] हे इन्द्र तुझ अकेले ने अपने से पृथक् जगत् को सदैव बनाया है । ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल में अनेक मंत्रों में इन्द्र के ईश्वरत्व का निरूपण किया गया है– "यः सूर्यं, य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥" [23] जिसने सूर्य को, जिसने सृष्टिकाल को उत्पन्न किया, जो प्रकृति का स्वामी है, हे मनुष्यों ! वह इन्द्र है ।

"इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि व्रतानि देवा न मिनति विश्वे ।

दाधारः यः पृथिवीं द्यामुतेमां जजान सूर्यमुषसं सुदंसाः ॥" [24]

इन्द्र के अनेक उत्तम कर्म हैं । नियमों को लोक में तोड़ नहीं सकते हैं । इन्द्र ने ही पृथिवी और द्युलोक तथा सूर्य और उषा को भी उत्पन्न किया ।

---

[21] ऋ . 2/19/3
[22] वही 1/52/14
[23] वही 2/12/7
[24] वही 3/32/8

इस प्रकार वैदिक ऋषियों के अनुसार इन्द्र ऐतिहासिक व्यक्ति अथवा देवता नहीं है, वरन् सृष्टि रचयिता ईश्वर ही है । इन्द्र ने वृत्र के उच्छेदन में प्रमुख हेतु अवरूद्ध हुए (आपः) मूल तत्त्व के विकास क्रम को उन्मुक्त कर गति प्रदान की । वृत्र के उन्मूलन के अनन्तर ही सृष्टिकाल का आरम्भ हुआ तथा सूर्यादि लोकों की उत्पत्ति हुई अतः वृत्र की घटना पूर्ण रूप से भौतिक है जो आदि सृष्टिकाल में गैलेक्सियों, नक्षत्रों की उत्पत्ति की पूर्ववर्ती है । वृत्र की घटना से मूल तत्त्व के विकास का घनिष्ठ सम्बन्ध है । ऋग्वेद में वृत्र को मारने का उद्देश्य बताया गया है कि मूल क्रियात्मक तत्त्व आपः के स्वाभाविक विकास को एवं प्राकृतिक प्रवाह (ऋत) को वृत्र ने रोका था अतः वृत्र के उन्मूलन का उद्देश्य सृष्टिविकास क्रम में आये हुए आवरण एवं व्यवधान को हटाना था । वृत्र नामक प्राकृतिक अवरोध के कारण मूल से परिणामों की उत्पत्ति रूप प्रवाह रूक गया था अतः वृत्र कोई दैत्य या राक्षस नहीं है, वरन् यह प्राकृतिक विकास में उत्पन्न हुई स्वाभाविक अवरोधक स्थिति है । सृष्टि विकास क्रम में वृत्र रूपी अवरोध का निवारण उपयुक्त समय पर हुआ जिसके परिणामस्वरूप मूल क्रियात्मक तत्त्व मुक्त होकर विकासोन्मुख हुआ । विकास की प्रारम्भ हुई उस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप कालान्तर में प्रकाशित लोक एवं पृथिवी उत्पन्न हुई–

"त्वं हि ष्मा च्यावयन्नच्युतान्येको वृत्रा चरसि जिघ्नमानः ।

तव द्यावापृथिवी पर्वतासोऽनु व्रताय निमितेव तस्थुः ॥"

"त्वमपामपिधानाऽवृणोपाधारयः पर्वते दानुमद्वसु ।

वृत्र यदिन्द्र शवसावधीरहिमादित्सूर्यं दिव्यारोहयो दृशे ॥" [25]

वृत्र के निवारण के अनन्तर ही लोकादि के व्यवस्थित क्रम का उदय हुआ । वृत्र अनियमितता पैदा करने वाली स्थिति है । सभी ऋचाएँ एक स्वर से यह उद्घोष कर रही है । एक मंत्र में सूर्य को प्रतीकात्मक रूप में स्वीकार किया गया है तथा वृत्र के उन्मूलन के पश्चात् ही स्वर्गादि लोकों की उत्पत्ति हुई ऐसा बताया गया है । इस प्रकार इन्द्र वृत्र रूपक यथार्थ सृष्टि विज्ञान है । इन्द्र सृष्टिकर्ता ईश्वर है और वृत्र सृष्टि विकास क्रम में आया हुआ आद्य नैसर्गिक अवरोध है इसका निवारण कर ईश्वर प्रकृति में सृष्टि विकास करने के योजना का बीजारोपण करता है ।

[25] ऋ.. 1/51/4

जगत् का उपादान एवं निमित्त कारण एकमात्र ईश्वर ही है । जगत् का उपादान कारण ईश्वर द्वारा अधिष्ठित एक आद्या स्वयंभू भौतिक सत्ता है जिसे अदिति नाम से संबोधित किया है । आदि मौलिक सत्ता होने से इसे यत्र–तत्र माता एवं देवी पदों से विभूषित किया गया है । यह मौलिक सत्ता अखण्डनीय है तथा अखण्ड तत्त्व ही जगत् का मूल द्राव्यिक कारण है । अदिति शब्द का प्रयोग अखण्ड सत्ता के लिये हुआ है । कुछ सत्ताएं ऐसी है जो अखण्ड नहीं है आदि अन्त वाली है । इस मूल आद्या शक्ति से जगत् प्रस्फुटित होता है और कालान्तर में विखण्डित होकर इसी शक्ति में समाहित हो जाता है । अदिति जगत् की मूल शक्ति है । अदिति शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से सिद्ध होती है । प्रथम 'अ' उपसर्ग पूर्वक 'दा' धातु से इस अर्थ में होती है–'न विद्यते खण्डनीयस्य' अर्थात् जो अखण्ड हो स्वयं ही परम अवयव हो । अदिति शब्द अद् (भक्षणे) धातुपूर्वक शब्द से निष्पन्न होता है । जिसका अर्थ है–भक्षण का अन्त । अदिति सबका भक्षण करती है अर्थात् अदिति में सब समा जाते हैं, लय हो जाते हैं–

"अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।

विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥" [26]

अदिति ही द्युलोक है । अन्तरिक्ष, माता, पिता, पुत्र, सम्पूर्ण देवगण, पञ्चजन (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र और निषाद) नव उत्पन्न और भावी आगे उत्पन्न होने वाले जो भी है, वे अदिति के ही रूप है ।

"ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मार इवाधमत् ।

देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सद्जायत ॥"[27]

सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मणस्पति (परब्रह्म अथवा आद्या सत्ता अदिति) ने कर्मकार के समान ही इन्हें परिपक्व किया । देवों के पूर्व अर्थात् आदि सृष्टि में अव्यक्त ब्रह्मा से व्यक्त हुए नामरूपात्मक देवशक्तियों की उत्पत्ति हुई । "देवानां युगे प्रथमेऽसतः सदजायत । तदाशा अन्वजायन्त तदुत्तानपदस्परि ॥"[28] देवों के युग से पूर्व आदिकाल में असत् अव्यक्त से सत् (अस्तित्ववान्) की उत्पत्ति हुई । इसके बाद संकल्पशील मनस्तत्त्व का विकास हुआ । तब

[26] ऋ. 1/89/10
[27] वही 10/72/2
[28] वही 10/72/3

ऊपर की ओर बढ़ने वाले अथवा अपने चरणों का विस्तार करने वाले ऊर्जा कणों का जन्म हुआ । इस प्रकार अदिति अखण्डनीय एवं अविभाज्य परमात्मा की दिव्य शक्ति है ।

वेदों में अनेक प्रतीकों के माध्यम से जगत् के मूल कारण को बताया गया है । वैदिक मन्त्रों में निहित रहस्यों का ज्ञान करने के लिये प्रतीक का भाव निर्धारण आवश्यक है । आपः का साधारण अर्थ जल है किन्तु ऋग्वेद में इसका प्रयोग प्रतीक रूप में हुआ है । आपः का प्रतीकात्मक अर्थ स्वादि परस्मै धातु आप्लृ व्याप्तौ के आधार पर सर्वव्यापी मूल तत्त्व है । ऋग्वेद में त्रिवर्गीमूल तत्त्व के समग्र रूप को अदिति प्रतीक से प्रतिष्ठित किया गया है । सृष्टि में नियोजित होते ही त्रिवर्गी मूल तत्त्व की इस क्रियाशील अवस्था का प्रतीक आपः हो जाता है । ऋग्वेद के दशम मण्डल में मूल क्रियाशील तत्त्व आपः को कारण रूप में बताया गया है –

"आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन्गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।

ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥" [29]

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधानां जनयन्तीर्यज्ञम् ।

यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥" [30]

सृष्टि के प्रारम्भ में बृहत् आपः (मूल क्रियाशील तत्त्व) सम्पूर्ण विश्व को आच्छादित किये हुए था । उसने गर्भ धारण करके विस्तृत अग्नि एवं आकाशादि सबको उत्पन्न किया । जिससे देवों में अद्वितीय प्राण की उत्पत्ति हुई, उन एक मात्र परमात्मा की हम सब प्रकार से प्रार्थना करते हैं । जिस परमेश्वर आपः से सृष्टि संरचना में दक्षता धारण करने वाले यज्ञ को उत्पन्न होते देखा उस समय देवगण में वही एक देव अवस्थित था । हम उन्हीं के निमित्त हवि युक्त अर्चना करें ।

ऋग्वेद में एक स्थान पर प्रश्न उपस्थित किया गया है कि जल ने सर्वप्रथम गर्भ के रूप में किसे धारण किया तथा इसका उत्तर भी अगली ऋचा में प्रस्तुत किया गया है ।

"परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति ।

कं स्विद्गर्भं प्रथमं दध्न आपो यत्र देवाः समपश्यन्त विश्वे ॥"

---

[29] ऋ. 10/121/7

[30] वही 10/121/8

तमिद्गर्भं प्रथमं दध्न आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।

अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥" [31]

हृदयस्थ जो वह ईश्वरीय तत्त्व है, वह द्युलोक से दूर है, इस पृथिवी से दूर है, इस पृथ्वी से दूर है, देवों और असुरो से भी परे है, अप् तत्त्व ने सर्वप्रथम किस गर्भ को धारण किया । वह कैसा विलक्षण था ? जहां पूर्वकालीन देवगण उस परमतत्त्व का सम्यक् दर्शन पाते एवं देवत्व के परमपद को प्राप्त करते हैं । सृष्टि की आदि से ही विद्यमान उस परमतत्त्व ने अप् तत्त्व के गर्भ को धारण किया है । जहां सम्पूर्ण देवशक्तियों का आश्रय स्थल है । इस अजन्मा ईश्वर के नाभि केन्द्रों में एक ही परमतत्त्व अधिष्ठित है ।

ऋग्वेद में समुद्र से सूर्य का उद्भव इस प्रकार बताया गया है–

"यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत । अत्रा समुद्र आ गू∞हमा सूर्यमजभर्तन ॥" [32]

जब देवों ने गतिशील होकर भुवनों को पुष्ट किया; तब इस समुद्र में गुह्य सूर्य स्वभाविक ढ़ंग से धारण किया गया ।

सूर्य की उत्पत्ति का कारण जल को माना गया है । तत्पश्चात् सूर्य से विभिन्न लोकों की उत्पत्ति का कारण बताया गया है–

"चित्र देवानामुदगादनीकं चर्क्षुमित्रस्य वरुण्स्याग्नेः।

आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥" [33]

जंगम, स्थावर जगत् के आत्मा रूपी सूर्यदेव, देवी शक्तियों के अद्भुत तेज के समूह के रूप में उदित हो गये हैं । मित्र, वरूण आदि के चक्षु रूप इन सूर्यदेव ने उदय होते ही द्युलोक, पृथ्वीलोक तथा अन्तरिक्ष को अपने तेज से भर दिया है ।

ऋग्वेद में सूर्य के समान अग्नि की उत्पत्ति भी जल से बतायी गयी है–

"विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ।

---

[31] ऋ. 10/82/5–6
[32] वही 10/72/7
[33] वही 1/115/1

वी∞उ चिदद्रिमभिनत्परायञ्जना यदग्निमयजन्त पञ्च ॥" [34]

सम्पूर्ण विश्व के प्रकाशक, जल के भीतर से उत्पन्न अग्निदेव प्रकट होते ही द्युलोक और भूलोक को संव्याप्त करते हैं । जिस समय पाँचों वर्णों के मनुष्य अग्निदेव की अर्चना करते हैं । उस समय वे भली प्रकार सुदृढ़ पर्वत के समान बादलों का भेदन करके जल वृष्टि करते हैं । ईश्वरीय निर्माण कर्त्री शक्ति का जन्म कहां हुआ है ? इस तथ्य को वेद में इस प्रकार बताया गया है–

"अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे ।

ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोम स्पृशामि ॥" [35]

जगत् के सर्वोच्च स्थान पर स्थित दिव्यलोक को मैनें ही प्रकट किया है । मेरा उत्पत्ति स्थल विराट् आकाश में अप् में है । उसी स्थान से सम्पूर्ण विश्व को संव्याप्त करती हूं । महान् अन्तरिक्ष को मैं अपने उन्नत देह से स्पर्श करती हूं ।

ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल में प्रथम मूलतत्त्व की क्रियात्मक अवस्था को बताया गया है तत्पश्चात् ही महाभूत आदि की उत्पत्ति हुई है– "अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् ॥" [36] मैं ईश्वर विविध इच्छा करता हुआ आपः मूल तत्त्व की क्रियात्मक अवस्था लाया था । लोक समूह महाभूतादि योजनानुसार पीछे आये । अदिति, आपः प्रतीक तत्त्वों को कारण स्वीकारते हुए विविध रूपात्मक सृष्टि की उत्पत्ति हुई है । मूल भौतिक सत्ता क्रमशः अदिति, आपः रूप में क्रियाशील होने के पश्चात् बृहती आपः स्वरूप को धारण करती है । इसमें त्रिवर्गी मूल तत्त्व उद्वेलित होकर क्रिया व प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप विस्तार को प्राप्त होते हैं । प्रकृति की इस अवस्था में सृष्टि रचना के प्रथम यौगिकों की उत्पत्ति होती है इस अवस्था को बृहतीः आपः कहते हैं–

"अहमपो अपिन्वमुक्षाणा धारयं दिवं सदन ऋतस्य ।

---

[34] ऋ. 10/45/6
[35] वही 10/125/7
[36] वही 4/26/2

ऋतेन पुत्रो अदितेर्ऋतावोत त्रिधातु प्रथयद्वि भूम ॥" [37]

ईश्वर ने दिव्य वृद्दिशील आपको पुष्ट किया था । मैं ही उसे मूल प्रकृति के आवास में धारण करता हूं । मूल आद्या शक्ति मौलिक गुणों द्वारा उत्पन्न पुत्रवत् परिणाम आपः निश्चय ही तीन मूल तत्त्वों वाला विशिष्ट विस्तार करता है ।

इस प्रकार विविधता की इच्छा करते हुए ईश्वर ने सर्वप्रथम अप् तत्त्व का सृजन किया । तदनन्तर अप् तत्त्व से ही देवों का निर्माण हुआ । देव भौतिक सत्तात्मक स्थितियों, अवस्थाओं, योगिकों के द्योतक है तथा आपः मूल तत्त्व की परिणामी अवस्था है जब उसे सृष्टि रचना हेतु नियोजित किया जाता है ।

"आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन्गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।

ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥" [38]

सृष्टि के प्रारम्भ में बृहत् आपः (मूलक्रियात्मक तत्त्व) सम्पूर्ण विश्व को आच्छादित किये हुए था । उसने गर्भ धारण करके विस्तृत अग्नि तथा आकाशादि को उत्पन्न किया । जिससे देवों में अद्वितीय प्राण की उत्पत्ति हुई । उन एकमात्र परमात्मा की हम सभी प्रकार से प्रार्थना करते हैं ।

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में सृष्टि का एक रथ के रूपक द्वारा वर्णन किया गया है–

"सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।

त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनानि तस्थुः ॥" [39]

एक चक्र वाले रथ से ये सात जुड़े हैं । सात रंगों वाला एक किरण रूपी अश्व एस चक्र को चलाता है । तीन (द्युलोक, अन्तरिक्ष एवं पृथिवी) नाभियों वाला यह कालचक्र सतत् गतिशील अविनाशी और शिथिलता रहित है । इसी चक्र के अन्दर समस्त लोक विद्यमान है ।

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में ही एक ऋचा में जगत् के कारण के विषय में चार रहस्यात्मक प्रश्न पूछे गये हैं, जिनका समाधान अगली ऋचा में प्रस्तुत किया गया है–

---

[37] ऋ. 4/42/4
[38] वही 10/121/7
[39] वही 1/164/2

"पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।

पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥" [40]

इस धरती का अन्तिम छोर कौनसा है ? सभी भुवनों का केन्द्र कहां है ? अश्व की शक्ति कहां है ? और वाणी का उद्गम कहा है ? यह हम आपसे पूछते हैं । यहां सृष्टि के मूल कारण के विषय में प्रश्न उपस्थित किया गया है । इसका उत्तर देते हुए कहां गया है–

"इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभि : ।

अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥" [41]

यज्ञ की यह वेदिका पृथिवी का अन्तिम छोर है, यह यज्ञ ही संसार चक्र की धुरी है, यह सोम ही अश्व बलशाली की शक्ति है । यह ब्रह्म वाणी का उत्पत्तिस्थान है ।

"सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि ।

ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ॥" [42]

सम्पूर्ण प्रकृति का निर्माण अपरा प्रकृति के मन, प्राण और पंचभूत रूपी सात पुत्रों से होता हैं । यह सभी तत्त्व सर्वव्यापक प्रजापति के निर्देशानुसार ही कर्तव्य निर्वाह करते हैं । वे अपनी ज्ञानशीलता, व्यापकता से तथा अपनी संकल्प शक्ति द्वारा सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है ।

वेद में सर्वव्यापक परमात्मा का एक प्रमुख नाम विष्णु भी है । जहां विष्णु के परमपद का उल्लेख किया गया है ।

"विष्णोर्नु कं वियाणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।

यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥"

---

[40] ऋ. 1/164/34
[41] वही 1/164/35
[42] वही 1/164/36

"प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥" [43]

जो पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक को बनाने वाले हैं, जो देवताओं के निवास स्थान द्युलोक को स्थिर कर देते हैं, जो तीन पगों से तीन लोकों में विचरण करने वाले हैं उन विष्णुदेव के वीरतापूर्ण कार्यों का कहां तक वर्णन करें । विष्णु के तीन पादों (पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक) में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अवस्थित है, अतएव भयंकर, हिंस्त्र और गिरिकन्दराओं में रहने वाले पराक्रमी पशुओंकी तरह सारा संसार उन विष्णुदेव के पराक्रम की प्रशंसा करता हैं ।

ऋग्वेद के तृतीय मण्डल की एक ऋचा में इन्द्र को सृष्टि उत्पत्ति का कारण बताया गया है । इन्द्र को सर्व शक्ति सम्पन्न एवं विभिन्न लोकों की उत्पत्ति का कारण बताया है–

"इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि व्रतानि देवा न मिनन्ति विश्वे ।

दाधार यः पृथिवीं द्यामुतेमां जजान सूर्यमुषसं सुदंसाः ॥" [44]

पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक को धारण करने वाले, उषा एवं सूर्यदेव को उत्पन्न करने वाले महान् पराक्रमी इन्द्रदेव श्रेष्ठ कार्यों और व्रतों को समस्त देव शक्तियां मिलाकर भी नहीं रोक सकती है । इस प्रकार इन्द्रदेव सभी लोकों के अधिष्ठाता है–*"एको विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥"* [45] इन्द्रदेव सम्पूर्ण लोकों के अधीश्वर है । एक स्थान पर सोम को अन्तरिक्ष, पृथ्वी और द्युलोक का सुविस्तृत कर्ता बताया गया है–

"अयं स यो वरिमाणं पृथिव्या वष्मार्णं दिवो अकृणोदयं सः ।

अयं पीयूषं तिसृषु प्रवत्सु सोमो दाधारोर्वऽन्तरिक्षम् ॥" [46]

इस सोम ने ही अन्तरिक्ष, पृथ्वी और द्युलोक को सुदृढ़ किया है । इसी ने जल, ओषधियों एवं गो–दुग्ध में अमृत स्थापित किया है । सोम देव को भी उत्पत्ति का कारण माना गया है ।

"धीरा त्वस्य महिना जनूंषि वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी ।

---

[43] ऋ. 1/154/1–2
[44] वही 3/32/8
[45] वही 3/46/2
[46] वही 6/47/4

प्र नाकमृष्वं नुनुदे बृहन्तं द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूम ॥" [47]

इन धैर्यवान वरुण देव का जन्म महिमायुक्त है । इन्हीं देव ने विस्तृत द्यावा–पृथिवी को स्थिर किया है । ये दोनों समय में विशाल सूर्य एवं रात्रि में नक्षत्रों को प्रेरित करते हैं । इन्हीं देव ने भूमि को विस्तृत किया है । इन्द्र एवं वरुणदेव को जगत् के समस्त प्राणियों का सृजन कर्ता माना गया है–"इन्द्रा वरूणा यदिमानि चक्रथुर्विश्वा जातानि भुवनस्य मज्जना ॥" [48] प्रजापति परमेश्वर को जगत्कर्ता और संहारकर्ता बताया गया है ।

"यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत एकशतं देवकर्मेभिरायतः ।

इमे वयन्ति पितरो य आययुः प्र वयाप वयेत्यायते ततें ॥"

पुमाँ एनं तनुत उत्कृणत्ति पुमान्वि तत्ने अधि नाके अस्मिन् ।

इमे मयूखा उप सेदुरू सदः सामानि चक्रुस्तसराण्योतवे ॥" [49]

यह सृष्टि यज्ञमय है । इस यज्ञ में पञ्चमहाभूत रूपी वस्त्रों को बुना जाता है । यह चिरकाल तक रहने वाली सृष्टि देवों के दिव्य कर्म से स्थिर रहती है । इस सृष्टि यज्ञ में पितृगण को कपडे को बनाते हुए अनेक प्रकार के उत्कृष्ट एवं निकृष्ट पदार्थों की रचना करते हैं । प्रजापति परमेश्वर ही इस सृष्टि के उत्पादक एवं संहारक है । वे ही पुरुष सामर्थ्य से इस सृष्टि का विस्तार करते हैं । इस यज्ञस्थली में परमात्मा की किरण रूपी शक्तियां निवास करती है तथा अनेक प्रकार के साम रूपी सुखों को पैदा करती है । संहितोक्त कार्य–कारण भाव को स्पष्ट करते हुए कहा गया कहा है– "भूर्जज्ञ उत्तानपदो भुव आशा अजायन्त । आदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्विदितिः परि ॥" [50] भूः (आदि प्रवाह) से उर्ध्वगतिशील (सूक्ष्म ऊर्जाकणों) की संरचना हुई । तथा भुवःहोने की आशा संकल्प शक्ति का विकास हुआ । अदिति (अखण्ड आदि सत्ता) से दक्ष उत्पन्न हुए । पुनः दक्ष से अदिति का जन्म हुआ । "अदितिर्ह्यजनिष्ठ दक्ष या दुहिता तव । तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः ॥" [51] हे दक्ष ! आपकी दुहिता (कन्या या दक्ष की क्षमता का दोहन करने वाली प्रकृति) उत्पन्न हुई, उसी प्रक्रिया से अमृत बन्धन से बंधे देवों या अन्य

[47] ऋ. 7/86/1
[48] वही 7/82/5
[49] वही 10/130/1–2
[50] वही 10/72/4
[51] वही 10/72/5

नक्षत्रादि का जन्म हुआ । यह वैदिक कार्य–कारण सिद्धान्त को प्रकट करने की एक शैली है । इसका भाव है कि कार्य कारण से उत्पन्न होने के कारण, कार्य कारण का पुत्र है और पुनः इस पुत्र रूप कार्य से क्योंकि कारण का बोध होता है । इस हेतु से कारण, कार्य का पुत्र है अथवा कार्य पुनः कारण के रूप में प्रत्यावर्तित हो जाता है । परमतत्त्व को विश्वकर्मा नाम से एकमात्र विश्वशक्ति सिद्ध करते हुए कहा गया है–

"य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत् पिता नः ।

स अश्विा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ आ विवेश ॥" [52]

ये ऋषि पिता की तरह स्थित रहकर समस्त लोकों के निमित्त आहुतियां समर्पित करते हैं । वे संकल्प मात्र से विभिन्न सम्प्रदायों को इच्छित रूप देते हुए प्रथम उत्पन्न जगत् को संव्याप्त करते हैं तथा अन्य लोकों में प्रविष्ट करते हैं ।

सृजन के क्रम में परमात्मा चेतना विश्वकर्मा का रूप धारण कर लेती है, वही पोषण के लिये पूषा बन जाती है । उत्पत्ति और विलय दोनों क्रम चलते रहते हैं । पहले वालों को संव्याप्त करते हुए अथवा उनकी आहुतियां देते हुए दिव्य चेतना नवीन लोकों में प्रवृत्त रहती है ।

"विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।

सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥" [53]

सर्वत्र आखं वाले, सब ओर मुख वाले, सब ओर भुजाओं वाले और सब ओर चरणों वाले उस अद्वितीय परमात्मा ने अपनी भुजाओं से गतिशील पृथिवी और द्युलोक को बिना आश्रय के निर्मित किया तथा उन्हें सम्यक् रूप से संचारित करने वाला वह अकेला ही है ।

"चक्षुषःपिता मनसो हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने ।

यदेदन्ता अददृहन्त पूर्व आदिद् द्यावापृथिवी अपृथेताम् ॥"

"विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक् ।

---

[52] ऋ. 10/81/1

[53] वही 10/81/3

तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन्पर एकमाहुः ॥" [54]

जब पूर्व समय में द्यावा–पृथिवी का विस्तार हुआ तो उसके अन्दर बाहर के भाग को दृढ़ होकर प्रतिष्ठित हो गये, तब चक्षु सम्पन्न पिता ने नमनशील घृत का सृजन किया । वे विश्वकर्मा देव विशिष्ट महाशक्ति सम्पन्न व्यापक विश्व के निर्माता, धारणकर्ता, महान् तथा सर्वदृष्टा है । उन्हें सप्तऋषियों से भी परे कहा गया है । उनके अभीष्ट की पूर्ति उन्हीं की पोषण शक्ति से होती है । वे एक ही अद्वितीय है ।

"देवानां माने प्रथमा अतिष्ठन्कृन्तत्रादेषामुपरा उदायन् ।

त्रयस्तपन्ति पृथिवीमनूपा द्वा बृबूकं वहतः पुरीषम् ॥" [55]

देवों के सृजन समय में सर्वप्रथम मेघों का उत्पादन हुआ, मेघों के छिन्न–भिन्न होने से जल की उत्पत्ति हुई । तीन गुणों के उत्पादनकर्ता पर्जन्य, वायु और सूर्य ये तीनों ही अनुकूल स्थिति में पृथ्वी को तप्त करते हैं तथा इनमें से वायु और सूर्य ये दोनों ही जल को धारण करते हैं ।

"नैतावदेना परो अन्यदस्त्युक्षा स द्यावापृथिवी बिभर्ति ।

त्वचं पवित्रं कृणुत स्वधावान्यदीं सूर्यं न हरितो वहन्ति ॥" [56]

द्यावा–पृथ्वी से भी परे इस रचयिता के समान और कोई नहीं हैं । जो ईश्वर सृष्टि का निर्माता और द्युलोक पृथ्वी का धारण कर्ता है । वही अन्नादि पोषक पदार्थों का स्वामी है । सूर्यों के अश्वों ने जिस समय सूर्य का वहन करना शुरु नहीं किया था, उसी बीच में उसने अपने आवरण आकाश की रचना कर ली ।

सूर्यदेव से जगत् की उत्पत्ति को इस प्रकार बताया गया है–

"सा मा सत्योक्तिः परि पातु विश्वतो द्यावा च यत्र ततनन्नहानि ।

विश्वमन्यत्रि विशते यदेजति विश्वहापो विश्वाहोदेति सूर्यः ॥" [57]

---

[54] ऋ. 10/82/1–2
[55] वही 10/27/23
[56] वही 10/31/8
[57] वही 10/37/2

जिसके आश्रय से द्युलोक पृथ्वी और दिन–रात उत्पन्न होते हैं । जो गतिमान हैं, जड़ से पृथक् चेतन भी जिसके आश्रय में निवास करते हैं । जिसके प्रभाव से जल से निरन्तर प्रवाहित रहता है और सूर्योदय होता है, सत्य से युक्त ऐसे वचन हमें सभी प्रकार से सरंक्षित करें ।

इन्द्रदेव से किन–किन की उत्पत्ति हुई क्रमशः बताया गया है–

"आ रोदसी अपृणादोत मध्यं पञ्च देवाँ ऋतुशः सप्तसप्त ।

चतुस्त्रिंशंता पुरुधा वि चष्टे सरूपेण ज्योतिषा विव्रतेन ॥" [58]

इन्द्रदेव अपने तेज से द्युलोक, पृथ्वी और अन्तरिक्ष को संव्याप्त करते हैं । उसी प्रकार वे समय–समय पर पञ्चदेवों (देव, मनुष्य, पितर, असुर और राक्षस) और सात तत्त्वों (सात मरूद्गण) लोकादि को प्रकाशित करते हैं । वे नानाविध कर्मों के निर्वाहक चौतीस प्रकार के देवों (आठ वसु, बारह आदित्य, ग्यारह रूद्र, प्रजापति, वषट्कार और विराटादि) के समान रूप और तेज से विविध प्रकार से दृश्यमान होते हैं ।

ऊषा से सृष्टि उत्पत्ति को इस प्रकार बताया गया है–

"मध्या यत्कर्त्वमभवदभीके कामं कृण्वाने पितरि युवत्याम् ।

मनानग्रेतो जहतुर्वियन्ता सानौ निषिक्तं सुकृतस्य यौनौ ॥"

पिता यस्त्वां दुहितारमधिष्कन्क्ष्मया रेतः सञ्जग्मानो निषिञ्चत् ।

स्वाध्योऽजनयन्ब्रह्मा देवा वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन् ॥" [59]

जिस समय सृष्टि कामना से युक्त प्रजापति ने युवती कन्या (ऊषा) में तेज स्थापित किया । उस समय दोनों के बीच शक्तिरूप प्राण ऊर्जा का अभिषिंचन न्यूनतम रूप में हुआ; यज्ञ के आधार स्वरूप उच्च उद्देश्य के जब दोनों का संगम हुआ, तो कल्याण के प्रतीक रूद्र सूर्य की उत्पत्ति हुई । जिस समय कन्या उषा के साथ प्रजापति के तेज का संयोजन हुआ । उस समय पृथ्वी के लिये उत्पादक तेज का अभिषेचन किया गया । उसी से सत्कर्मशील देवताओं ने ब्रह्मशक्ति

[58] ऋ. 10/55/3

[59] वही 10/61/6–7

का उत्पादन किया । वास्तोष्पति की उस व्रतशीलता से वास्तोष्पति (पदार्थों के उत्पादक देव) का सृजन हुआ ।

अग्निदेव से उत्पत्ति –

"नू च पुरा च सदनं रयीणां जातस्य च जायमानस्य च क्षाम् ।

सतश्च गोपां भवतश्च भूरेर्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥" [60]

ये अग्निदेव वर्तमान की और पूर्व की सम्पदाओं के आधार है । जो उत्पन्न हुए और उत्पन्न होने वाले के आश्रय स्थल है । जो विद्यमान और उत्पन्न होने वाले सभी पदार्थों के संरक्षक है । देवों ने उन धन प्रदाता अग्निदेव को धारण किया गया है ।

अपांनपात् से उत्पत्ति–

"इमं स्वस्मै हृदं आ सुतष्टं मन्त्रं वोचेम कुविदस्य वेदत् ।

अपां नपादसूर्यस्य महा विश्वान्यर्यो भुवना जजान ॥" [61]

इन अपांनपात् देव के लिये हम हृदय से रचित मंत्रों का गान करें । जिन्हें वे स्वीकार करें । इन अपांनपात् देव ने अपनी असुर संहारक शक्ति की महिमा से समस्त लोकों को उत्पन्न किया है ।

ऋग्वैदिक देवताओं में सविता देव को भी कर्तृ देव की उपाधि दी जाती है–"उतेशिषे प्रसवस्य त्वमेक इदुत पूषा भवसि देव यामभिः ॥" [62] हे सविता देव ! आप अकेले ही सम्पूर्ण जगत् के अधीश्वर है । आप अपनी गमन सामर्थ्य से जगत् के पोषक रूप हैं ।

"आप्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्मणो ।

प्र बाहू अस्त्राक्सविता सवीमनि निवेशयन्प्रसुवन्नक्तुभिर्जगत् ॥" [63]

---

[60] ऋ. 1/96/7
[61] वही 2/35/2
[62] वही 5/81/5
[63] वही 4/53/3

वे सविता देव अपने तेजस् द्वारा द्युलोक तथा भूलोक को पूर्ण करते हैं और अपने कर्म की सराहना करते हैं । वे जगत् को अपने कर्म में नित्य प्रति स्थापित करते हैं तथा प्रेरित करते हैं । वे सृजन के लिये अपनी भुजाओं को फैलाते हैं ।

त्वष्टा को सृजनकर्ता, उत्पादक, सबका पालन–पोषण करने वाला बताया गया है–

"देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः पुपोष प्रजाः पुरुधा जजान ।

इमा च विश्वा भुवनान्यस्य महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥" [64]

सबके उत्पादक अनेक रूपों से युक्त त्वष्टा देव अनेक प्रकार की प्रजाओं को उत्पन्न करते हैं । वही इन्हें परिपुष्ट भी करते हैं । ये सम्पूर्ण भुवन त्वष्टा देव के द्वारा रचे गये हैं । समस्त देवों की महान् शक्ति एक ही है । त्वष्टा ने ही सारे प्राणियों को रूप सम्पन्न किया है–"य इमे द्यावा पृथिवी जनित्री रूपैरपिशंद् भुवनानि विश्वा ॥" [65] हे होताओं ! द्यावा पृथिवी को जन्म देने वाली है । इन्हें त्वष्टा देव ने सुशोभित किया है ।

यजुर्वेद में कार्य–कारण सिद्धान्त

वैदिक ऋषियों ने जगत् के स्रष्टा एवं इसके आधारभूत परमतत्त्व के विषय जो जिज्ञासाएं प्रकट की हैं, उनमें मूल दार्शनिक अवधारणा स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है । विश्व के अधिष्ठान एवं आदिकर्ता के विषय में एक स्थान पर प्रश्न उपस्थित किया गया है । "किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं करमत्स्वित्कथासीत् । यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिमा विश्वचक्षाः ॥" [66] सृष्टि निर्माण के पूर्व परमात्मा किस आश्रय पर अधिष्ठित थे ? सृष्टि के निर्माण में प्रयुक्त होने वाला मूल द्रव्य क्या था ? कैसा था ? जिससे वह विश्वकर्मा परमात्मा, इस सुविस्तृत पृथ्वी का निर्माण करके अपनी महान् सामर्थ्य से सम्पूर्ण सृष्टि का द्रष्टा होकर विशेष रूप से द्युलोक में संव्याप्त हो जाता है । जगत् के मूलाधार परमात्मा सभी कार्यों में व्याप्त रहते हैं– "यइमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यासीदन् पिता नः सऽआशिषा द्रविणनिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ आ विवेश ॥" [67] हमारे पोषणकर्ता पितारूप परमात्मा इन सम्पूर्ण लोकों के

---

[64] ऋ. 3/55/19
[65] वही 10/10/9
[66] यजु. 17/18
[67] वही 17/17

प्राणियों का संहार करने वाले होकर स्वयं सूक्ष्म दृष्टा और याचकों में अधिष्ठित रहते हैं, वे परमात्मा सबकी धन सम्पदा की इच्छाओं को पूर्ण हुए सबको अपने अधीन करके रखते हैं और अधीनस्थ प्राणियों में संव्याप्त हो जाते हैं । जगत् का मूल कारण क्या है ? एवं उससे किस प्रकार इस ब्रह्माण्ड रूपी कार्य की उत्पत्ति हुई है इस विषय पर यजुर्वेद में एक सम्पूर्ण अध्याय उपलब्ध होता है । बाइस मन्त्रों से युक्त 31 वां अध्याय है जिसके दृष्टा नारायण ऋषि है तथा देवता पुरुष है इसीलिये इस अध्याय को पुरुषाध्याय या पुरुष सूक्त कहा गया हैं । इस अध्याय में वर्णित पुरुष सर्वव्यापक है जिसकी सत्ता प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान है तथा सम्पूर्ण भुवन में व्याप्त है ।

"पुरुषऽएवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति । एतावानस्यमहिमातो ज्यायांश्च पूरुष पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि त्रिपादूर्ध्वऽउदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत् पुनः ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अगिावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाताऽअजावयः ॥" [68]

जो सृष्टि बन चुकी है, जो बनने वाली है सब विराट् पुरुष ही है । इस अमर जीव–जगत् के भी वही स्वामी है । जो अन्न द्वारा वृद्धि प्राप्त करते है उनके भी वही स्वामी हैं । विराट् पुरुष की महत्ता अति विस्तृत है । इस श्रेष्ठ पुरुष के एक चरण में सभी प्राणी हैं और तीन भाग अनन्त अन्तरिक्ष में स्थित है । चार भागों वाले विराट् पुरुष के एक भाग में यह सारा संसार जड़ और चेतन विविध रूपों में समाहित है । इसके तीन भाग अनन्त अन्तरिक्ष में समाए हुए हैं । उस विराट् पुरुष से यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ । उस विराट् से समष्टि जीव उत्पन्न हुए । वही देहधारी रूप में सबसे श्रेष्ठ हुआ जिसने सबसे पहले पृथ्वी को, फिर शरीरधारियों को उत्पन्न किया । उस सर्वश्रेष्ठ विराट् प्रकृति यज्ञ से दधियुक्त घृत प्राप्त हुआ । वायुदेव से सम्बन्धित पशु हरिण, गौ, अश्वादि की उत्पत्ति उस विराट् पुरुष के द्वारा ही हुई । उस विराट् यज्ञ पुरुष से ही चारों वेदों का प्रादूर्भाव हुआ तथा घोड़े, गौएं, बकरिया और भेड़े आदि पशु भी उत्पन्न हुए । "प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तर्जायमानो बहुधा वि जायते । तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥" [69] प्रजापालक परमात्मा की सत्ता सम्पूर्ण पदार्थों में विद्यमान है, वह अजन्मा होकर भी अनेक रूपों में प्रकट होता है । उसकी कारण शक्ति में

[68] यजु. 31/2–8
[69] वही 31/19

सम्पूर्ण भुवन समाहित है । ज्ञानी–जन उसके मुख्य स्वरूप देख पाते हैं– "श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् । ईष्णान्निषाणामुं मऽइषाण सर्वलोकं मऽइषाण ॥"[70] हे प्रकाश स्वरूप परमात्मन् ! सबको सम्पन्नता प्रदान करने वाली वैभव लक्ष्मी आपकी पत्नी स्वरूप है, भुजाएं रात्रि और दिन, नक्षत्र आपके रूप हैं । द्युलोक और पृथ्वी आपके मुख सदृश है, इच्छा शक्ति से सबकी इच्छाओं को पूर्ण करने में समर्थ हे ईश्वर ! हमारी उत्तम लोकों की प्राप्ति की इच्छा पूर्ति के लिये आप करें ।

"तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः । तदेव शुक्रं तद् ब्रह्मा ता आपः स प्रजापतिः ॥" [71]

सर्वव्यापक परमात्मा ही स्वयं प्रकाशित प्रजापति है, वही सभी जगह प्रकाश फैलाने वाले अग्नि, सूर्य के सदृश तेजयुक्त आदित्य, व्यापक प्राणरूप वायु, आनन्दमय चन्द्रमा, दीप्तिमान् शुद्ध और पवित्र शुक्र, श्रेष्ठ उत्कृष्ठ पथ प्रदर्शक ब्रह्म सब में समाहित जल एवं समस्त प्रजाजनों के पालक भी है ।

"वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् । तस्मिन्नदं सं च विचैति सर्वं स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥" [72]

प्रत्येक पदार्थ में छिपे हुए उस परमात्मा को ज्ञानी–जन नित्य, सम्पूर्ण जगत् को आश्रय देने वाले रूप में जानते हैं । सब प्रजाओं में व्याप्त उस परमात्मा में सभी प्राणी प्रलयकाल में लय हो जाते हैं तथा सृष्टिकाल में उसी से पुनः प्रकट होते हैं । इस प्रकार परमपिता परमात्मा की सत्ता कण–कण में व्याप्त है । प्रजापति की महिमा द्वारा ही सूर्य, वायु, अन्तरिक्ष आदि तथा मनुष्य, पशु इत्यादि चराचर जगत् की सत्ता विद्यमान है –

"उपयामगृहीतोसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृहणाम्येष ते योनिः सूर्यस्ते महिमा यस्तेऽहन्त्संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते वायावन्तरिक्षे महिमा सम्बभूव यस्ते दिवि सूर्ये महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये स्वाहा देवेभ्यः । यः प्राणतो निमिषतो महित्वैकऽइद्राजा जगतो बभूव । यऽईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥" [73] हे हवि ! प्रजापति

---

[70] यजु. 31/22
[71] वही 32/1
[72] वही 32/8
[73] वही 23/2–3

के प्रिय आपको हम ग्रहण करते हैं । सूर्य, वायु, अन्तरिक्ष, द्युलोक, दिन और संवत्सर में आपकी महिमा प्रकट है । प्रजापति और देवगणों के निमित्त हम यह आहूति प्रदान करते हैं । जो परमात्मा अपनी महिमा द्वारा निमिष मात्र में मनुष्य, पशु सहित सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं, उन आनन्दस्वरूप परमेश्वर के लिये यह आहूति समर्पित करते हैं । यजुर्वेद के 40वें अध्याय में भी जड़ एवं चेतन सभी को ईश द्वारा बताया गया है ।

"ईशावस्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥" [74]

इस सृष्टि में जो कुछ भी जड़ अथवा चेतन है वह सब ईश द्वारा आवृत है । केवल उसके द्वारा उपयोगार्थ छोड़े गये का ही उपभोग करो । अधिक का लालच मत करो । क्योंकि यह धन किसका है अर्थात् किसी का नहीं । यहां समस्त जगत् का मूल ईशतत्त्व ही है और उसके द्वारा उत्पन्न जड़–चेतन रूप जगत् ईश तत्त्व का कार्य है । अतः ईश तत्त्व से उद्भूत विभिन्न प्राकृतिक तत्वों को हमें आवश्यकतानुसार ही उपभोग करने का निर्देश हैं । उस परमतत्त्व के विषय में बताते हुए कहा गया है–"तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके । तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥" [75]

वह परमतत्त्व गतिशील भी है और स्थिर भी है । वह दूर से भी दूर भी है और निकट से निकट भी है । वह सब जड़–चेतन जगत् के अन्दर भी है तथा सबके बाहर उसे आवृत किये हुए भी है ।

"यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः । तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः ॥" [76]

जिस स्थिति में व्यक्ति यह जान लेता है कि यह आत्मतत्त्व ही समस्त भूतों के रूप में प्रकट हुआ है तो एकत्व की अनुभूति की स्थिति में मोह अथवा शोक कहां सम्भव हो सकते हैं ।

---

[74] यजु. 40/1
[75] वही 40/5
[76] वही 40/7

अथर्ववेद में कार्य–कारण सिद्धान्त

ऋग्वेद और यजुर्वेद की भांति अथर्ववेद में भी एक परमात्मा को विभिन्न नामों से सम्बोधित किया गया है ।

"सोऽर्यमा स वरुणः स रूद्रः स महादेव : ।

रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥" [77]

वह परमात्मा ही पृथक् गुणों कर्मों से अर्यमा, वरुण, रूद्र तथा महादेव आदि नामों से पुकारा जाता है । एक अद्वितीय परमात्मा की घोषणा अथर्ववेद के त्रयोदशा काण्ड के दूसरे सूक्त के 26 वें मन्त्र में की गयी है–

"यो विश्वचर्षणिरुत विश्वतोमुखो यो विश्वतस्पाणिरूत विश्वतस्पृथः ।

सं बाहुभ्यां भरति सं पतत्रैर्द्यावापृथिवी जनयन् देव एकः ॥" [78]

वह परमात्मा सर्वद्रष्टा, सर्वतोमुख, सर्वपदार्थों का ग्राहक तथा सब की पूर्ति करने वाला है । इस द्युलोक तथा पृथ्वीलोक को उत्पन्न करने वाला देव एक ही है ।

अथर्ववेद के दशम काण्ड के द्वितीय सूक्त ब्रह्मप्रकाशन सूक्त में साक्षात्परब्रह्म का प्रकाशन किया गया है । यह सूक्त मनुष्य की जिज्ञासा से प्रारम्भ होता है इसलिये इसे केनसूक्त भी कहा गया है यह सब किसके द्वारा हुआ ऐसी जिज्ञासा व्यक्त की गयी है–

"केन पार्ष्णी आभृते पूरुषस्य केन मांसं संभृतं केन गुल्फौ ।

केनाङ्गुलीः पेशनीः केन खानि केनोच्छ्लङ्खौ मध्यतः कः प्रतिष्ठाम् ॥" [79]

यह भी प्रश्न उपस्थित किया गया है कि भूमि को किसने स्थापित किया ? द्युलोक तथा अन्तरिक्ष को किसने स्थापित किया ?

---

[77] अथर्व. 13/4/4
[78] वही 13/2/26
[79] वही 10/2/1

"केनेयं भूर्मिर्विहिता केन द्यौरुत्तरा हिता ।

केनेदमूर्ध्वं तिर्यक चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥" [80]

प्रश्न के उत्तर में कहा गया है–

"ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म धौरुत्तरा हिता ।

ब्रह्मेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥" [81]

ब्रह्म ही इस भूमि के उच्च भाग द्युलोक, ऊपर तिरछे तथा फैले हुए अन्तरिक्ष के निर्माता है ।

अथर्ववेद के दसवें काण्ड का सातवां सूक्त स्कम्भ (सर्वाधार) सूक्त है । इसके देवता स्कम्भ है, जो समग्र सृष्टि के धारणकर्ता परमात्मा है । चतुर्थ मन्त्र में प्रश्न किया गया है–

"यस्मिन्त्सतब्धा प्रजापतिर्लोकान्सर्वं अधारयत् ।

स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥" [82]

वह कौनसा स्कम्भ है, जो इस विश्व को धारण किये है ? प्रश्न का उत्तर सूक्त के विभिन्न मन्त्रों में दिया गया है जिससे स्पष्ट होता है कि परमात्मा ही वह सर्वाधार है जो संसार के विभिन्न पदार्थों को धारण करता है ।

"यत्र लोकांश्च कोशाश्चापो ब्रह्म जनाः विदुः ।

असच्च यत्र सच्चान्तः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥" [83]

जिस ब्रह्म में विद्वान् लोग समस्त लोकों तथा कोशों को विद्यमान जानते हैं तथा जिसके भीतर असत् और सत् विद्यमान है ।

"यस्मिन् भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता ॥"

---

[80] अथर्व. 10/2/24
[81] वही 10/2/25
[82] वही 10/7/7
[83] वही 10/7/10

"यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो वातस्तिष्ठतिन्त्यार्पिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥"[84]

जिसमें पृथ्वी,अन्तरिक्ष और द्युलोक स्थित हैं तथा अग्नि, सूर्य, चन्द्र एवं वायु जिसके आश्रय में रहते हैं । इस प्रकार सृष्टि के विभिन्न क्रियाकलाप परमात्मा की शक्ति से ही संचालित हो रहे हैं तथा ब्रह्माण्ड में जो कुछ जानने योग्य है वह उसी दिव्य शक्ति के पराक्रम का सूचक है ।

"प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरदृश्यमानो बहुधा वि जायते ।

अर्धेन विश्वं भुवनं जजानं यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥" [85]

वह प्रजापति गर्भ के अन्दर अदृश्य रूप से विचरण करता हुआ नानारूपों में प्रकट होता है । वह अपने आधे भाग से समस्त भुवनों को उत्पन्न करता है ।

परमात्मा के विषय में कहा गया है–

"यो विद्यात् सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः ।

सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात् स विद्यात् ब्राह्मणं महत् ॥" [86]

जिसमें ये समस्त प्रजाएं ओतप्रोत है, जो विस्तृत इस सूत्र को एवं इसके कारण रूप भी जानता है । वास्तव में वह ज्येष्ठ ब्रह्म को जानता है ।

अथर्ववेद के 11वें काण्ड के नवम सूक्त उच्छिष्ट–ब्रह्मसूक्त है । इस सूक्त के देवता उच्छिष्ट है । उच्छिष्ट अर्थ है– अवशिष्ट या शेष बचा हुआ अर्थात् परमात्मा ने अव्यक्त गुणातीत स्वरूप में से जो अंश त्याग दिया है वही उच्छिष्ट अंश नामरूपात्मक सृष्टि बनी है । उच्छिष्ट अंश के प्रकट होने का क्रम सतत चल रहा है । परमात्मा के उच्छिष्ट अंश से ही जगत् का मूल उत्पादक क्रियाशील तत्त्व अप् एवं पंचमहाभूतों की उत्पत्ति हुई । पृथ्वी के उच्छिष्ट अंश से अन्न, वनस्पति आदि प्राणियों का क्रम चलता है । विराट् के उच्छिष्ट अंश में ही नाम और रूप तथा उसी में लोक–लोकान्तर स्थापित है । उसमें ही इन्द्र, अग्नि तथा समस्त विश्व समाहित है ।

---

[84] अथर्व. 10/7/12
[85] वही 10/8/13
[86] वही 10/8/37

"उच्छिष्टे नाम रूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः ।

उच्छिष्ट इन्द्रश्चाग्निश्च विश्वमन्तः समाहितम् ॥" [87]

अथर्ववेद के नवम काण्ड के 15 वें सूक्त 'अस्यवामीय सूक्त' है जिसका प्रारम्भ 'अस्य वामस्य' से होता है इसीलिये इस सूक्त को अस्यवामीय सूक्त की संज्ञा दी गयी है । इसके 22 मन्त्रों में रहस्यात्मक शैली में परमात्मा, जीवात्मा, इन्द्रिय समूह आदि का वर्णन किया गया है । इसी सूक्त में इश्वर, जीव तथा प्रकृति की तीन अनादि सत्ताओं का सूचक निम्न मन्त्र में आता है जिसमें एक रूपक की रचना कर चेतनायुक्त मैत्रीभाव से सम्पृक्त दो पक्षियों (परमात्मा तथा जीवात्मा) को प्रकृति रूपी वृक्ष का आधार लेकर स्थित हुआ चित्रित किया गया है–

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥" [88]

साथ रहने वाले मित्रों की तरह दो पक्षी एक ही वृक्ष पर स्थित है उनमें से एक स्वादिष्ट पीपल के फल खाता है, दूसरा उन्हें न खाता हुआ केवल देखता रहता है । सभी जीवात्माएं सुख–दुःख रूपी फलों को भोगती हुई परमात्मा की स्तुति करती हैं । सभी लोकों के स्वामी और संरक्षक परमात्मा अज्ञान से युक्त मुझ जीवात्मा में विद्यमान है ।

"यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भक्षमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ।

एना विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश ॥" [89]

निखिल विश्व ब्रह्माण्ड के मूल आधार स्वयं की सत्ता के द्वारा सर्वत्र विद्यमान पुरुष परमात्मा का संकीर्तन अथर्ववेद के 19वें काण्ड के छठे सूक्त (जगत् बीज पुरुष सूक्त) में वर्णित है । यहां कुछ मन्त्र मूलतः विराट् पुरुष से ही सृष्टि के उद्भव का भाव व्यक्त हुआ है ।

---

[87] अथर्व. 11/9/1
[88] वही 9/14/20
[89] वही 9/14/22

"विराडग्रे समभवद् विराजो अधि पूरुषः ।

स जातो अत्यरिच्यत पश्चात् भूमिमथोपुरः ॥" [90]

विराट् पुरुष से ही यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ । उसी विराट् से समष्टि जीव उत्पन्न हुए । वही देहधारी रूप सबसे श्रेष्ठ हुआ, जिसने सबसे पहले पृथ्वी को, तत्पश्चात् शरीरधारियों को उत्पन्न किया । सम्पूर्ण सृष्टि जो बन चुकी है और बनने वाली है, सब विराट् पुरुष ही है–"पुरुषं एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम् ॥" [91]

अथर्ववेद के नवम काण्ड के 15वें सूक्त के एक मन्त्र में सृष्टि सम्बन्धित कुछ जिज्ञासाएं व्यक्त की गयी है–

- इस धरती का अन्तिम छोर कौनसा है ?
- सभी भुवनों का केन्द्र कहां है ?
- अश्व की शक्ति कहां है ?
- वाणी का उद्गम कहां है ?

"पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि वृष्णो अश्वस्य रेतः ।

पृच्छामि विश्वस्य भुवनस्य नाभिं पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥" [92]

इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए अगले मन्त्र में कहां गया है–

"इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतः ।

अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिर्ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥" [93]

यह वेदिका पृथ्वी का अन्तिम छोर है, यह यज्ञ ही संसार चक्र की धुरी है । यह सोम ही अश्व बलशाली की शक्ति है । यह 'ब्रह्म' वाणी का उद्गम स्थान है ।

---

[90] अथर्व. 19/6/9
[91] वही 19/6/14
[92] वही 9/15/13
[93] वही 9/15/14

अक्षर परमात्मा में समस्त दिव्य शक्तियों का अधिष्ठान है । अविनाशी, अक्षर ब्रह्म के इस तथ्य को जानने वाले परमपद को प्राप्त करते हैं ।

"ऋचा अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः ।

यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद् विदुस्ते अमी समासते ॥" [94]

अथर्ववेद के चतुर्थ काण्ड के 11 वें सूक्त (अनड्वान् सूक्त) में मूल सत्ता पर समस्त लोक आश्रित है ।

"अनड्वान् दाधार पृथिवीमुत द्यामनड्वान् दाधारोर्वन्तरिक्षम् ।

अनड्वान् दाधार प्रदिशः षडुर्वीरनडवान् विश्वं भुवनमा विवेश ॥" [95]

विश्वकर्मा शकट को ढोने वाले वृषभ रूप ईश्वर ने पृथ्वी को धारण किया है । उसने स्वर्गलोक, अन्तरिक्ष तथा पूर्व आदि पूर्व छः महादिशाओं को भी धारण किया है । इस प्रकार वह अनड्वान् समस्त लोको में प्रविष्ट हुआ है ।

ब्राह्मण एवं आरण्यकों में कार्य–कारण सिद्धान्त

कारण एवं कार्य विषयक जिज्ञासा अनादिकाल से ही मानव के लिये रहस्यमय रही हैं । दृश्यमान जगत् का मूल कारण क्या है ? इसके पीछे कौन–कौन सी शाश्वत् शक्तियां कार्यरत है ? इत्यादि प्रश्नों का समाधान वैदिक संहिताओं में जानने के पश्चात् ब्राह्मण ग्रन्थों एवं आरण्यकों में भी जानना आवश्यक है । विभिन्न ब्राह्मण ग्रन्थों में कार्य एवं कारण विषयक जिज्ञासा के समाधान के लिये प्रयत्न किया गया है । जगत् के मूल कारण के विषय में शतपथ ब्राह्मण के काण्ड 11 और 14 में बहुत विस्तार से वर्णन है । प्राकृतिक यज्ञ को सृष्टि का मूल कारण बताया गया है पहले जलीय सृष्टि, फिर हिरण्यमय पिण्ड (हिरण्यगर्भ), पृथिवी, फेन, मिट्टी, औषधि, वनस्पति, मत्स्य आदि के बाद पशु–पक्षी, फिर क्रमशः मनुष्य आदि का वैज्ञानिक वर्णन है– "आपो ह वाऽइदमग्रे सलिलमेवास । ताऽकामयतं कथं नु प्रजायेमहीति ताऽअश्राम्यंस्तास्तपोऽतप्यतं तासु तपस्तप्ययमानासु हिरण्मयमाण्डं संबभूवाजातो ह तर्हि

[94] अथर्व. 9/15/18

[95] वही 4/11/1

संवत्सरऽआस तदिदं हिरण्मयमाण्डं यावत्संव्वत्सरस्यव्वेला तावत्पर्य्यप्लवत ॥"[96] आपः, फेनः, मृत, सिकता, शर्करा, अश्मा, पृथिवी ॥"[97]

तैत्तिरीय ब्राह्मण के द्वितीय काण्ड के द्वितीय प्रपाठक के नवम अनुवाक के प्रथम मन्त्र में कार्य–कारण विषय का वर्णन है । इस पर ऋग्वेद के नासदीय सूक्त का बहुत प्रभाव है–"इदं वा अग्रे नैव किंचनाऽऽसीत् । न द्यौरासीत् । न पृथिवी । नान्तरिक्ष्म् । तदसदेव सन्मनोऽकुरुत स्यामिति । तदतप्यत । तस्मात्तेपानाद् धूर्मोऽजायत । तद्धूयोऽतप्यत । तस्मात्तेपादादग्निरजायत । तद्धूयोऽतप्यत । तस्मात्तेपा नाज्ज्योतिरजायत । तद्धूयोऽतप्यत । तस्मात्तेपानादचिर्जायत । तद्धूयोऽतप्यत । तस्मात्तेपानान्मरीचयोऽजायन्त । तद्धूयोऽतप्यत । तस्मात्तेपानादुदारा अजायन्त । तद्धूयोऽतप्यत । तदभ्रमिव समहन्यत इति ॥"[98] यह जो स्थावर जंगमरूप भूलोकादि रूप जगत् दिखाई देता हैं वह सभी सृष्टि के पूर्व नहीं थे । असत् रूप से ही वर्तमान में व्याप्त सदरूप दृश्यमान हुआ ।

लोकत्रय सृष्टि का निरूपण किया गया है–"तद्वा इदमापः सलिलमासीत् । सोऽरोदीत्प्रजापतिः । स कस्मा अपि । यद्यस्या अप्रतिष्ठाया इति । यदप्स्वपद्यत । सा पृथिव्यभवत् । यद्वयमृष्ट । तदन्तरिक्षमभवत् । यदूर्ध्वमुदमृष्ट । सा द्यौरभवत् । यदरोदीत् । तदनयो रोदस्त्वम् ॥" [99] मनुष्यादि सृष्टि को भी इस प्रकार बताया है–"सोऽकामयत प्रजायेयेति । स तपोऽतप्यत । सोऽन्तर्वानभवत् । स प्रजननादेव प्रजा असृजत । तस्मादिमा भूयिष्ठाः । प्रजननाद्धयेना असृजत ॥" [100]

पहले असत् से सत् की उत्पत्ति, फिर क्रमशः मन, धूम, अग्नि, ज्योति,अभ्र आदि की । तत्पश्चात् ऋतुओं, देवों, मनुष्यों की रचना की गयी–"असतोऽअधि मनोऽकुरुत । मनः प्रजापतिमसृजत । प्रजापतिः प्रजा असृजत । तद्वा इदं मनस्येव परमं प्रतिष्ठितम् । यदिदं किंच । तदेतच्छवोवस्यसं नाम ब्रह्म इति ॥" [101]

शतपथ ब्राह्मण में बताया गया है कि आदि में यह ब्रह्म ही सब कुछ था, उसने देवों की सृष्टि की । देवों की सृष्टि करके उसने उनको लोकों में स्थित किया ।[102] ताण्डयादि ब्राह्मणों के

---

[96] शत. ब्रां. 11/1/6/1
[97] वही 6/1/3/1–7
[98] तै. ब्रा. 2/2/9/1–2
[99] वही 2/2/9/3–4
[100] वही 2/2/9/6
[101] वही 2/2/9/10
[102] शत. ब्रा. 11/2/3/1

अनुसार सृष्टि से पहले अहोरात्र का अस्तित्व नहीं था । सम्पूर्ण वातावरण अन्धकार से आच्छन्न था । अकेले प्रजापति, जिन्हें ब्राह्मण ग्रन्थों में सर्वकारणभूत स्रष्टा के रूप में प्रायः उल्लिखित किया गया है, विद्यमान थे । उनकी कामना ही विश्वसृष्टि की सम्भावनाओं का बीजरूप प्रतीत होती है जिन्होनें सर्वप्रथम अंधकार में प्रकाश की कामना की – "प्रजापतिर्वा इदमेक आसीन्नऽहरात्रीन्न रात्रिरासीत् सोऽस्मिन्नन्धे तमसि प्रासर्पतस ॥"[103] प्रजापति ने तदनन्तर एक से अनेक होने की इच्छा से विचार करते हुए मूर्धाभाग से आदित्य की उत्पत्ति हुई । "प्रजापतिरकामयत बहुस्यां प्रजायेयेति सोऽशोचत्तस्य शोचत आदित्यो मूर्ध्नोऽसृज्यत ॥" [104] प्रजापति की इस कामना को मूर्तरूप प्रदान करने में वाणी की महत्वपूर्ण भूमिका है । वाणी से पृथक्कृत तीन अक्षरों 'अ', 'क' तथा 'ह' से क्रमशः तीनों लोकों भूमि, अन्तरिक्ष और द्युलोक की रचना की ।[105]

वैदिक परम्परा के अनुसार जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में भी सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन किया गया है । यहां मूल कारण विषयक मत यद्यपि नासदीय सूक्त से पृथक् अवश्य है किन्तु तद्विपरीत नहीं है । वर्तमान जगत् की सृष्टि से पूर्व अन्तरिक्ष, आकाश, प्रजापति, ब्रह्मा, अक्षर वाक्, सलिल–आपः अथवा आदित्य था ऐसा उल्लेख किया है । जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में भी सलिल को ही आदि तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है–"आपो ह वा इदमग्रे महत्सलिलमासीत्"[106] सृष्टि की आदि में प्रजापति, अन्तरिक्ष एवं आकाश को भी वर्तमान सृष्टि से पूर्व में माना गया है ।

"इदमेवेदमग्रे अन्तरिक्षमासीत् ॥" [107]

यहां प्रजापति द्वारा सृष्ट्युत्पत्ति का स्पष्ट उल्लेख किया गया है–"प्रजापतिः प्रजा असृजत ॥" [108] सर्गारम्भ से पूर्व प्रजापति ने एकत्व का अनुभव किया तथा कामना की–"सोऽकामयत । एकोऽहं

[103] ता. ब्रा. 16/1/1
[104] वही 6/5/1
[105] वही 20/14/2
[106] जै. उ. ब्रा. 1/18/1/1
[107] वही 1/16/1/1
[108] वही 1/3/1/1

बहुस्याम प्रजायेय । भूमानं गच्छेयम् इति ॥" [109] जैमिनीयोपनिषद् में कारण से सम्बन्धित जिज्ञासा को प्रकट किया गया है–

"स्थूणां दिवस्तम्भनीं सूर्यमाहुर अन्तरिक्षे सूर्यः पृथिवी प्रतिष्ठः ।

अप्सु भूमीः शिशियरे भूमिभाराः किंस्विन्महीरधितिष्ठन्त्यापः ॥" [110]

द्युलोक को साधने वाली धूनी (स्तम्भनी) क्या है ? सूर्य और पृथिवी अन्तरिक्ष में किस आधार से ठहरे हैं ? जल या अन्तरिक्ष में भारवाली विस्तृत पृथिवी कैसे सोई हुई है ? पृथिवी पर जल कैसे स्थित है ? जिज्ञासा के समाधानार्थ कहा गया है– "ओमित्येतदेवाक्षरं सत्यम् । तदेतदायोऽधितिष्ठति ॥" [111] सत्य पर ही ये सब प्रतिष्ठित है और सत्य क्या है ? इस विषय पर कहा गया है–

"अदितिद्यौरितिन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।

विश्वेदेवा अदितिः पंचजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥" [112]

यह अदिति पिता व पुत्र है । यही द्यौ और अन्तरिक्ष है । आदित्य, चन्द्र, विद्युत्, जल व अन्तरिक्ष आदि सब प्रकृति ही है । उत्पन्न होने वाली तथा उत्पन्न करने वाली सारी सृष्टि अदिति ही है । जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण में कहा गया है कि प्रजापति ने वेदत्रय पर जय प्राप्त की । वेदत्रय से सारतत्त्व लिया वही यह पृथिवी हुई । उसका भी सार अग्नि कहलाया । भुवः के रूप में यजुर्वेद का रस लिया जो अन्तरिक्ष बना और उसका भी सार वायु हुआ । स्व के रूप में सामवेद का रस लिया जो द्यौ कहलाया और उसका रस निकालने से आदित्य हुआ । एक अक्षर ओम् का ही रस नहीं लिया जा सका वही वाक् हुई प्राण उस वाक् का ही रस है । [113]

प्रजापरि ने एक से अधिक होने की कामना की तथा अपने को "स षोडशधात्मानं व्यकुरुते ॥" [114] इसी षोडषधा से चेतन व अचेतन सृष्टि का निर्माण हुआ । इस प्रकार षोडषधा पुरुष षोडष अवस्थाओं में विकृत होकर समस्त जगत् के रूप में स्पष्ट होने के कारण पुरुष हिरण्यमय

---

[109] जै. उ. ब्रा. 1/15/1/1
[110] वही 1/2/3/9
[111] वही 1/2/3/11
[112] वही 1/13/2/4
[113] वही 1/1/1–5
[114] वही 1/15/1–2

संज्ञात्मक हो गया– "स हैव षोडशधात्मानं विकृत्य सार्धं समैति । स एवैष हिरण्यमयः पुरुष उद्तिष्ठत् प्रजानां जनयिता ॥" [115] इसी ब्राह्मण में सृष्टि के अन्तर्गत अपनी एक सामविधा पद्धति के माध्यम से देव, असुर, मनुष्य,अप्सरा, पशु, पक्षी समस्त भूत लोकादि अर्थात् चेतन–अचेतन सृष्टि का वर्णन है ।

शतपथ ब्राह्मण में असत् को सृष्टि से पूर्व माना गया है–"असद्वा इदमग्र आसीत् ॥"[116] प्रजापति द्वारा नौ सृष्टियों की उत्पत्ति का उक्त ब्राह्मण में निर्देश है कि श्रान्त और तप करते प्रजापति ने फेन उत्पन्न किया तथा मृत, शुष्कापम्, ऊष, सिकता,शर्करा, अश्मा, अयः और हिरण्य तथा औषधि वनस्पति को उत्पन्न किया उससे इस पृथ्वी को ढक दिया ये ही नौ सृष्टियां है । "सोऽकामयत भूयऽएवस्यात्प्रजायेतेति सोऽश्राम्यत्स तपोऽतप्यत स श्रान्तस्तेपानः फेनमसृजत सोऽवेदन्यद्वाऽएतदूपं भूयो वै भवति श्राम्याण्येवेति स श्रान्तस्तेपानो मृदं शुष्कापमूषसिकतं शर्करामश्मानमयो हिरण्यमोषधिवनस्पत्यसृजत तेनेमां पृथिवी प्राच्छायत् ॥" [117] तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी जगत् के कारण विषयक जिज्ञासा का समाधान प्रस्तुत करते हुए कहा गया है–"ब्रह्म वनं ब्रह्म स वृक्ष आसीत् । यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ॥" [118] ब्रह्म ही वह वन था, ब्रह्म ही वह वृक्ष था जिसको काट–छाटकर द्यावापृथिवी का निर्माण किया गया है । अदिति की समस्त भूततत्त्वों प्राणियों तथा विश्व के समस्त जनित्व घटकों में व्याप्ति स्पष्ट है । वही द्युलोक है , वही अन्तरिक्ष है, वही माता–पिता, पुत्र है । समस्त दिव्य और प्राकृतिक शक्तियां स्वयमेव अदिति है । इसी स्वरूप को तैत्तिरीय ब्राह्मणकार ने भी बताया है– "एवा न देव्यदितिरनर्वा विश्वस्य भर्त्री जगतः प्रतिष्ठा । पुनर्वसू हविषा वर्धयन्ती प्रियं देवानामप्येतु पाथः । इति ॥" [119] अदिति एक शाश्वत्, अनर्वा, अविचला, विश्वभर्त्री, जगत् प्रतिष्ठापिका, नक्षत्रपुञ्ज, देवप्रिया विशेषणों एवं स्वरूपों से प्रशंसित किया गया है । ताण्डय ब्राह्मण में बताया है किप्रजापति ने कामना की कि मैं सृजनकर बहुत हो जाऊं ,उसने अतिरात्र को देखा कि यही से सृष्टि का प्रारम्भ हो, इस कारण उनके द्वारा प्रारम्भ में अहोरात्र को उत्पन्न किया गया–"प्रजापतिर्वा इदमेक आसीत् सोऽकामयत बहुस्याम् प्रजायेयेति स एतमतिरात्रमपश्यत्तमाहरन्तेनाहोरात्रे प्राजनयत् ॥" [120]

---

[115] जै. उ. ब्रा. 1/15/3/7–8
[116] श.ब्रा. 6/1/1/1
[117] वही 6/1/1/13
[118] तै. ब्रा. 2/8/9/6–7
[119] वही 3/1/1/4
[120] ता. ब्रा. 4/1/4

इसी ब्राह्मण में अन्यस्थल पर आदिमूल तत्त्व के रूप में आपः को स्वीकार किया गया है– "तद् अपाम् एवैश्वर्यम् आसीत् । यद् अपाम् एवैश्वर्यम् आसीद् अपां राज्यम् अपाम् अन्नाद्यम् तद् अग्निर् अभ्यध्यायन् ममेदम् ऐश्वर्य मम राज्यं ममान्नाद्यं स्याद् इति । स एताम् अग्निष्टोम संपदम् अपश्यत् । तयेमा अपो व्युदौहद् ऊर्ध्वाश् चावाशीश च .....ता एताः पर्यूदा अनूत्खायैक उप जीवन्ति ॥" [121]जैमिनीय ब्राह्मण में चेतनात्मक सृष्टि का संयुक्त रूप से चित्रण प्रस्तुत करते हुए बताया है कि प्रजापति ने ईक्षण किया कि देवों की सृष्टि हो, क्योंकि देव ही जगत् के आधार होंगे– "प्रजापतिर् वावेदम् अग्र आसीत् । सोऽकामयत–बहुस्यां प्रजायेय, भूमानं गच्छेयम् इति । स तपोऽतप्यत । स वाचम् असृजत । वाचो गां निरमिनीत । स ऐक्षतालं वै तस्मा अस्मि यत् सृजेयेत् । तद् अन्नं लभेत् यत् सृजेयं, हन्त सृजा इति । स वसून् असृजत, स रूद्रान्, स आदित्यान् ॥" [122] ये वसु, रूद्र, आदित्य इकत्तीस संख्या में परिगणित है ।

ऐतरेय ब्राह्मण में वसु, रूद्र, अदित्यों को द्वादश पद में प्रस्तुत कर उनके स्वरूप,कार्य आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है इन्हीं तीनों से भूत सृष्टि का उल्लेख है–"प्रजापतिर्वा इदमेक एवाग्र आस सोऽकामयत प्रजायेय भूयान्स्यामिति स तपोऽतप्यत स वाचमयच्छत्स संवत्सस्य परस्ताव्द्याहरदूद्वादशकृत्वो द्वादशपदा वा एषा निविदेतां वाव तां निविदं व्याहस्तां सर्वाणि भूतान्यन्वसृज्यन्त इति ॥" [123]

यज्ञ से ही वेदों का उद्भव होता है ऐसा तैत्तिरीय आरण्यक आदि में वर्णन है–

"तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे ।

छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥" [124]

तैत्तिरीय आरण्यक में असत् से सत् की उत्पत्ति मानी गयी है । आत्मा के बिना किसी के सहायता से आकाश, वायु, अग्नि आदि सभी पदार्थों को उत्पन्न किया । [125] ऐतरेय आरण्यक में सभी पदार्थों में मनुष्य की ऐसी सृष्टि हुई है, जिसमें आत्मा की पूर्ण अभिव्यक्ति हो सकती है अत एव सब प्रकार का ज्ञान मनुष्य में ही उत्पन्न हो सकता है ।

---

[121] जै. ब्रा. 1/237/1–5
[122] वही 2/252/1–2
[123] ऐ. ब्रा. 10/1/5
[124] तै. आ. 3/12/4, यजु. 31/7
[125] वही 1/2/3

मनु मत्स्य प्रकरण में प्रलय के बाद मनु के द्वारा जल एवं आमिक्षा से सम्पादित यज्ञ से सुन्दर स्त्री की उत्पत्ति बतायी अतः प्रारम्भ में एकमात्र ब्रह्म की सत्ता थी और उसके बाद प्रजापति की–"प्रजापतिर्वै इदमग्रऽआसीत् ॥" [126] प्रजापति के तप तथा श्रम से सृष्टि का विकास हुआ । भुवनों में सर्वप्रथम पृथिवी की रचना हुई–"भूतस्य प्रथमजाऽइतीयम्वै पृथिवी भूतस्य प्रथमजा तदनयैवैनमेतत्समर्द्धयति कृत्स्नङ्गऱोति ..... त्वां शीर्ष्णऽइत्यसावेवबन्धुः ॥"[127] इसके पश्चात् पृथिवी के दृढीकरण, शर्करा सम्भरण, फेन–सृजन, मृतिका सृजन, पशु सृष्टि, ओषधियां एवं वनस्पतियां अन्य लोकों एवं संवत्सरादि, वेदों छन्दों के आविर्भाव का वर्णन है । उपनिषदों के समान आरण्यक ग्रन्थों में भी एक ही मूल सत्ता को मानते हैं, जिसके विकास के फलस्वरूप जगत् की रचना हुई है तथा विभिन्न वस्तुओं में एक ही तत्त्व अनुस्यूत है ।

[126] श. ब्रा. 6/1/3/1

[127] वही 14/1/2/10

तृतीय अध्याय

न्याय–वैशेषिक एवं पारम्परिक भौतिकी में कार्य–कारण सिद्धान्त

सृष्टि के आदिकाल से ही मानव इस विराट्, व्यवस्थित एवं निखिल विश्व के रहस्यों को जानने के लिये समुत्सुक और सचेष्ट रहा है । ऋषि परम्परा के पश्चात् जगत् के मूलतत्त्वों का सूक्ष्म एवं गहन विवेचन दार्शनिक जगत् के गम्भीर चिन्तन का विषय है । सम्पूर्ण जगत् कार्य–कारण सिद्धान्त पर आश्रित है । कारण एवं कार्य परस्पर आनिवार्यतः सम्बन्धित हैं । किसी भी कार्य का अस्तित्व बिना किसी कारण के संभव नहीं है ।

"कारणाभावात्कार्याभावः ॥"[1]

ब्रह्माण्ड के सभी पदार्थ जन्य–जनकत्व भाव से श्रृंखलाबद्ध है । सामान्यतः पूर्व में घटित होने वाली घटना को कारण एवं पश्चात् में घटित होने वाली घटना को कार्य कहा जाता है ।

न्याय–वैशेषिक में कार्य–कारण सिद्धान्त

भारतीय दर्शन में कार्य–कारण सम्बन्ध को लेकर जिस समस्या पर सर्वाधिक विचार हुआ है , वह यह है कि कार्य एक नितान्त नवीन उत्पत्ति है या कारण का ही दूसरा रूप है ? निम्न प्रश्न के समाधानार्थ विभिन्न भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों के भिन्न–भिन्न मत हैं । विभिन्न भारतीय दार्शनिक शाखाओं (वेदान्त, सांख्य एवं योग, न्याय–वैशेषिक, बौद्ध) में कार्य–कारण विषय पर भिन्न–भिन्न मत प्रस्तुत किये गये हैं । इन चारों दार्शनिक शाखाओं द्वारा स्वीकृत सिद्धान्तों को क्रमशः एक–कारणतावाद, द्वि–कारणतावाद, अनेक–कारणतावाद, शून्य–कारणतावाद के नाम से अभिहित किया गया है ।

"इह कार्यकारणभावे चतुर्था विप्रतिपत्तिः प्रसरति । असतः सज्जायत इति सौगताः संगिरन्ते । नैयायिकादयः सतोऽसज्जायत इति । वेदान्तिनः सतो विवर्तः कार्यजातं न वस्तुसदिति । सांख्याः पुनः सतः सज्जायत इति ॥" [2]

---

[1] वै. सू. 1/2/1

[2] स. द. सं. पृ. 539

यहां पर कार्य–कारण के परस्पर सम्बन्ध को लेकर चार प्रकार के भिन्न–भिन्न मत हैं । बौद्ध (शून्यवादी) कहते हैं कि असत् से सत् पदार्थ की उत्पत्ति होती है । नैयायिक और वैशेषिक भी कहते हैं कि सत् कारण से सत् कार्य की उत्पत्ति होती है किन्तु कार्य कारण में पहले से विद्यमान नहीं होता है । वेदान्तियों (अद्वैत) की मान्यता है कि सत् कारण से विवर्त कार्य उत्पन्न होता है और सारे कार्यों की वास्तविक सत्ता नहीं रहती है । सांख्य दर्शन में कहते है कि सत् कारण से सत् कार्य उत्पन्न होता है किन्तु कार्य में कारण पहले से विद्यमान होता है ।

- **असत्कारणवाद (बौद्ध मत)**– यह बौद्ध दार्शनिकों का सिद्धान्त है । इनके अनुसार कारण के नष्ट हो जाने पर कार्य की उत्पत्ति होती है जैसे– बीज के नष्ट हो जाने पर अंकुर की उत्पत्ति होती है अर्थात् बीज और अंकुर दोनों एक ही क्षण में एक साथ अवस्थित नहीं रह सकते हैं । बौद्ध दर्शन के अनुसार प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व क्षणिक है । कारण के असत् अर्थात् नष्ट होने पर कार्य की उत्पत्ति होती है । बौद्धों के इसी कार्य–कारणवाद को असत्कारणवाद के नाम से जाना जाता है ।
- **सत्कार्यवाद (सांख्यमत)–** सांख्य दर्शन में सत्कार्यवाद को माना गया है । इसके अनुसार कार्य उत्पत्ति से पूर्व कारण में सत् रूप में विद्यमान रहता है और कारण व्यापार से अभिव्यक्त हो जाता है । सांख्यकारिका में सत्कार्यवाद को प्रस्तुत करने के लिये पाचं युक्तिया प्रस्तुत की गयी है–

  "असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात् ।
  शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम् ॥"[3]

ईश्वर कृष्ण ने सांख्यकारिका में निम्न पांच युक्तियां दी है –

1. यदि कार्य उत्पत्ति के पूर्व कारण में विद्यमान न हो तो वह सदा असत् होगा । यथा – बालू से तेल की उत्पत्ति ।
2. उपादान कारण का कार्य के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होता है यथा तिल में तेल ।
3. कार्य को उपादानकारण में पहले से विद्यमान मानना आचश्यक है । अन्यथा किसी भी कारण से किसी भी कार्य की उत्पत्ति हो जायेगी ।
4. शक्त कारण से ही शक्य कार्य की उत्पत्ति होती है । अन्यथा बालू से भी तेल निकाला जा सकता है ।

[3] सां. का. 9

5. कार्य एवं कारण एक ही वस्तु के दो रूप है । कारण कार्य की अव्यक्तावस्था है और कार्य कारण का व्यक्त रूप है ।

- **सत्कारणवाद (वेदान्त)**– वेदान्त दर्शन का कारणकार्यवाद को सत्कारणवाद के नाम अभिहित है । अद्वैत दर्शन के अनुसार केवल ब्रह्म ही सत् है, केवल ब्रह्म की ही पारमार्थिक सत्ता है, ब्रह्मातिरिक्त सम्पूर्ण जगत् असत् है, मिथ्या है । सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म का विवर्त है– ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या ॥ परिणामवाद और विवर्तवाद ये दोनों ही सत्कार्यवादियों के मत हैं । वेदान्तसार में परिणाम और विवर्त के भेद को इस प्रकार बताया है । "सतत्त्वतोऽन्यथा प्रथा विकार, अतत्त्वतोऽन्यथा प्रथा विवर्त ॥"[4] तात्विक परिवर्तन को विकार तथा अतात्विक परिवर्तन को विवर्त कहते हैं ।
- **असत्कार्यवाद (न्याय–वैशेषिक)**– असत्कार्यवाद के जनक न्याय–वैशेषिक दर्शन को माना जाता है । इनके मत में कार्य और कारण नितान्त भिन्न वस्तुएं है न केवल रूप और आकार की दृष्टि से अपितु तत्त्व निर्माण की दृष्टि से भी भिन्न है । तन्तुओं से पट का निर्माण करते हैं तो पट एक नवीन वस्तु है । कार्य उत्पत्ति से पूर्व कारण में असत् रहता है उत्पन्न हो जाने पर उसका नवीन आरम्भ है इसलिये न्याय–वैशेषिक का कार्य–कारण विषयक मत आरम्भवाद (उत्पत्तिवाद) के नाम से जाना जाता है । इसका विस्तृत विवेचन आगे किया जायेगा ।

वैशेषिक दर्शन में द्रव्यों का विवेचन

वैशेषिक दर्शन परम्परा में सम्पूर्ण दृश्यमान भौतिक जगत् को छह (परवर्ती काल में सात)पदार्थों में विभक्त करके अभ्युदय एवं निःश्रेयस का मार्ग प्रशस्त किया गया है ।

"धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम् ॥"[5]

धर्म विशेष से उत्पन्न हुए द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय नामक पदार्थों के साधर्म्य और वैधर्म्य के साथ तत्त्वज्ञान से निःश्रेयस प्राप्त होता है । वैशेषिक सूत्रकार ने इस भौतिक

[4]वे. सा. का. 21
[5]वै. सू. 1/1/4

जगत् का अन्तिम कारण परमाणु को माना है, इसीलिये भारतीय परमाणुवाद के प्रवर्तक के रूप में कणाद को जाना जाता है । वैशेषिक सूत्रकार कणाद के द्वारा ऐसे विशिष्ट सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया जिनका महत्व अद्यावधि बना हुआ है । धर्म–धर्मी भेद सिद्धान्त, सप्तपदार्थवाद,नवद्रव्यवाद, आरम्भवाद अथवा असत्कार्यवाद, सृष्टि एवं संहार प्रक्रिया एवं परमाणुवाद वैशेषिक दर्शन के अतिमहत्वपूर्ण सिद्धान्त है । वैशेषिक दर्शन इस व्यवहारिक जगत् की वस्तुगत सत्ता में विश्वास रखता है अतः जगत् में अनुभव होने वाली प्रत्येक वस्तु सत् है, यही उसकी आधारभूत स्थापना है । इसके अनन्तर ही समस्त जगत् को सात वर्गों एवं श्रेणियों में विभक्त किया गया है तथा ये सात वर्ग ही वैशेषिक दर्शन के सात पदार्थ को संज्ञा से अभिहित है । वैशेषिक दर्शन द्वारा स्वीकृत पदार्थों की संख्या छः (परवर्ती काल में सात) मानी गयी है–द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय एवं अभाव । जगत् की सभी ज्ञेय तथा अभिज्ञेय वस्तुओं का वर्गीकरण सप्तपदार्थों में हो जाता है । समानतन्त्र न्यायदर्शन की आचार्यों द्वारा भी वैशेषिक के सात पदार्थों को स्वीकृति प्रदान की गयी है । वस्तुतः न्याय के सोलह पदार्थों का अन्तर्भाव इन्हीं सप्तपदार्थों में हो जाता है इसीलिये न्याय–वैशेषिक दर्शन परम्परा में सात पदार्थों के विषय में भिन्न–भिन्न मत नहीं है । व्युत्पत्ति की दृष्टि से पदार्थ का लक्षण है–'पदस्य अर्थः' सामान्यतः पद से शब्द का ही बोध होता है तथा अर्थ की व्युत्पत्ति होती है– 'ऋच्छन्तीन्द्रियाणि यं सोऽर्थः' अर्थात् ऐसा कोई भी विषय जो इन्द्रिय ग्राह्य है वह अर्थ है अतः ऐसी सभी वस्तुएं जिन्हें कोई नाम दिया जाता है पदार्थ कहलाती है । सप्तपदार्थों में सर्वप्रथम पदार्थ द्रव्य कहा गया है । न्यायकन्दलीकार के अनुसार द्रव्य अन्य सभी पदार्थों का आश्रयभूत है, इसीलिये द्रव्य पदार्थ पर प्रथम विचार किया गया है–"आदौ द्रव्यस्योद्देशः सर्वाश्रयत्वेन प्राधान्यात्॥" [6]

वैशेषिक सूत्रकार कणाद ने द्रव्य का लक्षण इस प्रकार दिया है–"क्रियागुणवत् समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम् ॥" [7] अर्थात् जो क्रियाका आश्रय तथा गुणों का आश्रय एवं समवायिकारण है, वह द्रव्य कहलाता है । तर्कसंग्रह दीपिका के अनुसार द्रव्यत्व जातिवाला अथवा गुणवाला होना द्रव्य का सामान्य लक्षण है–"द्रव्यत्वजातिमत्त्वं गुणवत्त्वं वा

[6]न्या. क.,उद्देश प्रकरण, पृ. 17
[7]वै. सू. 1/1/15

द्रव्यसामान्यलक्षणम् ॥"[8] वैशेषिक दर्शन में नौ द्रव्य स्वीकार किये गये हैं–पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा व मन ।

"पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि ॥"[9]

"तत्र द्रव्याणि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्मामनांसि सामान्यविशेषसञ्ज्ञयोक्तानि नवैवेति । तद्व्यतिरेकेणान्यस्य सञ्ज्ञानभिधानात् ॥"[10]

"तत्र द्रव्याणि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि नवैव ॥"[11]

"क्षिप्तप्तेजोमरूद्व्योमकालदिग्देहिनो मनः ॥" [12]

नौ द्रव्यों में पृथिवी, जल, तेज, वायु कार्य रूप में अनित्य एवं परमाणु रूप में नित्य कहे गये हैं । आकाश, काल, दिक्, आत्मा एवं मन नित्य द्रव्य कहलाते हैं ।

पृथिवी द्रव्य

वैशेषिक दर्शन में द्रव्य विभाजन के अन्तर्गत सर्वप्रथम पृथिवी का उल्लेख है । इस पृथिवी की अवधारणा सूक्ष्मातिसूक्ष्म पार्थिव कणों से लेकर महत्पृथिवीपर्यन्त है । महर्षि कणाद ने रूप, रस, गन्ध तथा स्पर्श गुणों से युक्त द्रव्य को पृथिवी कहा है–"रूपरसगन्धस्पर्शवती पृथिवी ॥"[13] प्रशस्तपादभाष्य में कहा गया है–"पृथिवीत्वाभिसम्बन्धात् पृथिवी॥"[14]पृथिवीत्व रूप जातिविशेष के साथ समवाय सम्बन्ध से सम्बद्ध द्रव्य पृथिवी है । सभी द्रव्यों में ऐसा गुण अवश्य होता है जो उस द्रव्य को अन्य द्रव्यों से पृथक् करता है उस गुण को उस द्रव्य का विशेष गुण या असाधारण धर्म कहा जाता है । तर्कसंग्रह में अन्नम्भट्ट ने पृथिवी का लक्षण इस प्रकार दिया है–"तत्र गन्धवती पृथिवी । सा द्विविधा नित्याऽनित्या च । नित्या परमाणुरूपा । अनित्या कार्यरूपा । पुनस्त्रिविधा–शरीरेन्द्रियविषय भेदात् । शरीरमस्मदादीनाम् । इन्द्रियं गन्धग्राहकं घ्राणं नासाग्रवर्ति

[8]त.सं.दी., द्रव्य लक्षण प्रकरण, पृ. 15
[9]वै. सू. 1/1/5
[10]प्र. पा. भा., उद्देश प्रकरण, पृ. 3
[11]त.सं.,उद्देश प्रकरण पृ. 20
[12]न्या.सि.मु.,प्रत्यक्ष खण्ड, का. 2
[13]वै. सू. 2/1/1
[14]प्र.पा.भा., पृथिवी निरूपण प्रकरण पृ. 15

। विषयोमृत्पाषाणादिः ॥"[15] उन द्रव्यों में गन्धवती पृथिवी है । वह दो प्रकार की है–नित्या एवं अनित्या । नित्या पृथिवी परमाणु रूपा है अनित्या कार्य रूपा है । पुनः पृथिवी तीन प्रकार की है– शरीर, इन्द्रिय और विषय के भेद से । पार्थिव शरीर है । नासिका के अग्रभाग में स्थित गन्ध ग्रहण करने वाला घ्राण इन्द्रिय है । विषय मिट्टी, पाषाण आदि है ।

कणाद ने पृथिवी लक्षण क्रम में चार गुणों का उल्लेख किया है किन्तु प्रशस्तपादभाष्य में पृथिवी के चौदह गुणों का निर्देश किया है–

"रूपरसगन्धस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वगुरुत्वद्रवत्वसंस्कारवती॥" [16]

तर्कसंग्रह में अन्नम्भट्ट ने केवल गन्ध का ही उल्लेख किया है । इसका कारण यह है कि गन्ध ही एक ऐसा गुण है जो अन्य सारे गुणों का व्यावर्तक है ।

जल द्रव्य

नव द्रव्यों जल द्वितीय द्रव्य है । प्रशस्तपादभाष्य के अनुसार जलत्व रूप जातिविशेष के साथ समवाय सम्बन्ध से सम्बद्ध जल नामक द्रव्य होता है–"अप्त्वाभिसम्बन्धादापः ॥"[17] वैशेषिक सूत्र में जल का लक्षण इस प्रकार दिया है–"रूपरसस्पर्शवत्य आपो द्रवाः स्निग्धाः" [18]रूप, रस, स्पर्श वाला, स्निग्ध द्रव्य ही जल है ।

अन्नम्भट्ट ने तर्कसंग्रह में शीतस्पर्शवान् द्रव्य को ही जल कहा गया है–

"शीतस्पर्शवत्य आपः ता द्विविधाः । नित्या अनित्याश्च । नित्या परमाणुरूपाः, अनित्याः कार्यरूपाः । पुनस्त्रिविधाः शरीरेन्द्रियविषयभेदात् । शरीरं वरूणलोके । इन्द्रियं रसग्राहकं रसनं जिह्वाग्रवर्ति । विषयः सरित्समुद्रादिः ॥"[19]

पृथिवी द्रव्य की भांति जल के नित्य और अनित्य प्रकार है । परमाणुरूप जल नित्य होता है अर्थात् जल के परमाणु में रहने वाले गुण नित्य माने जाते हैं । अविभाज्य सूक्ष्मतम जलकण परमाणुजल कहलाता है । प्रशतपादभाष्य में जल को चतुर्दश गुणों से युक्त बताया है–

---

[15]त.सं.,द्रव्य लक्षण प्रकरण, पृ. 29
[16]प्र.पा.भा., पृथिवी निरूपण प्रकरण पृ. 15–16
[17]प्र.पा.भा.,जल निरूपण प्रकरण पृ. 20
[18]वै. सू. 2/1/2
[19]त. सं.,द्रव्य लक्षण प्रकरण, पृ 34

"रूपरसस्पर्शद्रवत्वस्नेहसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वगुरुत्वसंस्कारात्यः ॥"[20]

तेज द्रव्य

तेजत्व जाति के साथ साक्षात् समवाय सम्बन्ध से सम्बद्ध द्रव्य को वैशेषिक दर्शन में तैजस कहा जाता है–"तेजत्वाभिसम्बन्धात् तेजः"[21] सूत्रकार कणाद ने तेज द्रव्य का लक्षण इस प्रकार किया है–'तेजोरूपस्पर्शवत्"[22] जिसमें रूप (भास्वर शुक्ल) एवं (उष्ण) गुण रहते हैं, वही द्रव्य तेज है । अन्नम्भट्ट ने तर्कसंग्रह में उष्णस्पर्शयुक्त होना तेज द्रव्य का लक्षण बताया है– "उष्णस्पर्शवत्तेजः। तच्च द्विविधम् नित्यमनित्यञ्च । नित्यं परमाणुरूपम् । अनित्यं कार्यरूपम् । पुनस्त्रिविधम् शरीरेन्द्रियविषय भेदात् । शरीरमादित्यलोके । इन्द्रियं रूपग्राहकं चक्षुः कृष्णताराग्रवर्ति । विषयश्चतुर्विधो भौमदिव्यौदर्याकरजभेदात् । भौम वह्नयादिकम् । अबिन्धनं दिव्यं विद्युदादि । भुक्तस्य परिणामहेतुरौदर्यम् । आकरजं सुवर्णादि ॥"[23] उष्ण स्पर्शवाला तेज है । वह दो प्रकार का है । नित्य एवं अनित्य । नित्य परमाणु रूप तथा अनित्य कार्यरूप है । वह पुनः तीन प्रकार का है–शरीर, इन्द्रिय एवं विषय भेद से । शरीर आदित्य लोक में है । काली तारिका के अग्रभाग में रहने वाली तथा रूप को ग्रहण करने वाली चक्षु इन्द्रिय है । विषय चार प्रकार का है–भौम, दिव्य, औदर्य तथा आकरज । अग्नि आदि भौम है । जल इन्धन वाली विद्युत् दिव्य है । खाये हुए पदार्थ को पाचन का कारण औदर्य है सुवर्ण आदि आकरज है । तेज द्रव्य में निम्न एकादश गुण पाये जाते हैं–

"रूपस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वद्रवत्वसंस्कारवत् ॥"[24]

वायु द्रव्य

वायुत्व नामक जाति विशेष के साथ साक्षात् समवाय सम्बन्ध से सम्बद्ध द्रव्य वैशेषिक दर्शन में वायु कहा गया है–"वायुत्वाभिसम्बन्धाद्वायुः" [25] वैशेषिक सूत्रकार कणाद ने "स्पर्शवान्

---

[20]प्र.पा.भा., जल निरूपण प्रकरण पृ. 20
[21]प्र.पा.भा., तेज निरूपण प्रकरण, पृ. 22
[22]वै. सू. 2/1/3
[23]त. सं., द्रव्य लक्षण प्रकरण, पृ. 36
[24]प्र. पा. भा., तेज निरूपण प्रकरण पृ. 22
[25]प्र. पा. भा., वायु निरूपण प्रकरण पृ. 24

वायुः"[26]अर्थात् स्पर्शवाला वायु है । अन्नम्भट्ट ने तर्कसंग्रह में वायु का लक्षण एवं प्रभेद इस प्रकार बताया है–"उष्णस्पर्शवत्तेजः । तच्च द्विविधम् नित्यमनित्यञ्च । नित्यं परमाणुरूपम् । अनित्यं कार्यरूपम् । पुनस्त्रिविधम् । शरीरेन्द्रियविषयभेदात् ॥"[27] उष्ण स्पर्श तेज वाला है । वह दो प्रकार का है–नित्य एवं अनित्य । नित्य परमाणु रूप है तथा अनित्य कार्य रूप है । वायु द्रव्य में नौ गुण बताये गये हैं–"स्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वसंस्कारवान् ॥"[28] वैशेषिक दर्शन द्वारा स्वीकृत नौ द्रव्यों में से प्रथम चार अर्थात् पृथिवी, जल, तेज और वायु है । चारों द्रव्यों के अनित्य अवयव परमाणु हैं जबकि शेष आकाशादि पाचं द्रव्यों नित्य होने के कारण परमाणु नहीं है ।

आकाश द्रव्य

वैशेषिक दर्शन के द्रव्यों में आकाश नामक द्रव्य पाचवें स्थान पर आता है किन्तु यह पूर्वोक्त चारों द्रव्यों (पृथिवी, जल, तेज, वायु) से भिन्न है, यह एक विभु, नित्य, अखण्ड है । पृथिव्यादि की भांति इसका नित्य और अनित्य विभाजन संभव नहीं है । वैशेषिक दर्शन में आकाश की सिद्धि केवल शब्द गुण के आश्रयत्व हेतु ही की गयी है ।

"शब्दगुणकमाकाशम् तच्चैकं विभु नित्यञ्च ॥"[29]

आकाश पृथिवी आदि नित्य द्रव्यों की तरह न होकर एक है तथा एक होने के कारण ही शब्द सर्वत्र उपलब्ध होता है तथा यह आकाश विभु है । वैशेषिक दर्शन प्रतिपादित सृष्टि निरूपण में उत्पन्न हुए कार्य द्रव्यों के लिये किसी न किसी आधार की आवश्यकता होती है । यही आधारस्वरूप द्रव्य वैशेषिक दर्शन की पारिभाषिक शब्दावली में आकाश है ।

काल द्रव्य

वैशेषिक दर्शन में काल भी एक, पृथक्, स्वतन्त्र, नित्य एवं विभु द्रव्य है । उत्पत्ति प्रक्रिया में एक ऐसा तत्त्व मानना आवश्यक है जो सभी अन्य वस्तुओं का कालिक आधार हो । सूत्रकार कणाद के अनुसार नित्यों में न होने एवं अनित्यों में होने से स्पष्ट है कि जन्य कार्यों का कारण

---

[26]वै.सू. 2/1/4
[27]त. सं. द्रव्य लक्षण प्रकरण, पृ. 36
[28]प्र. पा. भा., वायु निरूपण प्रकरण, पृ. 24
[29]त. सं., द्रव्य लक्षण प्रकरण, पृ. 48

निमित्त ही काल है–"नित्येश्वभावादनित्येषु भावात् कारणे कालाख्येति ॥"[30] तर्कसंग्रहकार के अनुसार अतीत आदि व्यवहार का हेतु काल है वह एक, विभु तथा नित्य है–

"अतीतादिव्यवहारहेतुः कालः । स चैको विभुर्नित्यश्च ॥"[31]

दिक् द्रव्य

सामान्यतः दिशा को देशिक आधार या स्थानीय अधिकरण समझा जाता है जिसमें जगत् की सभी वस्तुएं अधिष्ठित है । प्रशस्तपादभाष्य के अनुसार दिशा का लक्षण इस प्रकार दिया है कि–"दिक् पूर्वापरादिप्रत्ययलिङ्गा ॥"[32]किसी मूर्त्त द्रव्य को अवधि मानकर उसकी अपेक्षा अन्य मूर्त्त द्रव्यों में पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण आदि प्रतीतियां जिसके द्वारा होती है वही दिशा है ।

आत्मा द्रव्य

वैशेषिक दर्शन का अष्टम द्रव्य है । आत्मा अहं प्रत्यय का विषय होने से अन्य सभी द्रव्यों से पृथक् एवं महत्वपूर्ण है । यही द्रव्य चैतन्य, चेतना या चितिशक्ति का द्योतक है । प्रशस्तपादभाष्य में बताया है–"आत्मत्वाभिसम्बन्धादात्मा ॥"[33]आत्मतत्त्व में समवेत ही आत्मा है । आत्मतत्त्व नामक जो सामान्य विशेष उससे सम्बद्ध होने के कारण ही आत्मा अन्य द्रव्यों से भिन्न है । तर्क संग्रह में "प्राच्यादिव्यवहारहेतुर्दिक् । सा चैका विभ्वी नित्या च ॥"[34] प्राची आदि व्यवहार के कारण को दिक् कहते हैं । वह एक, सर्वव्यापक एवं नित्य है ।

मन द्रव्य

वैशेषिक की नव द्रव्य परम्परा का अन्तिम द्रव्य है । यह आत्मा और इन्द्रिय के मध्य सम्पर्क की एक कड़ी है । बाह्येन्द्रिय के द्वारा होने वाली अनुभूति के साथ आन्तरिक अनुभूति को ग्रहण करने में भी यह सहायक होता है । महर्षि कणाद ने स्पष्ट किया है कि आत्मा, इन्द्रिय तथा अर्थ का सन्निकर्ष होने पर ज्ञान का भाव एवं अभाव होना मन का लक्षण है–

---

[30]वै. सू. 2/2/9
[31]त. सं., द्रव्य लक्षण प्रकरण, पृ. 49
[32]प्र.पा.भा., दिक् प्रकरण, पृ. 45
[33]प्र.पा.भा., आत्मा प्रकरण, पृ. 46
[34]त. सं.,द्रव्य लक्षण प्रकरण, पृ. 52

"आत्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षे ज्ञानस्य भावोऽभावश्च मनसो लिङ्गम् ॥"[35]

तर्कसंग्रह के अनुसार–"सुखाद्युपलब्धिसाधनमिन्द्रियं मनः । तच्च प्रत्यात्मनियतत्वादनन्तं परमाणुरूपं नित्यञ्च ॥"[36]

सुख–दुःख आदि की उपलब्धि के साधन इन्द्रिय मन है । वह प्रत्येक आत्मा में नियत होने के कारण अनन्त, परमाणुरूप तथा नित्य है ।

जगत् के मूल कारण के स्वरूप का विवेचनःपरमाणुवाद

भौतिक जगत् की रचना और प्रलय की प्रक्रिया न्याय–वैशेषिक की अनूठी है । ये सूक्ष्म परमाणुओं से इस विशाल जगत् की उत्पत्ति और उन्हीं में पुनः लय इस सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं । जगत् के सभी पदार्थ सावयव और उत्पत्ति–विनाशशील है, अतः परमाणु ही सृष्टि की उत्पत्ति और विनाश के मूलाधार है । यहां पदार्थ की उत्पत्ति का अर्थ परमाणुओं का संयोग है और विनाश का अर्थ है परमाणुओं के संयोग का विभाग । अनेककारणतावाद के समर्थक न्याय–वैशेषिक दर्शन के अनुसार समस्त ब्रह्माण्ड कार्यरूप है । वैशेषिक दर्शन में सप्तपदार्थ का विवेचन किया गया है–द्रव्य, गुण, कर्म. सामान्य, विशेष, समवाय तथा अभाव । द्रव्य, सामान्य, विशेष एवं समवाय चार नित्य पदार्थ हैं जिनमें से मूल कारण के रूप में केवल द्रव्य स्वीकृत है । जो नवधा विभक्त है–पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा, मन ये द्रव्य हैं । इनमें चार प्रथम (पृथिवी, जल, तेज, वायु) भौतिक द्रव्य है जिनके द्वारा जगत् की समस्त् भौतिक वस्तुओं की संरचना होती है । सूक्ष्मपरमाणु ही समवायिकारण रूप में संपूर्ण सृष्टि का आधार है । ये चार द्रव्य दो रूपों में मिलते हैं–नित्य तथा अनित्य । जगत् के नित्य पदार्थों आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन की न सृष्टि होती है न संहार । सृष्टि के उपादान कारण चारभूतों के परमाणु ही है–

"इहेदानीं चतुर्णां महाभूतानां सृष्टिसंहारविधिरुच्यते ॥"[37]

परमाणु अनन्त वृत्ताकार हैं जिसके लिये पारिभाषिक शब्द परिमण्डल का वैशेषिक में प्रयोग होता है । मन भी अणुरूप होने से परिमण्डल ही है । काल और दिक् परममहत् परिणाम वाले

[35]वै. सू. 3/2/1
[36]त. सं. द्रव्य लक्षण प्रकरण, पृ. 49
[37]प्र.पा.भा.,सृष्टि संहार प्रकरण, पृ. 29

और नित्य हैं । ये कार्य रूप नहीं है । आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन इन नित्य द्रव्यों को छोडक़र अन्य चार द्रव्यों की रचना और संहार का नाम ही क्रमशः सृष्टि और प्रलय है । पृथ्वी, जल, तेज, वायु द्रव्यों का विभाजन करते–करते वे इस अवस्था में पहुंच जाये कि आगे विभाजन संभव न हो तो उस अविभाज्य अंश को ही परमाणु कहते हैं । न्यायसूत्र में भी कहा गया है कि परमाणु वह सूक्ष्मतम परिणाम है, जिसका किसी भी स्थिति में आगे विभाजन संभव नहीं है– "परं वा त्रुटेः" ॥ [38] परमाणु विभाजन क्रिया की अन्तिम सीमा है अतः इसे अविभाज्य निरवय एवं नित्य कहा जाता है । दो परमाणुओं का प्रथम संयोग द्वयणुक तथा तीन द्वयणुकों का संयोग त्रसरेणु कहलाता है । परमाणुओ के संयोग से द्वयणुक, त्रयणुक आदि के क्रम से पृथ्वी, जल, तेज, वायु आदि चार महाभूतों की उत्पत्ति होती है ।

वैशेषिक दर्शन के अनुसार इस दृश्यमान भौतिक जगत् का अन्तिम, अविभाज्य, अतीन्द्रिय, अविनाश्य, अकारण, अवयवरहित तत्त्व ही वैशेषिक दर्शन में परमाणु संज्ञा से अभिहित है । परमाणु पद दो शब्दों से बना है–परम तथा अणु । इन दोनों पदों का तात्पर्य है–नितान्त छोटा अर्थात् जिसके अवयव सम्भव नहीं है, ऐसा सूक्ष्मातिसूक्ष्म, निरवयव, क्रियावान् तत्त्व को परमाणु कहा जाता है । परमाणु के परम–अणु परिणाम की वैशेषिक दर्शन में एक पारिभाषिक संज्ञा है–'परिमण्डल' जिसे वैशेषिक सूत्र में इस प्रकार बताया है–"नित्यं परिमण्डलम्"[39]अर्थात् यह पद परमाणु की नैसर्गिक परिस्थिति को परिलक्षित करता है । परिमण्डल ही 'पारिमाण्डल्य' कहा जाता है जिसे प्रशस्तपाद भाष्य में "अन्यत्र पारिमण्डल्यादिभ्यः" [40] परमाणु का यह परिमण्डल परिणाम सदा नित्य ही होता है । मण्डल का अर्थ गोलाकार होता है और गोलाकार वस्तु भी कभी–कभी एक विशेष कोने से देखने पर दीर्घ प्रतीत होती है;किन्तु परमाणु का यह वैशिष्टय है कि वह किसी भी दिशा से देखे जाने पर वह परिमण्डल ही प्रतीत होता है क्योंकि उसका कोई अवयव नहीं है । वैशेषिक दर्शन के अनुसार इस भौतिक जगत् के मूल उपादान कारण के रूप में स्वीकृत परमाणुओं की कुछ विशेषतायें इस प्रकार हैं–

- परमाणु नित्य एवं अविभाज्य है । [41]

---

[38]न्या.सूत्र 4/2/17

[39]वै.सू. 7/1/20

[40]प्र.पा.भा., साधर्म्य–वैधर्म्य प्रकरण पृ. 8

[41]वै. सू. 4/1/1

- परमाणु अतीन्द्रिय है क्योंकि उसका किसी भी बाह्य इन्द्रिय से प्रत्यक्ष सम्भव नहीं है । परमाणु का चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है, वैशेषिक सूत्र में बताया है– "महत्यनेकद्रव्यवत्त्वात् रूपाच्चोपलब्धिः ॥"[42]
- एक परमाणु स्वतः किसी अन्य कार्य की उत्पत्ति नहीं कर सकता, इससे उसका नित्यत्व प्रतिहत होगा ।
- परमाणु अविच्छेद्य अर्थात् अविनाश्य है–घट, पट आदि कार्यद्रव्यों का विनाश सम्भव है परन्तु उनके कारण द्रव्य परमाणुओं का विनाश सम्भव नहीं है क्योंकि वह नित्य है ।
- परमाणु की भांति उनमें रहने वाले गुण भी नित्य ही होते हैं, केवल पृथिवी–द्रव्य के परमाणुओं में रहने वाले रूपादि अनित्य होते हैं–"एतेन नित्येषु नित्यत्वमुक्तम् ॥"[43] अर्थात् ये गुण नित्य द्रव्यों में रहने पर नित्य होते हैं ।
- परमाणु इस भौतिक जगत् के अन्तिम उपादान कारण हैं–"ईश्वरश्चेत् जगतो निमित्तं जगतः साक्षादुपादानकारणं किमुक्तं पृथिव्यादि परमसूक्ष्मं परमाणुसंज्ञितं द्रव्यमिति ॥"[44]
- परमाणु सामुहिक रूप से और व्यष्टिगत रूप से अप्रत्यक्ष ही माने गये हैं ।
- स्थूल रूप से वैशेषिक दर्शन में परमाणु चार प्रकार के माने गये हैं–पार्थिव, जलीय, तैजस, वायवीय । पार्थिव आदि कार्यद्रव्यों में अनुभूयमानों गुण उनके परमाणुओं में भी स्वीकार किये गये हैं, क्योंकि कारण के गुण ही कार्य में पाये जाते हैं–"कारणभावात् कार्यभावः॥"[45]

वैशेषिक सूत्र में बताया गया है कि –"सदकारणवन्नित्यम्॥"[46] अर्थात् (सत्) भावरूप पदार्थ अकारणवत् जिसका कोई कारण न हो, नित्य है । समस्त दृश्यादृश्य कार्य जगत् पार्थिव आदि परमाणुओं का विकार है । यह भी प्रश्न उपस्थित होता है कि जगत् के मूल उपादान कारण कोई परमाणुरूप, द्रव्य हैं, इसमें क्या प्रमाण है ? इसके समाधान में कहा गया है ।

"तस्य कार्यं लिङ्गम् ॥"[47]

---

[42]वै. सू. 4/1/6
[43]वही 7/1/3
[44]न्या. वा. 4/1/21, पृ. 460–461
[45]वै. सू. 4/1/3
[46]वही 4/1/1
[47]वही 4/1/2

उत्पन्न हुआ विद्यमान जगत् उसके मूलकारण परमाणु के अस्तित्व में प्रमाण है । कोई कार्य अपने उपादान कारण के बिना उत्पन्न हो ही नहीं सकता । घटादि कार्य अपने मृतिका आदि उपादान कारणों से उत्पन्न होते हैं । इस प्रकार कार्य जगत् अपने उपादानकारण पार्थिवादि परमाणुओं के अस्तित्व में प्रमाण है मूल कारण के सद्भाव को अधिक पुष्ट करते हुए कहा गया है–"कारणभावात् कार्यभावः ॥" [48] अर्थात् कारण के होने से कार्य होता है । कारण जब सदूप में विद्यमान रहता है, तभी उससे किसी कार्य के उत्पन्न होने की संभावना बनी रहती है । वैशेषिक परम्परा के विभिन्न विद्वानों के द्वारा परमाणु की सिद्धि के युक्ति सम्मत प्रयास किये गये हैं जिन्हें आगम प्रमाण, अनुमान प्रमाण द्वारा बताया गया है । श्वेताश्वतरोपनिषद् के एक मन्त्र की व्याख्या के माध्यम से उदयनाचार्य ने यह सिद्ध किया है कि ईश्वर द्वारा जीवों के धर्माधर्म के अनुसार परमाणुओं के संयोग से भौतिक जगत् की सृष्टि की जाती है–"तमिमर्थमागमः संवदति, विसंवदति तु परेषां विचारम्–

"विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् ।

सम्बाहुभ्यां धमति सम्पतैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥"

.....षष्ठेन परमाणुरूपप्रधानाधिष्ठेयत्वं, ते हि गतिशीलत्वात् पतत्रव्यपदेशाः पतन्तीति ॥"[49]

परमाणु के नित्य एवं अतीन्द्रिय तत्त्व होने के कारण लौकिक प्रत्यक्ष की संभावना न होने से परमाणु की सिद्धि अनुमान प्रमाण से की गयी है । परमाणु पद परम तथा अणु से बना है जो नितान्त छोटा अर्थात् जिसके अवयव सम्भव नहीं हैं । सर्वाधिक छोटे परिणाम वाले द्रव्यों को परमाणु तथा बड़े परिणाम वाले द्रव्य को परममहत् कहते हैं । ये दोनों इन्द्रियातीत एवं अनुमेय है ।

इन परमाणुओं में संख्या, परिमाण और द्रवत्वादि भी भूतों के समान होते हैं । इनमें भूतों के रूप, रस, गन्ध और स्पर्श गुणों के उत्पादन की क्षमता होती है । सृष्टि की आरम्भ में जीवात्माओं के अदृष्ट के कारण ईश्वरेच्छा से इन परमाणुओं में गति होती है जिससे वे मिलकर द्वयणुक, त्रयणुक और चतुर्णुक के रूप में संग्रहीत होते चले जाते हैं । ये सभी द्वयणुक पर्यन्त

[48]वै. सू. 4/1/3

[49]न्या. कु.स्तवक 5 का. 5, पृ. 479

सूक्ष्म ही होते हैं । त्रयणुक बनने पर दिखाई देते हैं । इसी क्रम से पदार्थ के अवयवों का सृजन और उनका संयोग होते–होते स्थूल सृष्टि बन जाती है ।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु चतुर्विध परमाणुओं के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है । इनकी कुछ विशिष्ट विशेषताएं भी है जो इस प्रकार है–

- पार्थिव परमाणु– पार्थिव परमाणुओं में पाए जाने वाले रूप, रस, गन्ध, स्पर्श गुण पाये जाते हैं किन्तु वे नित्य नहीं हैं । "पृथिव्यादिरूपरसगन्धस्पर्शा द्रव्यानित्यत्वादनित्याश्च ॥" [50]वे पाक संयोग से ही उत्पन्न होते हैं तथा पाक प्रक्रिया से परिवर्तित भी होते हैं– "कारणगुणपूर्वकाः पृथिव्यां पाकजाः"[51] ये गुण पार्थिव परमाणुओं में अनुद्भूत रहते हैं ।
- जलीय परमाणु–जलीय परमाणुओं में रूप, रस एवं स्पर्श गुण नित्य पाये जाते हैं । जलीय परमाणुओं के गुण अपाकज होते हैं ।
- तैजस परमाणु– तैजस परमाणुओं में रूप एवं स्पर्श गुण नित्य नित्य होते हैं ।
- वायवीय परमाणु– वायवीय परमाणुओं में केवल स्पर्श नामक गुण पाया जाता है ।

इसी विधि से अग्नि, जल और पृथिवी की क्रमशः रचना होती है और इन्द्रियों सहित शरीर बनता है । परमाणुओं के गुण द्वयणुक आदि में उसी प्रकार आ जाते हैं जैसे धागे के गुण वस्त्र में प्रविष्ट हो जाते हैं । "ततः पुनः प्राणिनां भोगभूतये महेश्वरसिसृक्षानन्तरं सर्वात्मगतवृत्तिलब्धा दृष्टापेक्षेभ्यस्तत्संयोगेभ्यःपवनपरमाणुषु कर्मोत्पतौ तेषां परस्परसंयोगेभ्यो द्वयणुकादिप्रक्रमेण महान् वायुः समुत्पन्नो नभसि दोधूयमानस्तिष्ठति तदनन्तरं तस्मिन्नेव वायावाप्येभ्यः परमाणुभ्यातेनैव क्रमेण महान् सलिलनिधिरुत्पन्नः पोप्लूयमानस्तिष्ठति तदनन्तरं तस्मिन्नेव पार्थिवेभ्यः परमाणुभ्यो महापृथिवी संहताऽवतिष्ठते तदनन्तरं महोदधौ तैजसेभ्योऽणुभ्यो द्वयणुकादिप्रकरमेणोत्पन्नो महांस्तेजोराशिः केनचिदनभिभूतत्वादेदीप्यमानस्तिषठति ॥"[52]अर्थात् प्राणिमात्र के सुखदुःखानुभव रूप भृग की सिद्धि के लिये परमात्मा की जगत् को उत्पन्न करने इच्छा के पश्चात् सम्पूर्ण जीवात्माओं में वर्तमान उत्पादक व्यापार करने में समर्थ जीवात्मा तथा महाभूत द्रव्यों के परमाणुओं के उत्पादक व्यापार करने में समर्थ जीवात्मा तथा महाभूत द्रव्यों के परमाणुओं के

[50]वै. सू. 7/1/2
[51]वही 7/1/6
[52]प्र.पा.भा., सृष्टि संहार प्रकरण, पृ. 33

उत्पादक संयोगों से द्वयणुक, त्रयणुक इत्यादि क्रम से उत्पन्न हुआ, वायु रूप कार्य द्रव्य आकाश में कम्पित होता रहता है ।

चार महाभूतों के उत्पन्न हो जाने पर महेश्वर के संकल्प (अभिध्यान) मात्र से पार्थिव परमाणुओं सहित तैजस परमाणुओं से महद् अण्ड (ब्रह्माण्ड) उत्पन्न होता है । उसमें चार मुख कमल वाले सब लोकों के पितामह ब्रह्माजी को सब लोकों सहित उत्पन्न करके महेश्वर प्रजाओं की रचना में नियुक्त करते हैं । महेश्वर द्वारा नियुक्त वह ब्रह्मा अत्यधिक ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य से सम्पन्न होते हुए सब प्राणियों के कर्मफल को जानकर कर्म के अनुसार ज्ञान, भोग तथा आयु वाले अपने मानसपुत्र प्रजापतियों को मनु, देव, ऋषि तथा पितृगणों को मुख बाहु, उरू तथा पाद से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शुद्र चार वर्णों को और नानाप्रकार के प्राणियों को रचकर उन्हें पूर्वजन्म के संस्कार के अनुरूप धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य से युक्त करते हैं । यहां प्रश्न उपस्थित होता है कि परमाणुओं के संयोग से जो सृष्टि बनती है उसका क्या प्रयोजन है तथा कौन उसमें निमित्त बनता है । सृष्टि का प्रमुख प्रयोजन बताते हुए कहा गया है को प्राणियों के भोग की प्राप्ति के लिये । भूतसृष्टि का समवायिकारण परमाणु है, असमवायिकारण परमाणुओं का संयोग और निमित्त कारण महेश्वर की सिसृक्षा अर्थात् सृष्टि करने की इच्छा अतः ईश्वर जीवों के भोग के लिये सृष्टि रचना की इच्छा करता है ये भोग मुख्य रूप से जीवों के अदृष्ट कर्मों पर आधारित हैं । पुरुष जो कुछ जीवन में करता है पुण्य या पाप, उससे अदृष्ट निर्मित होता है उस अदृष्ट का फल ही भोग है । इसी भोग की जीव को प्राप्ति कराने के लिये ईश्वर सृष्टि रचना की इच्छा करता है । सूक्ष्म परमाणु जगत् के उपादान कारण हैं उन्हीं से पृथ्वी आदि तत्त्वों और लोक–लोकान्तर तथा प्राणियों के शरीर की रचना होती है । चार प्रकार के परमाणुओं से पृथिवी, जल, तेज और वायु जैसे मूल तत्त्वों की उत्पत्ति होती हैं । प्रलयकाल में समस्त जगत् परमाणु अवस्था में होता है । विश्व की रचना प्रारम्भ होने पर सर्वप्रथम वायु परमाणुओं में संसर्ग से गति उत्पन्न होती हैं ।

"सर्गकाले च वयवीयेष्वदृष्टापेक्षं कर्मोत्पद्यते । तत् कर्म स्वाश्रयमणुण्वन्तरेण संयुनक्ति ॥"[53]

जीवों में ही पाप–पुण्य रूप अदृष्ट का वास रहता है– "एवं समुत्पन्नेषु चतुर्षु महाभूतेषु महेश्वरस्याभिध्यानमात्रात् तैजसेभ्योऽणुभ्यः पार्थिवपरमाणुसहितेभ्यो महदण्डपारभ्यते ।

[53]ब्र. सू. शा. भा. 2/2/12

तस्मिंश्चतुर्वदनकमलं सर्वलोकपितामह ब्रह्माणं सकलभुवनसहितमुत्पाद्यं प्रजासर्गे विनियुङ्क्ते । स च महेश्वरेण विनियुक्तो..... रूपैर्धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्य संयोजयतीति॥"[54]

न्याय–वैशेषिक दर्शन के अनुसार ईश्वर अपनी इच्छा से सृष्टि की उत्पत्ति नहीं करता बल्कि मनुष्यों के अदृष्ट के अनुरूप एक परमाणु का अन्य परमाणु के साथ संयोग स्थापित कर सृष्टि का संपूर्ण कार्य संपादित करता है ।

"महेश्वरेच्छा निमित्तकारणमात्मानामणुभिः संयोगाश्चासमवायिकारणमस्तु समवायिन इत्यणुषु कर्माण्यत्पद्यन्ते ॥" [55]

संहार प्रक्रिया

सृष्टि का शाश्वत् नियम है कि उत्पन्न हुई वस्तु का नाश अवश्यम्भावी है । उत्पत्ति एवं विनाश की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है । जीवों को विश्राम देने की इच्छा से महेश्वर में संजिहीर्षा (प्रलय की इच्छा) होती है । प्रलय का अर्थ है– अदृष्ट के व्यापार का रुक जाना । अदृष्ट का व्यापार के रुक जाने पर परमेश्वर की इच्छा से आत्मा और परमात्मा के संयोग से परमाणुओं में कर्म होता है तथा उस कार्य से विभाग होता है एवं परमाणुओं के संयोग का नाश हो जाता है । परमाणुओं के संयोग की निवृत्ति होने पर शरीर तथा इन्द्रियों का परमाणु पर्यन्त विभाग हो जाता है अर्थात् सभी जन्य कार्य अपने–अपने मूल कारण में विलीन हो जाते हैं, उस स्थिति में केवल परमाणुओं का ही अस्तित्व रहता है । प्रलयकाल की समाप्ति के अनन्तर उन्हीं परमाणुओं से पुनःएक नूतन सृष्टि का उदय होता है । उपर्युक्त प्रक्रम के अनुसार परमाणुओं का संयोग नाश होने पर पृथ्वी आदि का नाश हो जाता है, किन्तु पूर्व तत्त्व के नाश के समय अग्रिम तत्त्व विद्यमान रहता है, जैसे पृथ्वी का नाश होने पर जलादि तत्त्व शेष रहते हैं अन्त में अव्यक्त आकाश मात्र शेष रहता है यही प्रलयावस्था है ।

महेश्वर की इच्छा के साथ सब आत्माओं के धर्माधर्म का व्यापार रूक जाने पर महेश्वर की इच्छा तथा आत्मा और परमाणुओ के संयोग से उत्पन्न कर्मों से शरीर और इन्द्रिय के कारणभूत परमाणुओं का विभाग होता है । परमाणुओं के संयोग से कर्मों से शरीर और इन्द्रिय के कारणभूत परमाणुओं का विभाग होता जाता है–

---

[54]प्र. पा. भा., सृष्टि संहार प्रकरण, पृ. 34

[55]प्र.पा.भा, सृष्टि संहार प्रकरण, पृ. 30., न्या. वा. 4/1/29

"ब्राह्मेण मानेन वर्षशतान्ते वर्तमानस्य ब्रह्माणोऽपवर्गेकाले संसारखिन्नानां सर्वप्राणिनां निशि विश्रामार्थं सकलभुवनपतेर्महेश्वरस्य संजिहीर्षासमकालं शरीरेन्द्रियमह भूतोपनिबन्धकानां सर्वात्मगतानामदृष्टाणां वृत्तिनिरोधे सति महेश्वरेच्छात्माणु संयोगकर्मभ्यः शरीरेन्द्रियं कारणानुविभागेभ्यस्तत्संयोग निवृत्तौ तेषामापरमाण्वन्तो विनाशः ॥" [56] तदनन्तर सृष्टि अपने परमाणुओं में विलीन हो जाती है –"तथा पृथिव्युदकज्वनपवनानामपि महाभूतानामामनेनैवक्रमेणोत्तरस्मिन्नुत्तरस्मिन् सति पूर्वस्य–पूर्वस्य विनाशः । ततः प्रविभक्ताः परमाणवोऽवतिष्ठते धर्माधर्मसंस्कारानुबिद्धाश्चात्मानस् तावन्तमेव कालम् ॥"[57]

अन्नम्भट्ट ने तर्कदीपिका में संहार–क्रम को स्पष्ट करते हुए कहा है–जब ईश्वर को उत्पन्न कार्य द्रव्यों के संहार की इच्छा होती है तब परमाणुओं में क्रिया से दो परमाणुओं का विभाग होने पर द्वयणुक का नाश हो जाता है । तदनन्तर द्वयणुकों में विभागोत्पादक क्रिया होने से त्र्यणुक नाश होता है । तत्पश्चात् त्रयणुकों में विभागोत्पादक क्रिया होने पर चतुरणुक नाश को प्राप्त होता है । इस प्रकार क्रमशः सभी कार्य द्रव्यों का अपने कारण के नाश से नाश हो जाता है ।[58]

अन्नम्भट्ट ने तर्कदीपिका में सृष्टि प्रलय की सिद्धि हेतु ऋग्वैदिक श्रुति को उद्धृत किया है– "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वकल्पयत् । दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ इत्यादि श्रुतिः प्रमाणम् ॥"[59] धाता (विधाता–परमात्मा) ने सूर्य एवं चन्द्रमा को आकाश एवं अन्तरिक्ष एवं स्वः लोक को पहले की ही तरह निर्मित किया । सृष्टिप्रलय सद्भावे मन्त्र के पूर्वपद में प्रयुक्त यथापूर्वम् से यह स्पष्टतया प्रतिपादित होता है कि वर्तमान सृष्टि से पूर्व किसी भी सृष्टि का अस्तित्व रहा होगा, जिसकी अनुकृति पर विधाता के द्वारा इस सृष्टि की निर्मिति की गयी । इस प्रकार न्याय–वैशेषिक का यह स्थिर सिद्धान्त है ।

न्याय–वैशेषिक की प्राणियों के धर्माधर्म अदृष्ट की दार्शनिक कल्पना बड़ी विलक्षण है । इन परमाणुओं के चिन्तन में अदृष्ट की कल्पना भी विशिष्ट कारणगुण सम्पन्न है । जिस प्रकार अयस्कान्तमणि की ओर सुई की गति स्वाभाविक होती है, उसी तरह कर्म फल की गति अदृष्ट की ओर होती है ।

---

[56]प्र. पा. भा., सृष्टि संहार प्रकरण, पृ. 30
[57]वही,
[58]त. सं. दी., सृष्टि संहार क्रम, पृ. 50–51
[59]ऋ. 10/191/3

"मणिगमनं सूच्यभिसर्पणमित्यदृष्ट कारणकम् ॥" [60]

मणि का चलना, सुई का सरकना ऐसा कर्म अदृष्ट कारण से होता है ।

"वृक्षाभिसर्पणमित्यदृष्टकारितम् ॥" [61]

वृक्षों का सब ओर होता हुआ फैलाव, अदृष्ट कारण से होता है । इस प्रकार जब प्राणियों के कर्म फलोन्मुख होते हैं और अदृष्ट प्रेरक बन जाते हैं तब ईश्वर की सृष्टि करने की इच्छा से आत्मा तथा परमाणु का संयोग उत्पन्न होता है और क्रमशः सृष्टि का आविर्भाव होता है ।

त्रिविध कारणों का स्वरूप

न्याय–वैशेषिक दर्शन के अनुसार कारण तीन प्रकार का माना गया है ।

1) समवायिकारण
2) असमवायिकारण
3) निमित्त कारण

न्याय–वैशेषिक दर्शन में कार्य–कारण का विवेचन मुख्य प्रतिपाद्य विषय है अतः कारण किसे कहते हैं ? अथवा कारण का स्वरूप क्या है ? यह जानना आवश्यक है । सामान्यतः जो कार्य का उत्पादक हो वह कारण कहलाता है अर्थात् उत्पादक पदार्थ कारण है और उत्पाद्य पदार्थ कार्य । जिससे कोई वस्तु उत्पन्न हो वह कारण और जो उत्पन्न हो वह कार्य है । कारण के विषय में यह भी कहा गया है कि "यस्मादुत्पदुद्यतेतत्कारणम्"जिससे उत्पन्न हो, वह कारण परन्तु इतने मात्र से कारण स्पष्ट नहीं होता है अतः उत्पद्यमान (उत्पन्न) होने वाली वस्तु से पहले विद्यमान रहे वह कारण है अतः 'कार्यपूर्ववृर्तित्वम् कारणत्वम्' अथवा 'कार्यपूर्ववृत्ति कारणम्' यह कारण की परिभाषा बनती है परन्तु इसका भी बाध सम्भव है क्योंकि कोई घटना होने के पूर्व विद्यमान भी पदार्थ उस घटना (कार्य) के कारण नहीं होते हैं । जैसे– मन्दिर में शंख बजने के तत्काल अनन्तर एक फल वृक्ष से गिरता है परन्तु यहां शंख बजना फल गिरने का कारण नहीं है अतः कार्योत्पादक से अव्यवहित पूर्वक्षण में नियम से अव्यभिचरित रूप से विद्यमान रहता है 'कार्यनियतपूर्ववृत्ति कारणम्'। यहां पर भी कारण की परिभाषा में न्यूनता देखने

[60]वै.सू. 5/1/15
[61]वही 5/2/7

पर कि घड़ा बनाते समय कुम्हार के पिता एवं गधा भी विद्यमान रहता है अतः ऐसे पदार्थ कार्य से नियतपूर्ववर्ती होते हुए भी कार्य के कारण नहीं होते हैं इस न्यूनता को दूर करने के लिये परिभाषा में एक और पद का समावेश किया गया है 'अन्यथासिद्धिशून्यत्व' अथवा 'अनन्यथासिद्ध' अर्थात् कार्योत्पत्ति से पूर्व जो पदार्थ नियमपूर्वक विद्यमान हो, वह कारण है पर उसकी विद्यमानता अन्यथासिद्ध न होनी चाहिए । अन्यथा पद का अर्थ है– अन्य प्रकार से विद्यमानता का होना । कार्य से पहले किसी पदार्थ की सत्ता उस कार्य के कारणरूप से ही होनी चाहिए, अन्य किसी प्रकार या निमित्त रूप से नहीं । यहां कुम्हार के पिता तथा गधा दोनों की उपस्थिति घटोत्पत्ति के कारणरूप से नहीं है अतः कार्योत्पत्ति के अव्यवहित पूर्वक्षण में ऐसे पदार्थों की विद्यमानता अन्यथासिद्ध है, कारण रूप से नहीं है– "अनन्यथासिद्धनियतपूर्वभावित्वं कारणत्वम् । अनन्यथासिद्धनियतपश्चात्भावित्वं कार्यत्वम् ॥"[62] अन्यथासिद्ध न होते हुए जो पदार्थ नियमपूर्वक कार्योत्पत्ति के अव्यवहित पूर्वक्षण में विद्यमान रहता है, वही पदार्थ उस कार्य के प्रति कारण माना जाता है । समस्त ब्रह्माण्ड में कोई ऐसा पदार्थ या तत्त्व नहीं है, जो न किसी का कारण हो न कार्य हो । इस आधार पर पदार्थों के तीन वर्ग बनते हैं ।

1) केवल कारण होते हैं, कार्य नहीं । जैसे–पृथ्वी, जल, तेज, वायु के मूल परमाणु । ये पृथिव्यादि कार्यों के केवल कारण होते हैं, कार्य किसी के नहीं ।
2) दूसरे वे पदार्थ है जो केवल कार्य हैं, वे आगे अन्य द्रव्य को उत्पन्न नहीं करते हैं नष्ट हो जाते हैं ।
3) ऐसे पदार्थ जो कारण भी है और कार्य भी है । कारण तीन प्रकार का है ।

तर्कभाषा में कारण का लक्षण करते हुए कहा गया है–"यस्य कार्यात् पूर्वभावो नियतोऽनन्यथासिद्धश्च तत्कारणम् यथा तन्तुवेमादिकं पटस्य कारणम् ॥"[63] जिसकी सत्ता बिना कार्य सिद्धि सम्भव न हो, वह कारण कहलाता है । यहां कारण में दो पद नियतपूर्वभाव एवं अनन्यथा सिद्ध महत्वपूर्ण है । नियतपूर्वभाव का आशय है कि जिसका कार्य के पहले स्थित होना निश्चित हो जैसे–घट के निर्माण में कुम्भकार एवं दण्ड का होना पहले से निश्चित है । कारण के लक्षण में अनन्यथा सिद्ध पद इसलिये जोड़ा गया है कि घटादि के निर्माण कार्य में

[62]त.भा.,कारण निरूपण पृ. 22
[63] वही

कुम्भकार एवं उसके दण्ड के अतिरिक्त गर्दभ आदि का ही सम्बन्ध रहता है क्योंकि कुम्भकार तालाब से गर्दभ पर मिट्टी लाता है, किन्तु गर्दभ का नियतपूर्ववर्तित्व होने पर भी उसे अनन्यथासिद्ध नहीं कह जा सकता, क्योंकि गर्दभ के अतिरिक्त कुम्भकार घोड़े पर भी मिट्टी ला सकता है । इस प्रकार गधा अथवा घोड़ा अनन्यथा सिद्ध न होकर अन्यथा सिद्ध की कोटि में आते हैं । न्यायदर्शन में घटादिनिर्माण कार्य से सम्बन्धित पांच अन्यथा सिद्ध दण्डत्व, दण्डरूप, आकाश, कुम्भकार का पिता तथा गर्दभ है । ये पांच नियतपूर्व तो है, किन्तु अनन्यथासिद्ध न होकर घटनिर्माण में नितान्त उपयोगी नहीं है अतः अन्यथासिद्ध है । तर्कसंग्रह में कारण एवं कार्य की परिभाषा को इस प्रकार दिया गया है–"कार्यनियतपूर्ववृत्ति कारणम्" [64] अर्थात् कार्य के पूर्व नियत रूप से रहने वाला कारण है तथा "कार्य प्रागभावप्रतियोगी"[65] अर्थात् प्रागभाव का प्रतियोगी कार्य है ।

कारण तीन प्रकार का है–"कारण त्रिविधम्–समवाय्यसमवायिनिमित्तभेदात् ॥" समवायी, असमवायी, निमित्त के भेद से कारण तीन प्रकार है ।

- **समवायिकारण**– जिसमें समवाय सम्बन्ध से कार्य उत्पन्न होता है, उसे समवायिकारण कहते हैं–"यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणम् । तथा तन्तवः पटस्य, पटश्च स्वगतरूपादेः ॥"[66] यहां लक्षण 'यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते' में समवेत शब्द का अर्थ है– समवाय सम्बन्ध से सम्बद्ध तन्तु पट के समवायी कारण हैं तथा पट तन्तुओं में रहता है । तन्तुसमवायी है तथा पट समवेत है क्योंकि तन्तुओं में पट समवाय सम्बन्ध से रहता है अर्थात् कार्य कारण में समवेत रहता है अतः जिसमें कार्य समवेत हो वह समवायि कारण है । समवायिकारण से भिन्न कारणों के साथ कार्य का समवाय सम्बन्ध न होकर संयोग सम्बन्ध होता है जैसे तुरी, वेमा आदि समवायिकारण का स्थान सर्वदा द्रव्य में ही होता है ।

  समवायिकारण को ही उपादान कारण या भौतिक कारण भी कहते हैं । यह वह भौतिक कारण है जिससे किसे कार्य का निष्पादन होता है । उदाहरणतः धागा कपड़े के लिये और मिट्टी घड़े के लिये उपादान कारण है । दो अयुतसिद्ध पदार्थों का सम्बन्ध ही समवायिकारण होता है । जहां दो पदार्थों का सम्बन्ध ही समवायिकारण होता है । जहां

[64]त. सं.,कारण प्रकरण, पृ. 83
[65] वही पृ. 83
[66]वही, पृ. 89

दो पदार्थों में दोनों का अस्तित्व एक दूसरे पर आश्रित हो, उन्हें अयुतसिद्ध कहते हैं । अवयव–अवयवी, गुण–गुणी, जाति–व्यक्ति, क्रिया–क्रियावान् और विशेष एवं नित्य द्रव्य ये पाचों अयुतसिद्ध कहलाते हैं । इनका समबन्ध समवाय है । जैसे–एक धागा अवयव है और उससे बने हुए कपड़े अवयवी है । ये दोनों ही अयुतसिद्ध हैं अतः इनका सम्बन्ध समवाय है ।

❖ **असमवायिकारण** – कार्य अथवा कारण के साथ एक अर्थ में रहता हुआ जो पदार्थ उस कार्य का कारण होता है वह उस कार्य का असमवायिकारण कहा जाता है । कार्य अथवा कारण इनको बतलाने में असमवायिकारण को दो प्रकार निम्नरूप में कहे जाते हैं । कार्य के साथ एक अर्थ में समवेत हुआ जो पदार्थ उस कार्य का कारण रहता है, वह पदार्थ उस कार्य का असमवायिकारण माना जाता है –"कार्येन कारणेन वा सहैकस्मिन्नर्थे समवेतत्त्वे सति यत्कारणं तद् समवायिकारणम् यथा तन्तुसंयोगः पटस्य, तन्तुरूपं पटरूपस्य ॥" अर्थात् जो कार्य एवं कारण के साथ एक ही विषय में समवेत हो । तन्तुसंयोग पट का असमवायिकारण है । तन्तु एवं तन्तुसंयोग दोनों नियतवृत्ति होने के कारण पट के कारण माने जाते हैं । कारणरूप में रहते हैं क्योंकि पट न तो तन्तु के बिना बन सकता है, न ही तन्तुसंयोग के बिना । तन्तु पट का समवायिकारण है और उसमें रहने वाला धर्म संयोग है, इसलिये तन्तुसंयोग पट का असमवायिकारण है ।

न्यायसिद्धान्तमुक्तावली में असमवायिकारण की परिभाषा में 'प्रत्यासत्ति' इस नवीन शब्द का प्रयोग किया है– "तत्र समवायिकारणे आसन्नं प्रत्यासन्नं कारणं द्वितीयमसमवायिकारणमित्यर्थः ॥"[67] अर्थात् जो समवायिकारण में प्रत्यासन्न अर्थात् समवायि सम्बन्ध से साथ रहता हो वह असमवायिकारण हो यहां प्रत्यासत्ति शब्द का अर्थ है एक अधिकरण में दो वस्तुओं का साथ रहना । इसके दो भेद है–

1. कार्यैकार्थप्रत्यासत्ति 2. कारणैकार्थप्रत्यासत्ति ।

कारण एवं कार्य के साथ एक ही विषय में समवेत हो । असमवायिकारण समवायिकारण का समवेत है । समवायिकारण द्रव्य ही होता है किन्तु असमवायिकारण गुण–कर्म भी होते हैं ।

---

[67]न्या. सि.मु.,का. 18, पृ. 70

❖ **निमित्त कारण** – निमित्त कारण पूर्वोक्त दोनों कारणों से भिन्न है–"तदुभयभिन्नं कारणं निमित्तकारणम् यथा तुरीवेमादिकं पटस्य ॥"[68] जैसे घट का समवायिकारण मृतिका है, मृदवयवों का परस्पर संयोग असमवायिकारण है । इनके अतिरिक्त कुम्हार, दण्ड, चक्र,सूत्र, काल आदि सब कारण निमित्तकारण है । पट आदि कार्यों में तन्तु समवायि, तन्तुसंयोग असमवायिकारण, जुलाहा, तुरी, वेमा, करघा आदि निमित्त कारण है । तर्कभाषाकार ने निमित्त कारण को बताते हुए कहा है–"यन्न समवायिकारणं नाप्यसमवायिकारणम् अथ च कारणं तन्निमित्त कारणम् यथा वेमादिकं पटस्य निमित्तकारणम् ॥"[69] अर्थात् जो न तो समवायिकारण है । न तो असमवायिकारण है किन्तु जो कारण अवश्य है वही निमित्त कारण है । तर्कसंग्रह के अनुसार निमित्त कारणों में भी दो भेद किये गये हैं–सामान्य और विशिष्ट । सामान्य (साधारण) निमित्त वे होते हैं जिनकी अपेक्षा प्रत्येक कार्य की उत्पत्ति में होती है । इनकी संख्या नौ हैं–बुद्धि, इच्छा, कृति, कार्य का प्रागभाव, जीवात्मा का अदृष्ट, धर्म, अधर्म, काल, दिक् तथा प्रतिबन्धक का अभाव । असाधारण (विशिष्ट) निमित्त वे होते हैं जो किसी कार्य के उत्पादन में आवश्यक हो जैसे– घट के लिये कुम्भकार, दण्ड, चक्र आदि ।

असत्कार्यवाद

असत्कार्यवाद के मुख्य जनक न्याय–वैशेषिक दर्शन है । कारण एवं कार्य समस्या पर विभिन्न भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों में (सांख्य,वेदान्त, बौद्ध, न्याय–वैशेषिक) में तर्कपूर्ण समाधान प्रस्तुत किया गया है । माधवाचार्य ने सर्वदर्शनसंग्रह में इनका उल्लेख करते हुए बताया है– "इहकार्यकारणभावे चतुर्धा विप्रतिपत्तिः प्रसरति । असतः सञ्जायत इति सौगताः संगिरन्ते । नैयायिकादयः सतोऽसञ्जायत इति । वेदान्तिनः सतो विवर्तः कार्यजातं न तु वस्तुसदिति । सांख्यपुनः सतः सञ्जायत इति ॥"[70]

- बौद्ध (शून्यवाद)
- वेदान्त (विवर्तवाद)
- सांख्य (सत्कार्यवाद)

---

[68]त. सं.,कारण प्रकरण, पृ. 89
[69]त.भा.,कारण निरूपण, पृ. 59
[70]स.द.सं.पृ. 320–21

- न्याय–वैशेषिक (आरम्भवाद)

यहां बौद्ध असत् से सत् की उत्पत्ति मानते है । वेदान्त कारण को सत् तथा कार्य को असत् मानते हैं उनके अनुसार कार्यरूप जगत् वास्तविक नहीं है । सांख्य सत्कार्यवाद को मानते हैं जिसे प्रकृति परिणामवाद भी कहा जाता है । सत्कार्यवादियों की दृष्टि में कार्य उत्पत्ति से पूर्व सत् होता है उसकी सत्ता या तो कारणरूप होती है या कारण के अन्दर अवस्थित होती है । इसकी मुख्य विशेषता इस प्रकार है–

- यह एक ही मूल कारण को स्वीकर करता है ।
- कार्य–कारण का वास्तविक अभेद मानता है ।
- नित्य कारण परिणामी होकर ही रहता है तथा प्रवृत्त होता है ।
- कार्य मात्र का अपने–अपने कारण में तथा सब कार्यों का मूल कारण में तीनों काल में अस्तित्त्व मानता है ।

कणाद (वैशेषिक दर्शन के प्रवर्तक) तथा न्यायदर्शन का पक्ष आरम्भवाद है अर्थात् परमाणु सृष्टिगत पदार्थों के समवायिकारण है और उन्हें आरम्भ करते हैं परन्तु वे उनसे भिन्न रहते हैं । बौद्ध संघादवाद को मानते है अर्थात् उपादानकारण ही कार्यरूप में संघटित हो जाता है । यह संघात प्रति क्षण नया होता है । अपना नाश करके ही उपादान कारण कार्योत्पादक हो जाता है । विज्ञानवादियों के अनुसार विज्ञान रूप आत्मा ही कार्य रूप में प्रतीत होती है । सांख्य और पातञ्जल उपादान कारण के तात्विक अन्यथा भाव को कार्य मानते हैं । वेदान्ती कारण के अन्यथाभाव को कार्य मान लेते हैं ।

न्याय–वैशेषिक के कार्य–कारण सिद्धान्त को असत्कार्यवाद कहते हैं । यह सिद्धान्त सांख्य के सत्कार्यवाद का विरोधात्मक है । इस सिद्धान्त के अनुसार कार्य की सत्ता उत्पत्ति के पूर्व कारण में विद्यमान नहीं रहती है । इसी कारण कार्य को प्रागभाव प्रतियोगि कहा जाता है अतः असत्कार्यवाद का अभिप्राय है कि कार्य उत्पन्न होने से पूर्व असत् होता है तथा कार्य का अस्तित्व कारण में नहीं है । इस सिद्धान्त को आरम्भवाद भी कहा जाता है क्योंकि यह कार्य को एक नवीन आरम्भ मानता है । असत्कार्यवाद की निम्न विशेषताएं है–

- यह परस्पर भिन्न अनन्त मूलकारणों को स्वीकार करता है ।
- यह कार्य एवं कारण का आत्यन्तिक भेद मानता है ।

- यह नित्य अथवा अनित्य कारण को कार्योत्पत्ति में अपरिणामी मानता है ।
- उत्पत्ति के पूर्व कार्य असत् होता है ।

न्याय–वैशेषिक दर्शन में असत्कार्यवाद की सिद्धि हेतु निम्न युक्तियां दी है ।

1) यदि कारण एवं कार्य अभिन्न वस्तुएं है अर्थात् कार्य और कारण में भेद नहीं है तो कार्य को उत्पन्न करने के लिये कारण–व्यापार की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए परन्तु कारण व्यापार की आवश्यकता अवश्य ही होती है इसलिये कार्य और कारण भिन्न वस्तुएं हैं ।
2) कार्य एवं कारण दोनों भिन्न प्रयोजनों को सिद्ध करते हैं जैसे जो कार्य पट से लिया जा सकता है, वह तन्तु से नहीं लिया जा सकता । इससे सिद्ध होता है कि दोनों भिन्न–भिन्न हैं । असत् कार्यवाद के अनुसार कार्य और कारण भिन्न होने पर भी एक निश्चित कार्य उत्पन्न होता है जैसे– मिट्टी से घट का निर्माण, तन्तुओं से पट का निर्माण, स्वर्णादि धातुओं से आभूषण बनाये जाते हैं । यह संभव नहीं है कि दूध से घट का निर्माण होगा अतः असत्कार्यवाद के अनुसार कारण एवं कार्य भिन्न–भिन्न वस्तुएं होते हुए भी उनका अनन्य सम्बन्ध है ।
3) कार्य उत्पत्ति के पूर्व कारण में विद्यमान नहीं रहता क्योंकि यदि वह उत्पत्ति के पूर्व कारण में स्थित रहता तो निमित्त कारण यथा कुम्भकार आदि की आवश्यकता ही नहीं पड़ती । कार्य स्वयं ही उत्पन्न हो जाता ।
4) कार्य उत्पत्ति के पूर्व कारण में असत् रहता है क्योंकि उत्पत्ति के पूर्व कारण में विद्यमान रहने से फिर यह नहीं कहा जा सकता है कि अमुक कार्य की उत्पत्ति हुई ।
5) कार्य की सत्ता कारण में नहीं है क्योंकि तब कारण एवं कार्य में भेद करना सर्वथा दुष्कर है । लोक में कार्य एवं कारण में भेद देखा जाता है ।
6) कार्य–कारण में अन्तर्भूत नहीं है । यदि कार्य कारण में अन्तर्भूत होता तो दोनों के लिये एक ही शब्द का प्रयोग किया जाता ।
7) कार्य कारण से अभिन्न नहीं है यदि ऐसा होता तो दोनों से एक प्रयोजन की पूर्ति हो जाती किन्तु ऐसा नहीं होता है, मिट्टी के घड़े में पानी एकत्रित किया जा सकता है न कि कारण रूप मिट्टी में ।

कार्य को एक नया आरम्भ मानने वाले असत्कार्यवाद की निम्न विशेषताएं बतायी है–

- यह परस्पर भिन्न अनन्त मूलकारणों को स्वीकार करता है ।
- यह कार्य एवं कारण का आत्यन्तिक भेद मानता है ।
- यह नित्य अथवा अनित्य कारण को कार्योत्पत्ति का अपरिणामी मानता है ।
- उत्पत्ति के पूर्व कार्य असत् होता है ।

असत्कार्यवाद के सम्बन्ध में समस्या उठती है कि कार्य की उत्पत्ति के पश्चात् कारण का क्या होता है ? क्या कारण नष्ट हो जाता है या बना रहता है ? न्याय–वैशेषिक दर्शन के अनुसार कारण नष्ट नहीं होता अपितु कार्य के साथ कारण भी बना रहता है, यथा तन्तुओं से पट का निर्माण किया जाता है तो पट में तन्तु बने रहते हैं और तन्तुओं में एक नया द्रव्य पट आ जाता है । वैशेषिक दर्शन में कहा गया है कि तन्तुओं पट की उत्पत्ति हो सकता है न कि तन्तुओं से पट की । यहां तन्तु और पट पृथक्–पृथक् द्रव्य है ।

पारम्परिक भौतिकी में कार्य–कारण सिद्धान्त

मानव की सदैव अपने चारों और व्याप्त विश्व के बारे में जानने की जिज्ञासा रही है । अनादि काल से ही रात्रि के आकाश में चमकने वाले खगोलीय पिण्ड मानव मन को सम्मोहित करते हैं । दिन–रात की सतत पुनरावृत्ति, ऋतुओं का वार्षिक चक्रग्रहण, ज्वार–भाटा, ज्वालामुखी, इन्द्र धनुष सदैव ही कौतूहल के स्त्रोत रहे हैं । संसार के पदार्थों में आश्चर्य चकित करने वाले तथा जीवन एवं व्यवहार की विस्मयकारी विभिन्नताएं है । एक प्रश्न यह भी है कि ब्रह्माण्ड का मूल कारण क्या है ? कार्य है ? एवं उनका स्वरूप तथा सम्बन्ध क्या है ? इत्यादि विषय मानव को उद्वेलित करने वाले, गूढ. एवं रहस्यात्मक है । वर्तमान समय में विज्ञान की सर्वागींण प्रतिष्ठा है । विज्ञान में भी आज ब्रह्माण्ड के मूल कारण एवं उसकी उत्पत्ति विषयक प्रश्नों पर जिज्ञासा बनी हुई है । अग्रेंजी भाषा के साईंस (Science) का उद्भव लैटिन भाषा के शब्द सिंटिया (Scientia) से हुआ है, जिसका अर्थ है–जानना ।

"Science, any of various intellectual activitiesconcerned with the physical world and its phenomena and entailing unbiased observation and systematic

experimentation.In general, a science invalves a parsuit of knowledge covering general truths or the operational of fundmental laws."[71]

विज्ञान किसी भी वस्तु के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिये समुचित साधनों का उपयोग कर अनुभूत सिद्धान्तों का उपयोग कर अनुभूत सिद्धान्तों को सर्वसमक्ष उपस्थित कर देता हैं अतः विज्ञान के निष्कर्ष निश्चित एवं पूर्णतया स्पष्ट स्वीकार किये जाते हैं । विज्ञान मुख्यतः जड़ प्रकृति में संघटित होने वाली क्रिया–प्रतिक्रिया को विधिपूर्वक जानने, परीक्षण करने तथा प्रयोग करने के ऊपर ध्यान देता है । विज्ञान की विभिन्न शाखाएं हैं यथा भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान आदि प्रकृति से सम्बन्धित इस विज्ञान–क्षेत्र की एक शाखा के रूप में 'भौतिक शास्त्र' अथवा भौतिकी प्रसिद्ध है । भौतिकी को अग्रेंजी में'Physics' कहते हैं जो ग्रीक भाषा के एक शब्द से व्युत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है– प्रकृति । इसका तुल्य संस्कृत शब्द 'भौतिकी' है जिसका उपयोग भौतिक जगत् के अध्ययन से सम्बन्धित है । भौतिकी का वर्णन प्रकृति के मूलभूत नियमों का अध्ययन तथा विभिन्न प्राकृतिक परिघटनाओं के माध्यम से किया जाता है ।

भौतिकी ऊर्जा–विषयक विज्ञान है; जिसमें ऊर्जा के रूपान्तरण तथा उसके द्रव्य सम्बन्धों की विवेचना की जाती है । इसके द्वारा प्राकृत जगत् तथा उसकी अन्तः क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है । स्थान, काल, गति, द्रव्य, विद्युत, प्रकाश, ऊष्मा तथा ध्वनि इत्यादि अनेक विषय इस भौतिक विज्ञान की परिधि के अन्तर्गत आते हैं । विज्ञान के इस प्रमुख विभाग के सिद्धान्त समग्र वैज्ञानिक जगत् में मान्य हैं तथा विज्ञान के प्रत्येक अंश में लागू होते हैं । [72]

शास्त्रीय भौतिकी का उद्भव एवं विकास

ब्रह्माण्ड के मूल स्वरूप तथा कारण के विषय में भौतिक विज्ञान के दो प्रमुख आयामों का अध्ययन किया जाता है ।

1) शास्त्रीय भौतिकी (Classical Physics)
2) आधुनिक भौतिकी (Modern Physics)

[71] The New Encyclopedia Britannia, Vo-10, p.552
[72] भौतिकी पृ.2

भौतिकी के मूल रूप में दो प्रभाव क्षेत्र है– स्थूल एवं सूक्ष्म । स्थूल प्रभाव क्षेत्र में प्रयोगशाला, पार्थिव तथा खगोलीय स्तर की परिघटनायें सम्मिलित होती हैं । जबकि सूक्ष्म प्रभाव क्षेत्र के अन्तर्गत परमाणवीय,आणविक तथा नाभिक परिघटनायें आती है । शास्त्रीय भौतिकी के अन्तर्गत मुख्य रूप से स्थूल परिघटनाओं पर विचार किया जाता है जिसमें यान्त्रिकी, वैद्युतगतिकी प्रकाशिनी तथा ऊष्मागतिकी जैसे विषय सम्मिलित होते हैं । [73]

पारम्परिक भौतिकी विज्ञान की वह शाखा जिसमें द्रव्य और ऊर्जा दो अलग–अलग अवधारणाएं है । प्रारम्भिक रूप से यह न्यूटन के गति के नियम एवं मैक्सवेल के विद्युतचुम्बकीय विकिरण सिद्धान्त पर आधारित है । द्रव्यमान संरक्षण का नियम, ऊर्जा सरंक्षण और संवेग संरक्षण का नियम भी चिरसम्मत भौतिकी में महत्वपूर्ण है । इसके अनुसार द्रव्यमान और ऊर्जा को ना ही बनाया जा सकता है और ना ही नष्ट किया जा सकता है और केवल बाह्य असन्तुलित बल आरोपित करके ही संवेग को परिवर्तित किया जा सकता है । [74]

शास्त्रीय भौतिकी के अन्तर्गत डेमोक्रिटस व डाल्टन के परमाणु सिद्धान्त (Atomic Theory), न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण (Gravition Law), गति सम्बन्धी नियम,(Law of Motion) एवं लाप्लास के द्वारा प्रदत्त नीहारिका (Nebular Hypothesis) इन विशिष्ट वैज्ञानिकों के सिद्धान्तों की है जिनके द्वारा जगत् के कार्य–कारण सम्बन्ध एवं सिद्धान्त के विषय में मत प्रकट किये जाते हैं ।

शास्त्रीय भौतिकी के कार्य–कारण विषयक सिद्धान्त

विश्व की उत्पत्ति तथा संचालन जिस शाश्वत् नियम से हुई है, ऋग्वेद में उसे ऋत सिद्धान्त की संज्ञा दी गयी है । वेदों के उपरान्त ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् एवं वेदाङ्गों में भी मत उपस्थापित किये गये हैं । इसी प्रकार विज्ञान में भी विभिन्न सिद्धान्तों के माध्यम से कार्य–कारण के स्वरूप का ज्ञान होता है । शास्त्रीय भौतिकी में वैदिक एवं औपनिषदिक विचारधारा के समान ब्रह्माण्डके मूल में एक कारण को नहीं माना गया है अपितु मानवतावाद को प्रधानता दी गयी है तथा स्वीकार किया गया है कि मनुष्य अपना भाग्य स्वयं निर्माण करता है, ईश्वर नहीं ।

---

[73] भौतिकी, पृ. 3

[74] https://hi.wikipedia.org/s/6fuu

डेमोक्रिटस के सिद्धान्त

डेमोक्रेटस (460–370 ई. पू.) ग्रीक के एक महान् दार्शनिक के रूप में विवेचित है जिनको परमाणु सिद्धान्त के जनक के रूप में स्वीकार किया जाता है । जगत् की रचना के सम्बन्ध में परमाणुओं की मुख्य भूमिका को स्वीकार किया जाता हैं । समस्त द्रव्य तथा पदार्थ परमाणुओं से निर्मित होते हैं जो ठोस, अविभाज्य, एवं अन्तिम ईकाई है । डेमोक्रिटस द्वारा दिये गये परमाणु सिद्धान्तों को निम्न बिन्दुओं द्वारा जाना जा सकता है ।

- समग्र संसार का प्रत्येक पदार्थ अनेक सूक्ष्म अंशों से निर्मित होते हैं, उनको परमाणु (Atom) कहा जाता है ।
- परमाणुओं की बीच शून्य स्थान रहता है ।
- परमाणु भौतिक रूप से अविभाज्य है ।
- परमाणुओं का विनाश सम्भव नहीं है ।
- संसार में जो कुछ भी परिवर्तन दिखाई दे रहा है वह सब कुछ इन अत्यन्त सूक्ष्म परमाणुओं की गति के कारण ही संघटित होता है ।
- ब्रह्माण्ड में अनन्त संख्यक परमाणु विद्यमान है एवं अनेक प्रकार के है जो अपने आकार एवं आकृति से भिन्न– भिन्न होते हैं ।

जान डाल्टन का परमाणु सिद्धान्त

जान डाल्टन ने पदार्थ की रचना सम्बन्धी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जो 'डाल्टन के परमाणु सिद्धान्त' के नाम से प्रचलित है । डाल्टन ने द्रव्यों की प्रकृति के बारे में एक आधारभूत सिद्धान्त प्रस्तुत किया । ग्रीक दार्शनिकों द्वारा द्रव्यों के सूक्ष्मतम अविभाज्य कण, जिसे परमाणु नाम दिया गया था उसे डाल्टन ने भी परमाणु नाम दिया । डाल्टन का यह सिद्धान्त रासायनिक संयोजन के नियम पर आधारित था । डाल्टन के परमाणु सिद्धान्त ने द्रव्यमान के संरक्षण एवं निश्चित अनुपात के नियम की युक्ति संगत व्याख्या की । डाल्टन के परमाणु सिद्धान्त के अनुसार सभी द्रव्य चाहे तत्त्व, यौगिक या मिश्रण हो, सूक्ष्म कणों बने होते हैं जिन्हें परमाणु कहा जाता हैं ।

- सभी द्रव्य परमाणुओं से बने होते हैं ।

- परमाणु अविभाज्य सूक्ष्मतम कण होते हैं जो रासायनिक अभिक्रिया में न तो सृजित होते हैं और न ही उनका विनाश होता है ।
- किसी भी दिये गये तत्त्व के सभी परमाणुओं का द्रव्यमान एवं रासायनिक गुणधर्म भिन्न–भिन्न होते हैं ।
- भिन्न–भिन्न तत्त्वों के परमाणुओं के द्रव्यमान एवं रासायनिक गुणधर्म भिन्न–भिन्न होते हैं
- भिन्न–भिन्न तत्त्वों के परमाणु परस्पर छोटीपूर्ण संख्या के अनुपात में संयोग कर यौगिक नियमित करते हैं ।
- किसी भी यौगिक में परमाणुओं की सापेक्ष संख्या एवं प्रकार निश्चित होते हैं ।
- एक रासायनिक प्रतिक्रिया परमाणुओं की एक पुनर्व्यवस्था है ।

न्यूटन के सिद्धान्त (Newton Theory) अंग्रेज वैज्ञानिक सर आइजक न्यूटन विज्ञान के जगत् में एक महान् गणितज्ञ, भौतिक वैज्ञानिक, ज्योतिर्विज्ञानी एवं दार्शनिक रूप में प्रतिष्ठित हैं । 1687 में प्रकाशित उनकी कृति "Philosophiae Naturalis-principia Mathematica" में गति के नियमों (Law of motion) तथा गुरुत्वाकर्षण नियम (Law of Gravition) दोनों व्याख्या की गयी, जो सृष्टि विज्ञान के दो महत्वपूर्ण सिद्धान्त स्वीकृत किये गये हैं ।

गति सम्बन्धी नियम– न्यूटन के गति के नियम किसी वस्तु पर प्रयुक्त बल एवं उस वस्तु के मध्य सम्बन्ध की व्याख्या करते हैं । ये तीनों भौतिक नियम चिरसम्मत याम्त्रिकी के आधार है ।

प्रथम नियम–प्रत्येक पिण्ड तब तक अपनी विरामावस्था अथवा सरल रेखा में एक समान गति की अवस्था में रहता है जब तक कोई बाह्य बल उसे अन्यथा व्यवहार करने के लिये विवश नहीं करता है इसे जड़त्व का नियम भी कहा जाता है ।

द्वितीय नियम–किसी भी पिण्ड की संवेग परिवर्तन की दर लगाये बल के समानुपाती होती है । और उसकी दिशा वही होती है जो बल की होती है ।

तृतीय नियम–प्रत्येक क्रिया की सदैव बराबर एवं विपरीत प्रतिक्रिया होती है । [75]

गुरुत्वाकर्षण सम्बन्धी नियम– गुरुत्वाकर्षण पदार्थ द्वारा एक दूसरे की ओर आकृष्ट करने की प्रवृत्ति है । न्यूटन ने अपने मौलिक अन्वेषणों के आधार पर यह प्रतिपादित किया कि केवल

[75] http://hi.wikipedia.org/s/32t

पृथ्वी ही नहीं अपितु विश्व का प्रत्येक कण दूसरे कण को अपनी ओर आकर्षित करता है । दो कणों के मध्य कार्य करने वाला आकर्षण बल उन कणों की संहतियों (Mass) के गुणनफल का प्रत्यक्ष समानुपाती तथा उनके बीच की दूरी के वर्ग का व्युत्क्रमानुपाती होता है । कणों के बीच कार्य करने वाले पारस्परिक आकर्षण को गुरुत्वाकर्षण तथा उससे उत्पन्न बल को गुरुत्वाकर्षण बल कहा जाता है । न्यूटन द्वारा प्रतिपादित उपर्युक्त नियम गुरुत्वाकर्षण नियम के रूप में प्रसिद्ध है ।[76] न्यूटन के मतानुसार विश्व की अवस्थिति त्रि–आयामीय अवकाश पर है । जिसमें समस्त भौतिक घटना संघटित होती है । न्यूटन की दृष्टि में सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने पदार्थों के निर्माण के लिये अलग–अलग आकार के कठोर तथा अभेद्य कणों का निर्माण किया, वे सतत गतिवान् गतिशीलता को प्राप्त हुआ एवं अपरिवर्तनीय नियमों के द्वारा एक यन्त्र की भांति चल रहा है ।

लाप्लास की निहारिका सम्बन्धी परिकल्पना

पियरी साइमन, मार्की दी लाप्लास एक विशिष्ट फ्रांसीसी गणितज्ञ तथा खगोलशास्त्री थे, जिनका कार्य मुख्य रूप से गणितीय खगोल शास्त्र एवं सांख्यिकी के विकास के लिये केन्द्रित था उन्होनें पांच भागों से युक्त अपने वृहद् ग्रन्थ में पूर्ववती वैज्ञानिकों के मतों को संग्रहीत कर उसमें स्वकीय विस्तृत मत संयोजित कर विवेचन प्रस्तुत किया है । लाप्लास द्वारा प्रदत्त तथा विकसित सौरमण्डल की सृष्टि सम्बन्धी निहारिका परिकल्पना प्रख्यात है ।

निहारिका सम्बन्धी परिकल्पना सर्वप्रथम ईमानुएल स्विडेन द्वारा प्रस्तावित की गयी एवं ईमानुएल काण्ट ने इसका सम्वर्धन किया था । लाप्लास ने उक्त नीहारिका सम्बन्धी मन्तव्य को पूर्ण रूप से विकसित कर एक सिद्धान्त के रूप में स्थापित किया । लाप्लास के द्वारा दिये गये इस सिद्धान्त के अनुसार सौरमण्डल एक उत्तप्त गैस के गोलाकार पिण्ड से उद्भूत हुआ । वह गैस पिण्ड अपने केन्द्र के जरिये अक्ष के चारों ओर घूर्णन कर रहा था । जब उत्तप्त गैस शीतल अवस्था को प्राप्त हुई तब वह पिण्ड संकुचित होने लगा तथा बाहरी किनारे से उत्तरोत्तर वलयाकार भाग टूटकर अलग होने लगा । धीरे–धीरे वे वलये शीतल होने लगे तथा अन्त में

[76] An introduction to Machanics, p.80-81

ग्रहों के रूप में संघटित हो गये । उक्त पिण्ड का केन्द्र भाग सूर्य के रूप में परिणमित हो गया एवं उस सूर्य के चतुः पार्श्व में बाकी समस्त ग्रह घूमने लगे । [77]

शास्त्रीय भौतिकी एवं न्याय वैशेषिक में समानता

ऋषि परम्परा के पश्चात् दार्शनिक जगत् में भी भौतिक जगत् की उत्पत्ति एवं उसके मूल कारण के विषय में विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों द्वारा गंभीर चिन्तन किया गया तथा सिद्धान्त स्थिर किये । उन सिद्धान्तों में से वैशेषिक दर्शन द्वारा प्रवर्तित परमाणुवाद सृष्टि के मूल कारण विषयक एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है जिसके अनुसार इस भौतिक जगत् का मूल कारण परमाणु है ।

"तस्य कार्यं लिङ्गम्" ॥" [78]

उत्पन्न हुआ विद्यमान जगत् उसके मूलकारण परमाणु के अस्तित्व में प्रमाण है । कोई कार्य अपने उपादान कारण के बिना उत्पन्न हो ही नहीं सकता है ।

न्याय वैशेषिक दर्शन की भांति शास्त्रीय भौतिकी में ब्रह्माण्ड का मूल कारण परमाणुओं को माना गया है । पारम्परिक भौतिकी के प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन ने कार्टिजियन मैकेनिज्म (Cartesian machanism) अर्थात् पाश्चात्य दार्शनिक एवं गणितज्ञ रेने देकार्त (Rene Descartes) के mind-matter Dualism के सिद्धान्त का समर्थन किया । पारम्परिक भौतिकी में निम्न सिद्धान्तों को स्वीकृत किया गया ।

- प्रत्येक पदार्थ की रचना परमाणुओं से मिलकर हुई है ।
- प्रत्येक परमाणु स्वतन्त्र, अविभाज्य तथा पदार्थ की सबसे छोटी ईकाई है ।
- एक परमाणु का दूसरे परमाणु से कोई सम्बन्ध नहीं है ।
- परमाणु नैसर्गिक रूप से असम्बद्ध हैं ।

17 वीं शताब्दी के दार्शनिक रेनेडेकार्ट ने पदार्थ को मन (mind) तथा द्रव्य (matter) दो भागों में विभाजित करते हुए चेतन (mind) तथा जड़ (matter) के रूप में स्वीकार किया ।

[77] Geography, unit-2,chapter-2 , p. 14-15
[78] वै. सू. 4/1/2

"Seventeenth century in the philosophy of Rene Descartes who based his view of nature on a fundamental division into two separate and independent realms; that of mind (res cogitans) and that of matter (res extensa)." [79]

न्याय–वैशेषिक दर्शन एवं शास्त्रीय भौतिकी के सिद्धान्तों में मुख्य समानता का विषय परमाणुवाद है । कणाद ने वैशेषिक दर्शन में परमाणुवाद का जो स्वरूप प्रस्तुत किया है वही शास्त्रीय भौतिकी में द्रष्टव्य है । दोनों में ही अनेक कारणवाद को स्वीकार किया है । न्याय–वैशेषिक के अनुसार सूक्ष्म परमाणु ही सृष्टि की उत्पत्ति के मूलाधार है । परमाणुओं से ही इस विशाल जगत् की उत्पत्ति एवं पुनः इसी में लय होना इस सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है । वैशेषिक दर्शन के आचार्य प्रशस्तपाद द्वारा रचित प्रशस्तपादभाष्य में सृष्टि के उपादान कारण के रूप में चारभूतों के परमाणु ही है ।

"इहेदानीं चतुर्णां महाभूतानां सृष्टिसंहारविधिरुच्यते ॥" [80]

परमाणु अनन्त वृत्ताकार हैं । आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन नित्य पदार्थों की सृष्टि एवं संहार नहीं होता है । पृथ्वी, जल, तेज एवं वायु नामक द्रव्यों के परमाणुओं से ही सृष्टि संभव है । परमाणु को अन्तिम एवं अविभाज्य नित्य स्वरूप में स्वीकार किया गया है क्योंकि किसी भी द्रव्य का विभाजन करते हुए एक ऐसी अवस्था जहां आगे विभाजन संभव न हो उस सत्ता को परमाणु संज्ञा से अभिहित किया गया है । न्याय सूत्र में परमाणु के विषय में कहा गया है–

"परं वा त्रुटेः ॥" [81]

परमाणु विभाजन क्रिया की अन्तिम सीमा है अतः इसे अविभाज्य निरवयव एवं नित्य कहा जाता है । ब्रह्माण्ड के मूल कारण के विषय में यही मत शास्त्रीय भौतिकी में स्वीकार किया गया है । शास्त्रीय भौतिकी के दार्शनिक डेमोक्रिटस एवं डाल्टन के परमाणु सिद्धान्त पूर्णतः न्याय–वैशेषिक के परमाणुवाद से साम्य प्रतीत होते हैं । डेमोक्रिटस एवं डाल्टन के परमाणु सिद्धान्त के अन्तर्गत समस्त पदार्थों की निर्मिति परमाणु से ही मानी गयी है तथा परमाणु को अन्तिम अविभाज्य सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है । न्याय–वैशेषिक के परमाणुवाद एवं शास्त्रीय भौतिकी के परमाणु सिद्धान्त में निम्न समानता दृष्टिगोचर होती है ।

---

[79] Capra, Fritjof, The Tao of Physics, p. 27
[80] प्र.पा.भा., सृष्टि संहार प्रकरण, पृ.29
[81] न्या.सू. 4/2/17

1) ब्रह्माण्ड का प्रत्येक पदार्थ सूक्ष्म परमाणुओं से निर्मित होता है ।
2) परमाणु अविभाज्य सूक्ष्मतम कण है ।
3) परमाणुओं का सृजन एवं विनाश असम्भव है ।
4) ब्रह्माण्ड का प्रत्येक परिवर्तन परमाणुओं की गति पर ही केन्द्रित होता है ।
5) ब्रह्माण्ड में अनन्त संख्यक परमाणु विद्यमान है ।

इस प्रकार न्याय–वैशेषिक एवं शास्त्रीय भौतिकी में अनेककारणवाद को स्वीकार किया गया है ।

वैशेषिक कर्म प्रक्रिया में प्रतिपादित संस्कार के तीन भेद (वेग, भावना, स्थितिस्थापक) में से वेग का निरूपण न्यूटन के प्रसिद्ध तीन गति के नियमों से सर्वथा संगति रखते हैं ।

क) प्रथम कर्म नियम–न्यूटन प्रतिपादित नियम यह है कि प्रत्येक पिण्ड तब तक विश्राम दशा में रहता है जब तक कोई अन्य शक्ति या तत्त्व उसकी गति को प्रेरित न करें । स्पष्टतः यह सिद्धान्त वैशेषिक दर्शन के कर्म एवं तदन्तर्गत वेग संस्कार के सर्वथा सदृश है । सिद्धान्तमतानुसार वेग भी कर्म के किसी निमित्तविशेष से ही उत्पन्न होता है ।

ख) द्वितीय कर्म नियम–कर्म की गति अपने प्रेरक शक्ति के अनुपात में ही होती है तथा उस प्रेरक की सीधी दिशा में ही होती है । यह नियम भी वेग की परिमापकत्व सिद्धि में साधनरूप ही है । वेग प्रयत्नमूलक होता है तथा जब तक कर्मरत रहता है, तब तक एक ही दिशा में कर्मरत रहता है ।

ग) तृतीय कर्म नियम–प्रत्येक क्रिया का सदा एक सदृश विघातक या प्रतिक्रिया होती है अथवा अन्य शब्दों में दो पिण्डों की परस्पर गति सदा समबल एव विरोधी दिशाओं में होती है यह तो स्पष्ट ही है कि जिस दिशा में कार्य होते हैं, कर्म उनकी विपरीत दिशा में होतें हैं जैसे–नौका पर जाने, भूतल पर चलने, वृक्ष पर चढ़ने, पक्षियों के उड़ने में तात्पर्य यह है कि कार्य के लिये की गयी क्रिया की विपरीत क्रिया ही वस्तु में कर्म गमनादि उत्पन्न करती है । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि न्यूटन के प्रसिद्ध कर्म नियम वैशेषिक दर्शन की कर्म प्रक्रिया से तत्त्वतः भिन्न

नहीं है । इस प्रकार वैशेषिकाभिमत तृतीय पदार्थ कर्म के उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि न्याय–वैशेषिक दर्शन की मान्यताएं विज्ञान से भी समर्थित है । [82]

शास्त्रीय भौतिकी विचारधारा का वर्तमान में प्रभाव

विज्ञान का इतिहास हजारों वर्ष पुराना है, परन्तु विज्ञान का व्यापक विकास अठारहवीं शताब्दी की औद्योगिक क्रान्ति से हुआ । औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप नित्य नये आविष्कार हुए जिससे वाष्प युग, विद्युत युग, अणुयुग तथा कम्प्यूटर का प्रादूर्भाव हुआ । वैज्ञानिक अनुसंधानों से मनुष्य सैकड़ों–हजारों मील दूर बैठकर प्रक्षेपास्त्रों द्वारा किसी भी शहर, महानगर एवं देश तक को ध्वस्त करने में सक्षम है । नवीन अनुसंधानों को आधार बनाकर ही मनुष्य प्रकृति पर विजय प्राप्त करने में प्रयासरत है । विज्ञान के इस युग में मनुष्य महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया । अरस्तु के मतानुसार यह माना गया है कि पृथ्वी जगत् का केन्द्र स्थल है, जगत् का निर्माण पृथ्वी के लिये ही हुआ था । पृथ्वी का स्वामी मनुष्य सृष्टि का सबसे महत्वपूर्ण जीवधारी है । इस समय हुए पुनर्जागरण का केन्द्र बिन्दु भी मनुष्य रहा जिससे यह स्वीकार किया गया कि मनुष्य जो कुछ करने का निश्चय कर ले वह कर सकता है । शास्त्रीय भौतिकी विचारधारा के प्रमुख दार्शनिक देकार्त ने बताया कि सभी प्राणी यंत्रवत् है । मनुष्य के अंगों का संचालन उसकी आत्मा और मस्तिष्क द्वारा होता है । विश्व का संचालन भी प्राकृतिक नियमानुसार होता है और वे नियम प्रथम संचालन के पश्चात् स्व–संचालित रूप से वे विश्व को संचालित कर रहे हैं ।

द्वैतवादी विचारधारा का विकास

पारम्परिक भौतिकी में जिस दार्शनिक चिन्तन प्रणाली का विकास हुआ उसमें पदार्थ और चेतना को अलग–अलग स्वीकार किया गया जिससे द्वैतवादी विचारधारा का उद्भव हुआ जो रेनेडेकार्ट के चिन्तन का मूलाधार थी । डेकार्ट ने प्रकृति के प्रति अपने दृष्टिकोण का आधार चेतना और पदार्थ की दो स्वतंत्र इकाईयों को बनाया । इस विभाजन के फलस्वरूप पदार्थ को निर्जीव एवं सजीव दो रूपों में स्वीकार किया जाने लगा । इसी कारण प्रकृति को जड़ रूप में स्वीकार किया गया तथा मनुष्य ने स्वयं को प्रकृति से पृथक् समझते हुए आचरण करना प्रारम्भ किया । इसी विचारधारा के परिणामस्वरूप पारिस्थितिकीय असन्तुलन की समस्या व्याप्त

[82] कुमार, डॉ. शशिप्रभा, वैशेषिक दर्शन में पदार्थ निरूपण, पृ. 448

हुई जो आज भी बनी हुई है । इसमें मनुष्य ने स्वयं को प्रकृति से पृथक् समझा तथा प्रकृति पर अपना आधिपत्य स्वीकार किया जिससे मनुष्य की उपभोगवादी प्रवृति निरन्तर बढ़ती जा रही है । मनुष्य ने अपने हित एवं स्वार्थ पूर्ति के लिये औद्योगिक विकास किया जिससे पेड़–पौधों का दोहन प्रारम्भ हुआ और औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप मनुष्य का अस्तित्व आज खतरे से व्याप्त है ।

> "The material universe, including living organism, was a machine for Descartes, which could in principle be understood completely by analysing it in terms of its smallest parts ."[83]

एकांगी दृष्टिकोण का विकास

शास्त्रीय भौतिकी में एकांगी दृष्टिकोण की विचारधारा को सम्बल प्रदान किया । इसमें केवल एक पक्ष को प्रबल मानते हुए मनुष्य केन्द्रित विचारधारा को बढ़ावा दिया गया तथा प्रकृति पर आधिपत्य स्वीकार किया गया । 19 वीं शताब्दी के अंग्रेज वैज्ञानिक Romentic Poet Willam Blake ने न्यूटन के एकांगी दृष्टिकोण की आलोचना करते हुए कहा –

> " May God us keep
>
> From a single vision and Newtons sleep " [84]

इस प्रकार शास्त्रीय भौतिकी के एकांगी दृष्टिकोण में ब्रह्माण्ड की विभिन्न वस्तुओं को पृथक्–पृथक् माना गया । प्राकृतिक तत्त्वों को स्वयं से अलग मानकर व्यवहार किया गया । इस प्रकार की विखण्डित सृष्टि सर्वत्र व्याप्त हो गयी । यही कारण वर्तमान में घटित हो रहे सामाजिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय संकटों के लिये उत्तरदायी है । इस दृष्टिकोण ने मनुष्य को न केवल प्रकृति से अपितु मानव समुदाय से भी पृथक् कर दिया जिससे प्राकृतिक संसाधनों का घोर अन्यायपूर्ण वितरण प्रारम्भ हो गया । वर्तमान में पर्यावरण को इतना अधिक दूषित कर दिया है कि शारीरिक एवं मानसिक जीवन भी रूग्ण हो गया है ।

---

[83] Capra, Fritjof, The Web of Life, p. 19
[84] वही, पृ. 21

"The old paradigm is based on anthropocentric (human centred) values ." [85]

शास्त्रीय भौतिकी की विचारधारा को Fritjof capra ने अपनी पुस्तक में निम्न प्रतिमानों के माध्यम से प्रस्तुत किया है–

- ❖ प्रथम प्रतिमान अंश (part) और सम्पूर्णता (whole) के मध्य सम्बन्ध पर केन्द्रित है । पारम्परिक भौतिकी में यह माना जाता है कि किसी भी जटिल निकाय को समझने के लिये पहले अंशों को समझना आवश्यक है । पहले अंशों के गुण धर्म एवं उनकी यांत्रिकीय गतिविधियां जिनके माध्यम से वे अन्तर्क्रिया करते हैं;को जानना आवश्यक है तत्पश्चात् ही सैद्धान्तिक रूप से सम्पूर्ण निकाय की गतिकी को ज्ञात कर सकते हैं । इस प्रकार शास्त्रीय भौतिकी में यह नियम स्वीकृत किया किसी भी पक्ष का ज्ञान उसको अंशों में विभाजित करने पर ही संभव है । इस विचारधारा का सूत्रपात यूनान में डेमोक्रिटस के साथ हुआ तथा न्यूटन एवं डेकार्ट के द्वारा आगे बढ़ाया गया ।

  "The first criterion concerns the relationship between the part and the whole. In the mechanistic, classical scientific paradigm it was believed that in any complex system the dynamics of the whole could be understood from the properties of the parts. Once you knew the parts their fundamental properties and the mechanisms through which they interact you could derive, at least in principal, the dynamics of the whole.[86]

- ❖ द्वितीय प्रतिमान मूलभूत अवधारणा पर आधारित है । शास्त्रीय भौतिकी में मूलभूत संरचनाओं होती है, जो बल और क्रिया विधियों के माध्यम से अन्योन्यक्रियाएं करती है, जिनसे प्रक्रियाएं उद्भूत होती है ।

  "In the old paradigm it was thought that there were fundamental structures, and then there were forces and mechanisms through these interacted; which gave rise to processes. In the new paradigm, we think that process is primary that every stracture we observe is a manifestation of an underlying process." [87]

Classical Physics के अनुसार अणु, आकाश तथा समय मौलिक तत्त्व है । शास्त्रीय भौतिकी के समान ही न्याय–वैशेषिक में भी Fundmental के प्रत्यय को स्वीकार किया

[85] Capra, Fritjof, The Web of Life,p.11
[86] Capra, fritjof, The Tao of physics, p.360-361
[87] वही p.362

गया जबकि आधुनिक विज्ञान एवं औपनिषदिक विचारधारा में इसे पूर्णतः अस्वीकृत किया गया और यह भी प्रश्न उपस्थित किया गया कि Fundmental क्या है ? किसका क्या आधार है ? क्योंकि आधुनिक विज्ञान के अनुसार ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु परस्पर अन्तःसम्बन्धित एवं अन्तनिर्भर है तथा एक ही ऊर्जा के विविध रूप है ।

"Energy, however, is associated with activity, with processes, and this implies that the nature of sub atomic particles is intrinsically dynamic. When we observe them, we never see any substance nor any fundamental structure. What we observe are dynamic patterns continually changing into one another a continuous dance of energy."[88]

- शास्त्रीय भौतिकी एवं आधुनिक भौतिकी में ज्ञान के आंशिकता और सम्पूर्णता पर भी भेद दिखाई देता हैं । शास्त्रीय भौतिकी के अन्तर्गत विशुद्ध यथार्थ ज्ञान के स्थान पर अनुमानित विवरण को प्रस्तुत किया जाता है । इसमें वैज्ञानिक ज्ञान की अवधारणाएं और सिद्धान्त सीमित और अनुमानित है तथा विज्ञान कभी भी पूर्ण एवं निश्चित समझ प्रदान नहीं करता है ।

  "The Cartesian paradigm was based on a belif in the certainty of Scientfic knowledge, which had been clearly stated by decartes ." [89]

- शास्त्रीय भौतिकी के अन्तर्गत मनुष्य जाति और प्रकृति पर नियंत्रण और आधिपत्य रखने वाले दृष्टिकोण को स्वीकार किया गया है । इस समय विज्ञान का मुख्य लक्ष्य उस ज्ञान का अर्जन करना था जिसका उपयोग प्रकृति पर शासन और नियंत्रण करने में होता है । आज भी विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी दोनों का उपयोग प्रमुखतः उन उद्देश्यों के लिये किया जाता है जो भयावह क्षतिकारक और पर्यावरण विरोधी है । यांत्रिकीय दृष्टिकोण के अनुसार विज्ञान और प्रौद्योगिकी इस विश्वास पर आधारित है कि प्रकृति की समझ से आशय पुरुष द्वारा प्रकृति पर आधिपत्य है । सत्रहवीं शताब्दी में विज्ञान की प्रयोगात्मक विधि का वर्णन करते हुए बेकन ने लिखा है–

  "Ever since Becon the goel of science has been knowledge that can be used to dominate and control nature, and today both science and technology

[88] Capra, fritjof, The Tao of physics, p.362
[89] वही, p. 366-367

are used predominanty for purpose that are dangerous; harmful, and anti-ecoloical." [90]

शास्त्रीय भौतिकी में प्रकृति एवं मनुष्य के मध्य में परस्पर अन्तर्निर्भरता को स्वीकार नहीं किया गया है इसी के परिणामस्वरूप मनुष्य ने प्रकृति को स्वयं से पृथक् उपभोग का साधन रूप में स्वीकार किया है जिससे आज भी मानव समाज की वही मानसिकता बनी हुई है और वैश्विक स्तर पर पर्यावरणीय संकट उपस्थित है ।

- ❖ शास्त्रीय भौतिकी में परमाणुओं मूल कारण स्वीकार किया गया है जबकि आधुनिक भौतिकी में चेतना को मूल कारण माना गया है । शास्त्रीय भौतिकी के प्रमुख वैज्ञानिक न्यूटन एवं रेनेडेकार्ट ने चेतना को पृथक् तत्त्व के रूप में स्वीकार किया तथा पदार्थ और ऊर्जा के परस्पर रूपान्तरण को भी अस्वीकार किया । आधुनिक विज्ञान में क्वाण्टम भौतिकी के अन्तर्गत चेतन तत्त्व को अत्यधिक महत्व दिया गया है । यह कहा गया कि ज्ञान की प्राप्ति चेतन तत्त्व से सम्बद्ध असम्भव है । ज्ञान प्राप्ति होने पर ज्ञाता–ज्ञेय–ज्ञान की पृथक् सत्ता नहीं रहती है । आइन्सटीन ने अदृश्य चेतन के अस्तित्व को स्वीकार किया है ।
- ❖ शास्त्रीय भौतिकी एवं न्याय वैशेषिक में आरम्भवाद को माना गया है जबकि आधुनिक विज्ञान में Manifestation theory माना गया है । Fritjof capra ने *'The Tao of Physics'* में भौतिक जगत् की कल्पना ईश्वरीय सृष्टि के रूप में की है-

"It seems probable to me that God in the begining formed matter in solid, massy, hard, impenetrable, moveable particles, of such size and figures, and with such other properties and in such proportion to space, as most conducted to the end for which he formed them; and that these primitive particles being solids, are in comparably harder than any porous bodies compounded of them ; even so very hard; as never to wear or break in piece' ordinary power being able to divine what God him self made one in the first creation ." [91]

[90] Capra, fritjof, The Tao of physics, p. 368
[91] वही p. 64

चतुर्थ अध्याय

प्रमुख उपनिषदों एवं आधुनिक विज्ञान में कार्य–कारण सिद्धान्त

वेदों की अन्तिम शब्दराशि ही 'उपनिषद्' की संज्ञा से अभिहित है । उपनिषद् भारतीय संस्कृति के प्राणस्वरूप हैं । उपनिषदों के परिशीलन से परिलक्षित होता है कि उपनिषद् साहित्य वह समुज्ज्वल रत्न है, जिसके आलोक में विज्ञजनों की अन्तरात्मा आलोकित हो उठती है, फलत: एक नवीन आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है । वस्तुत: उपनिषद् साहित्य वह आध्यात्मिक ज्ञान सरोवर है ; जिससे अनेकानेक सरिताएं प्रसृत होकर इस पावनभूमि को अवगाहित करती हैं तथा मानव मात्र के ऐहिक कल्याण और आमुष्मिक मंगल का प्रतिपादन करती है ।

इस प्रकार भारतीय तत्त्वज्ञान का जितना उत्कृष्ट विवेचन उपनिषदों में मिलता है, उतना अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है । उपनिषदों का गर्भ अनेकानेक रहस्यों से परिपूरित है । औपनिषदिक अमूल्य विचारों पर ही समग्र दार्शनिक परम्परा विद्यमान हैं । इस प्रकार स्पष्ट है कि उपनिषद् वेद का ज्ञानकाण्ड है । यह, वह चिरप्रदीप्त ज्ञान दीपक है ; जो सृष्टि के आदिकाल से प्रकाश देता चला आ रहा है और लयपर्यन्त प्रकाशित करता रहेगा , इसके प्रकाश में वह अमरत्व है, जिसने भारतीय संस्कृति का सिञ्चन एवं संवर्धन किया है । अपौरूषेय वेद का अन्तिम अध्यायरूप उपनिषद् ज्ञान का आदिस्रोत और विद्या का अक्षय भण्डार है ।

प्रमुख उपनिषदों में कार्य–कारण सिद्धान्त

उपनिषदों की अन्वेषक दृष्टि सत्य की कामना और उसके साथ ही मानव सुख और हित की कामना से ओतप्रोत है अतः दार्शनिक स्तर पर उपनिषदों का ज्ञान जितना आध्यात्मिक है, जीवन में धारण करने के लिये उतना ही व्यवहारिक है । वर्तमान में सभी विज्ञान ब्रह्माण्ड के मूल तत्त्व का अन्वेषण कर रहे हैं । इसी मूल तत्त्व का औपनिषदिक ऋषियों ने साक्षात्कार किया है । जिस प्रकार उपनिषदों में जगत् कारण एक तत्त्व को स्वीकार किया गया है उसी प्रकार आधुनिक विज्ञान में भी एक ही कारण को सृष्टि का मूल माना गया है । अतः उपनिषदो में दर्शन एवं विज्ञान दोनों है । विज्ञान के रूप में अन्तर्जगत् के सत्यों का आविष्कार करते हैं तथा दर्शन के रूप में वे मूल सत्य की समग्रता को प्रस्तुत करते हैं ।

औपनिषदिक कार्य–कारण विषयक जिज्ञासा

इस प्रकार जगत् के मूल कारण का अन्वेषण ही औपनिषदिक सृष्टि शास्त्र की विशेषता रही हैं । विविधताओं से परिपूर्ण दृश्यमान जगत् को देखकर प्रत्येक जिज्ञासु के मन में यह प्रश्न उत्पन्न होते हैं –

- जगत् का मूल कारण क्या हैं ?
- मूल कारण से किस प्रकार कार्य रूप ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होती है ?
- कारण एवं कार्य का क्या स्वरूप है ?
- कार्य–कारण में क्या सम्बन्ध है ?
- कार्य नष्ट होने पर किसमें विलीन होता है ?
- जगत् का मूल कारण एक है अथवा अनेक ?
- कार्य कारण का ही अभिव्यक्त रूप है अथवा कोई नवीन रचना है ?

यह सभी प्रश्न मानव मन को कार्य–कारण विषय पर सकेंद्रित करते हैं । इन प्रश्नों का समाधान भी उपनिषदों में स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है । ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य में कारण को परिभाषित करते हुए कहा गया है– "कारणमीश्वरः" [1] प्रधान और पुरुष का अधिष्ठाता ईश्वर कारण है । छान्दोग्योपनिषद् में कारण को सत् और असत् रूप में स्वीकार किया गया है– "सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् । तद्वैक आहुरसदेवेदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सज्जायतः ॥"[2] हे सोम्य! आरम्भ में यह एक मात्र अद्वितीय सत् ही था उसी के विषय में किन्हीं ने ऐसा भी कहा कि आरम्भ में यह एकमात्र अद्वितीय असत् ही था । उस असत् से सत् की उत्पत्ति होती है । वेदान्तपरिभाषा में कार्य का लक्षण इस प्रकार दिया है– "जगदेव कार्यम् । अत्र जगत्पदेन कार्यजातं विवक्षितम् । कारणत्वं च कर्तृत्वमतोऽविद्यादौ नातिव्याप्तिः ॥"[3] अर्थात् जगत् शब्द से कार्य विवक्षित है और कारणत्व पद से कर्तृत्व अभिप्रेत है । इस कारण लक्षण की अविद्यादि में अतिव्याप्ति नहीं होती है । संक्षेपशारीरकम् में कार्य का लक्षण करते हुए कहा गया है–

---

[1] ब्र .सू. शा. भा. 2/2/37

[2] छा. उप. 6/2/1

[3] वे. प., विषयपरिच्छेद, पृ. 371

"या नान्यमुद्दिश्य कृतिः प्रवृत्ता तयैव यद् व्याप्यतया प्रतीतम् ।

तदेव कार्ये कथयन्ति केचिद् विचक्षणाः कार्यनिरूपणायाम् ॥" [4]

औपनिषदिक कार्य–कारण सिद्धान्त को जानने के लिये प्रथमतः आवश्यक है कि उपनिषदों में कार्य–कारण विषयक जिज्ञासा कहां–कहां उपस्थापित की गयी है तथा उनका क्या समाधान प्रस्तुत किया गया है । विभिन्न उपनिषदों के प्रारम्भ में ही ब्रह्म सम्बन्धी जिज्ञासा को उठाया गया है । केनोपनिषद् के प्रथम मन्त्र में ब्रह्मतत्त्व के सम्बन्ध में जिज्ञासा को अभिव्यक्त किया गया है । यहां शिष्य के मन में सर्वशक्तिमान परमात्मा का चित्र उभरता है । शिष्य को अनुभव होता है कि कोई परमतत्त्व है जो सबको संचालित एवं नियन्त्रित कर रहा है अर्थात् सबका नियामक है किन्तु स्वरूपतः उस तत्त्व का ज्ञान उसे नहीं है । इन सभी प्रश्नों को लेकर शिष्य गुरु के समक्ष उपस्थित होता है –"ॐ केनेषितं पतति प्रेषितं मनः । केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ॥" [5] यह मन किसके द्वारा इच्छित और प्रेरित होकर अपने विषयों में गिरता है ? किससे प्रयुक्त होकर प्रधान प्राण चलता है ? प्राणी किसके द्वारा इच्छा की हुई यह वाणी बोलते हैं ? और कौन देव चक्षु तथा श्रोत्र को प्रेरित करता है ?

इस सम्पूर्ण जगत् का प्रेरक तत्त्व कौन है ? किस शक्ति के द्वारा प्रेरित होकर ये प्राकृतिक जड़ ज्ञानेन्द्रियां तथा कर्मेन्द्रियां एवं अन्तःकरण विभिन्न कार्यों को करते हैं ? अथवा अपने विषयों को ग्रहण करते हैं ? देवाधिदेव कौन है ? जीवन का लक्ष्य क्या है ? ज्ञान के चरमोत्कर्ष की स्थिति क्या है ? आचार्य अधिकारी शिष्य के सभी प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत करते हैं । द्वितीय मन्त्र में शिष्य की जिज्ञासा को समाधान प्रस्तुत किया गया है–"श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणश्चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यस्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥" [6] जो श्रोत्र का श्रोत्र, मन का मन तथा वाणी का भी वाणी है, और प्राण का प्राण तथा चक्षु का भी चक्षु है, वह सबको प्रेरित तथा संचालित करता है ।

---

[4] स.शा. 1/133

[5] के. उप. 1/1

[6] वही 1/2

श्वेताश्वतरोपनिषद् के प्रथम अध्याय के प्रथम मन्त्र में कारण के सन्दर्भ में प्रश्न उपस्थित किया गया है–

"किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः ।

अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम् ॥" [7]

जगत् का कारणभूत ब्रह्म कैसा है ? हम किससे उत्पन्न हुए हैं ? किसके द्वारा जीवित रहते हैं ? कहां स्थित है ? और है ब्रह्मविद्गण ! हम किसके द्वारा सुख–दुख में प्रेरित होकर व्यवस्था का अनुवर्तन करते हैं । इस प्रकार जगत् की व्यवस्था, उत्पत्ति इत्यादि को देखकर यह प्रश्न मानस पर अङ्कित होते हैं कि कौन सत्ता सबके कारण रूप में विद्यमान है तथा उसी कारण शक्ति का ऋषियों ने साक्षात्कार किया है ।

"ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगुढाम् ।

यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः ॥" [8]

उन्होनें ध्यानयोग का अनुवर्तन कर अपने गुणों से आच्छादित परमात्मा की शक्ति का साक्षात्कार किया ; जो परमात्मा के अकेले ही काल से लेकर आत्मपर्यन्त समस्त कारणों के अधिष्ठान हैं । यहां जगत् के मूल कारण रूप में परमात्मा की शक्ति को ही स्वीकार किया गया है जिसको ऋषियों ने अनुभूत किया है तथा काल, स्वभाव की कारणता का खण्डन किया है ।

"कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्या ।

संयोग एषां न त्वात्मभावादात्माप्यनीशः सुखदुःखहेतोः ॥" [9]

काल, स्वभाव, नियति, यदृच्छा, भूत और पुरुष ये कारण है या नहीं इस पर विचारना चाहिए । इसका संयोग भी आत्मा के अधीन होने के कारण नहीं हो सकता तथा जीवात्मा भी सुख–दुःख के हेतु पुण्यापुण्यकर्मो के अधीन है इसलिये वह भी कारण नहीं हो सकता है ।

---

[7] श्वे. उप. 1/1
[8] वही 1/3
[9] वही 1/2

कार्य–कारण विषयक जिज्ञासा प्रश्नोपनिषद् में भी स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है । यहां प्रश्नोत्तर के माध्यम से ही विषय का प्रतिपादन किया गया है । सम्पूर्ण उपनिषद् में शिष्यों द्वारा किये गये प्रश्न एवं उनके समाधान वर्णित है । इस उपनिषद् में छः ऋषि कुमार भरद्वाज नन्दन सुकेशा, शिविकुमार सत्यकाम, गर्गगोत्री सौर्यायणि (सूर्य का पोता), अश्वल कुमार कौशल्य, विदर्भ देशीय भार्गव, कत्य के पोत्र का पुत्र कबन्धी अपने–अपने प्रश्नों को लेकर महर्षि पिप्पलाद के समीप हाथ में समीधा लेकर पहुँचते हैं । इन छः शिष्यों के प्रश्नों का पर्यवसान ब्रह्म में ही होता है क्योंकि समस्त प्रश्नों का आधार वही एक परमतत्त्व है । महर्षि पिप्पलाद सर्वप्रथम एक वर्ष तक तपस्या, ब्रह्मचर्य एवं श्रद्धा से युक्त होकर निवास करने को कहते है तदनन्तर उनके प्रश्नों का उत्तर देते हैं । तत्पश्चात् एक वर्ष तक गुरूकुल वास के अनन्तर कात्यायन कबन्धी ने महर्षि पिप्पलाद के समीप जाकर पूछा–

"भगवन् कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ॥" [10]

भगवन् ! यह सारी प्रजा किससे उत्पन्न होती है । इस प्रकार सृष्टि सम्बन्धी प्रश्न करने पर महर्षि पिप्पलाद ने उत्तर दिया–"स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते । रयिं च प्राणं चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति ॥" [11] प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से प्रजापति ने तप किया । तप करके रयि और प्राण यह जोड़ा उत्पन्न किया और सोचा कि ये दोनों ही मेरी अनेक प्रकार की प्रजा उत्पन्न करेंगे । "आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा रयिर्वा एतत् सर्वं यन्मूर्तं चामूर्तं च तस्मान्मूर्तिरेव रयिः ॥" [12] निश्चय आदित्य ही प्राण है और रयि ही चन्द्रमा है । यह जो कुछ मूर्त (स्थूल) और अमूर्त (सूक्ष्म) है सब रयि ही है । यहां प्रजापति ही उस परमतत्त्व रूपी ब्रह्म का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं । संवत्सर ही प्रजापति है । दक्षिण तथा उत्तर उसके दो अयन है जो इष्टापूर्त कर्ममार्ग का अवलम्बन करते हैं वे चन्द्रलोक पर ही विजय पाते हैं और वे ही पुनः आवागमन को प्राप्त होतें हैं अतः ये सन्तानेच्छु ऋषिलोग दक्षिण मार्ग को ही प्राप्त होते हैं जो पितृयाण है वही रयि है । तदनन्तर द्वितीय शिष्य विदर्भदेशीय भार्गव ने महर्षि पिप्पलाद के समक्ष प्रश्न उपस्थित किया– "भगवन्कत्येव देवाः प्रजा विधारयन्ते कतर

[10] प्र.उप. 1/3
[11] वही 1/4
[12] वही 1/5

एतत्प्रकाशयन्ते कः पुनरेषां वरिष्ठं इति ॥" [13] भगवन् इस प्रजा को कितने देवता धारण करते हैं ? उनमें से कौन–कौन इसे प्रकाशित करते हैं ? और कौन उनमें सर्वश्रेष्ठ है ? आचार्य पिप्पलाद शिष्यों की जिज्ञासा शान्त करते हुए कहते हैं–"तस्मै स होवाचाकाशो ह वा एष देवो वायुरग्निरापः पृथिवी वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रं च । ते प्रकाश्याभिवदन्ति । वयमेतद् बाणमवष्टभ्य विधारयामः ॥" [14] वह देव आकाश है । वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, वाक् (सम्पूर्ण कर्मेन्द्रियां) मन (अन्तःकरण) और चक्षु (ज्ञानेन्द्रिय समूह) ये भी देव ही हैं । वे सभी अपनी महिमा को प्रकट करते हुए कहते हैं– हम ही इस शरीर को आश्रय देकर धारण करते हैं । यहां सभी देव अपनी–अपनी महिमा से इस शरीर को धारण करते हैं लेकिन इनमें सर्वश्रेष्ठ कौन है ? इसका उत्तर दिया गया है कि प्राण ही सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि उसके बिना जीवन संभव नहीं है । प्राण के बिना सभी इन्द्रियों के रहने पर भी जीवन संभव नहीं है । सभी इन्द्रियों में सक्रियता एकमात्र प्राण से ही संभव है । प्राण की स्तुति करते हुए कहा गया है–

"एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य एष पर्जन्यो मघवानेष वायुः ।

एष पृथिवी रयिर्देवः सदसच्चामृतं च यत् ॥" [15]

यह प्राण अग्नि होकर तपता है, यह सूर्य है, यह मेघ है, यही इन्द्र है और वायु है तथा यह देव ही पृथिवी, रयि और जो कुछ सत् असत् एवं अमृत है, वह सब कुछ है ।

"प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रतिजायसे । तुभ्यं प्राण प्रजास्त्विमा बलिं हरन्ति यः प्राणैः प्रतितिष्ठसि ॥" [16]

हे प्राण ! तू ही प्रजापति है, तू ही गर्भ में सञ्चार करता है और तू ही जन्म ग्रहण करता है । यह मनुष्यादि सम्पूर्ण प्रजा तुझे ही बलि समपर्ण करती है क्योंकि तू समस्त इन्द्रियों के साथ स्थित रहता है । प्राण की सर्वश्रेष्ठता सिद्ध करने के पश्चात् तृतीय शिष्य अश्वल के पुत्र कौसल्य ने प्रश्न किया–"भगवन्कुत एष प्राणो जायते कथमायात्यस्मिञ्शरीर आत्मानं वा

---

[13]प्र.उप. 2/1
[14] वही 2/2
[15] वही 2/5
[16] वही 2/7

प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते केनोत्क्रमते कथं बाह्यमभिधत्ते कथमध्यात्ममिति ॥" [17] भगवन् ! यह प्राण कहां से उत्पन्न होता है ? किस प्रकार इस शरीर में आता है ? तथा अपना विभाग करके किस प्रकार स्थित होता है ? किस कारण शरीर से उत्क्रमण करता है ? और किस तरह बाह्य एवं आभ्यन्तर शरीर को धारण करता है ? "आत्मन एष प्राणो जायते यथैषा पुरुषे छायैतस्मिन्नेतदाततं मनोकृतेनायात्म्यस्मिञ्शरीरे ॥" [18]

यह प्राण आत्मा से उत्पन्न होता है जिस प्रकार मनुष्य शरीर से छाया उत्पन्न होती है उसी प्रकार इस आत्मा में प्राण व्याप्त है तथा यह मनोकृत संकल्पादि से इस शरीर में आ जाता है । उपर्युक्त प्रश्न के द्वारा प्राण की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है । जो अपने पाचों विभक्तियों सहित इस शरीर में विद्यमान है जिसके कारण यह शरीर गतिमान् है । प्रश्नोत्तर की इसी श्रृखंला के अन्तर्गत सूर्य के पौत्र गार्ग्य ने प्रश्न किया– "भगवन्नेतस्मिन्पुरुषे कानि स्वपन्ति कान्यस्मिञ्जाग्रति कतर एष देवः स्वप्नान्पश्यति कस्यैतत्सुखं भवति कस्मिन्नु सर्वे संप्रतिष्ठिता भवन्तीति ॥" [19] भगवन् ! इस पुरुष में कौन सोती है ? कौन जागती है ? कौन देव स्वप्नों को देखते हैं ? किसे यह सुख अनुभव होता है ? तथा किसमें ये सब प्रतिष्ठित हैं ? इसका उत्तर देते हुए कहा गया है कि इन्द्रियों का लयस्थान आत्मा है–"यथा गार्ग्य मरीचयोऽर्कस्यास्तं गच्छतः सर्वा एतस्मिंन्तेजो मण्डल एकीभवन्ति । ताः पुनः पुनरुदयतः प्रचरन्त्येवं ह वै तत्सर्वं परे देवे मनस्येकीभवति । तेन तह्येर्ष पुरुषो न श्रृणोति न पश्यति न जिघ्रति न रसयते न स्पृशते नाभिवदते नादत्ते नानन्दयते न विसृजते नेयायते स्वपितीत्याचक्षते ॥" [20] आचार्य ने कहा– हे गार्ग्य ! जिस प्रकार सूर्य के अस्त होने पर सम्पूर्ण किरणें उस तेजोमण्डल में ही एकत्रित हो जाती है और उसका उदय होने पर वे फिर फैल जाती हैं । उसी प्रकार वे सब इन्द्रियां परमदेव के मन को एकीभाव प्राप्त हो जाती हैं । इससे तब वह पुरुष न सुनता है, न देखता है, न सूंघता है, न चखता है, न स्पर्श करता है, न बोलता है, न ग्रहण करता है, न आनन्द भोगता है, न मलोत्सर्ग करता है और न कोई चेष्टा करता है । तब उसे सोता है ऐसा कहते हैं । सभी इन्द्रियों तथा मन (कार्य–कारण संघात) आत्मा में ही विलीन हो जाते हैं इस सन्दर्भ में कहा गया है–

---

[17] प्र.उप. 3/1
[18] वही 3/3
[19] वही 4/1
[20] वही 4/2

"स यथा सोम्य वयांसि वासोवृक्षं संप्रतिष्ठन्ते एवं ह वै तत्सर्वं पर आत्मनि संप्रतिष्ठन्ते ॥" [21]

हे सोम्य ! जिस प्रकार पक्षी अपने बसेरे के वृक्ष पर जाकर बैठ जाते हैं उसी प्रकार वह सब (कार्य–कारण संघात) सबसे उत्कृष्ट आत्मा में जाकर स्थित हो जाता है ।

"पृथिवी च पृथिवीमात्रा चापश्चापोमात्रा च तेजश्च तेजोमात्रा च वायुश्च वायुमात्रा चाकाशश्चाचाकाशमात्रा च चक्षुश्च द्रष्टव्यं च श्रोत्रं च श्रोतव्यं च घ्राणं च घ्रातव्यं च रसश्च रसयितव्यं च त्वक्च स्पर्शयितव्यं च वाक्च वक्तव्यं च हस्तौ चादातव्यं चोपस्थश्चानन्दयितव्यं च पायुश्च विसर्जयितव्यं च पादौ च गन्तव्यं च मनश्च मन्तव्यं च बुद्धिश्च बोद्धव्यं चाहङ्कारश्चाङ्कर्तव्यं च चित्तं च चेतयितव्यं च तेजश्च विद्योतयितव्यं च प्राणश्च विधारयितव्यं च ॥"[22]

पृथिवी और पृथिवी मात्रा (गन्ध तन्मात्रा), जल और रस तन्मात्रा, तेज और रूप तन्मात्रा, वायु और स्पर्श तन्मात्रा, आकाश और शब्द तन्मात्रा, नेत्र और दृष्टव्य (रूप), श्रोत्र और श्रोत्रव्य (शब्द),घ्राण और घ्रातव्य, रसना और रसयितव्य, त्वचा और स्पर्शयोग्य पदार्थ, हाथ और ग्रहण करने योग्य वस्तु, उपस्थ और आनन्दयितव्य, पायु और विसर्जनीय, पाद और गन्तव्य स्थान, मन और मनन करने योग्य, बुद्धि और बोद्धव्य, अहंकार और अहंकार का विषय, चित्त और चेतनीय, तेज और प्रकाश्य पदार्थ तथा प्राण और धारण करने योग्य वस्तु ये सभी आत्मा में लीन हो जाते हैं ।

तदनन्तर पञ्चम प्रश्न को शिवि पुत्र सत्यकाम ने पूछा–"स यो ह वै तद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत । कतमं वाव स तेन लोकं जयतीति ॥" [23] भगवन् ! मनुष्यों में जो पुरुष प्राणपर्यन्त इस ओङ्कार का चिन्तन करें, वह उस ओङ्कारोपासना से किस लोक को जीत लेता हैं । आचार्य पिप्पलाद उत्तर देते हुए ओङ्कारोपासना से प्राप्तव्य पर अथवा अपरब्रह्म के विषय में इस प्रकार बताते है–"तस्मै स होवाच एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोङ्कारः । तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति ॥" [24] हे सत्यकाम ! यह जो ओङ्कार है वही निश्चय पर और

[21] प्र.उप. 4/7
[22] वही 4/8
[23] वही 5/1
[24] वही 5/2

अपर ब्रह्म है अतः विद्वान् इसी के आश्रय से उनमे से किसी एक ब्रह्म को प्राप्त हो जाते हैं । छठवें प्रश्न को लेकर भरद्वाज के पुत्र सुकेशा महर्षि पिप्पलाद के समक्ष उपस्थित होते हैं– "भगवनन्हिरण्यनाभः कौसल्यो राजपुत्रो मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत । षोडशकलं भारद्वाज पुरुषं वेत्थ तमहं कुमारमब्रुवं नाहमिम वेद यद्यहमिममवेदिषं कथं ते नावक्ष्यमिति समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति तस्मान्नार्हाम्यनृतं वक्तुं स तूष्णीं रथमारुह्य प्रवव्राज । तं त्वा पृच्छामि क्वासौ पुरुष इति ॥" [25] भगवन् ! कोसलदेश के राजकुमार हिरण्यनाभ ने मेरे पास आकर यह प्रश्न पूछा था– भारद्वाज ! क्या तू सोलह कलाओं वाले पुरुष को जानता है ? तब मैंने उस कुमार से कहा–मैं इसे नहीं जानता; यदि मैं इसे जानता होता तो तुझे क्यों न बतलाता । जो पुरुष मिथ्या भाषण करता है वह सब ओर से मूलसहित सुख जाता है; अतः मैं मिथ्या भाषण नहीं कर सकता । तब वह चुपचाप रथ पर चढ़ कर चला गया । सो अब मैं आपसे उसके विषय में पूछता हूं कि वह पुरुष कहां है ? महर्षि पिप्पलाद ने उत्तर देते हुए कहा–"इहैवान्तः शरीरे सोम्य स पुरुषो यस्मिन्नेताः षोडश कलाः प्रभवन्तीति ॥" [26] जिनमें इन सोलह कलाओं का प्रादूर्भाव होता है वह पुरुष इस शरीर के भीतर ही वर्तमान है । यहां सोलह कलाओं के सन्दर्भ में नदी का दृष्टान्त दिया गया है–

"स यथेमा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्यस्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते । एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडश कलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यस्तं गच्छन्ति भिद्येते चासां नामरूपे पुरुष इत्येव प्रोच्यते ॥" [27]

जिस प्रकार समुद्र की ओर बहती हुई नदियां समुद्र में जाकर अस्त हो जाती है, उनके नाम–रूप नष्ट हो जाते हैं, और वे समुद्र ऐसा कहकर ही पुकारी जाती हैं; उसी प्रकार इस सर्वद्रष्टा की ये सोलह कलाएं जिनका अधिष्ठान पुरुष ही है, उस पुरुष को प्राप्त होकर लीन हो जाती है उसके नाम–रूप नष्ट हो जाते हैं और वे पुरुष ऐसा कहकर ही पुकारी जाती हैं ।

---

[25] प्र.उप. 6/1
[26] वही 6/2
[27] वही 6/5

कारण एवं कार्य का स्वरूप

औपनिषदिक कार्य–कारण सिद्धान्त के अन्तर्गत यह प्रश्न उपस्थित होता हैं कि कारण क्या है ? एवं कार्य क्या है ? तथा कारण एवं कार्य का स्वरूप क्या है ? उपनिषदों में जगत् का मूलाधार एक ही परम सत्ता को स्वीकार किया गया है ।

ब्रह्म शब्द का अर्थ एवं लक्षण

समस्त जगत् की नियामक परमशक्ति को उपनिषदों में ब्रह्म के नाम से अभिहित किया गया है । 'ब्रह्म' शब्द बृह धातु से निष्पन्न हुआ है; जिसका अर्थ है–व्यापक अर्थात् जो दिक्, काल तथा मन की सीमा से अपरिच्छिन्न है, वही ब्रह्म है । शङ्कराचार्य ने भी ब्रह्मसूत्र के अन्तर्गत ब्रह्म शब्द पर प्रकाश डालते हुए इस प्रकार अभिव्यक्त किया है ।"ब्रह्म नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावं, सर्वज्ञं, सर्वशक्तिसमन्वितम् ; ब्रह्मशब्दस्य हि व्युत्पाद्यमानस्य नित्यशुद्धत्वादयोऽर्थाः प्रतीयन्ते; बृहतेर्धातोर्थानुगमात् ॥"[28]

शाङ्करभाष्य में भी ब्रह्म शब्द की 'बृह्' धातु से हुई है, तथा ब्रह्म नित्य–शुद्ध–बुद्ध तथा मुक्त स्वभाव वाला है तथा सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तिमत्व तथा सर्वव्यापकत्व का अन्वय भी ब्रह्म में ही किया गया है । इन सभी गुणों से युक्त एकमात्र ब्रह्म ही है । वही सबका कारण है, परन्तु उसका कारण कोई नहीं है । केनोपनिषद् में आचार्यशङ्कर ने ब्रह्म के विषय में इस प्रकार बताया है – "निरतिशयं भूमाख्यं बृहत्त्वात् ब्रह्मेति विद्धि विजानीहि ॥" [29] बृहत् होने के कारण ब्रह्म निरतिशय एवं भूमासंज्ञक है । इस प्रकार ब्रह्म तो एक ही है, परन्तु उसे निर्गुण तथा सगुण नाम पारमार्थिक तथा व्यवहारिक दृष्टिकोण से दिया गया है । अर्थात् ब्रह्म पारमार्थिक दृष्टि से तो निर्गुण है किन्तु व्यवहारिक दृष्टि से सगुण है सगुण ब्रह्म की विद्यमानता व्यवहारिक सत्ता में होती है इसीलिये यह समस्त नाम रूपात्मक जगत् का कारण माना जाता है । निर्गुण ब्रह्म ही माया की सत्वोपाधि से युक्त होने पर ईश्वर संज्ञा से अभिहित किया जाता है तब ब्रह्म का स्वरूप निर्गुण न रहकर सगुण हो जाता है । बृहदारण्यकोपनिषद् में ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति इस प्रकार बताया गया है–"स यथोर्णनाभिस्तन्तुनोच्चरेद्यथाग्नेः क्षुद्राः विस्फुल्लिङ्गा व्युच्चरन्त्येवमेवास्मादात्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति

[28] ब्र .सू. शा. भा. 1/1/1
[29] के. उ. शा. भा. 1/4

तस्योपनिषत्सत्यस्य सत्यमिति प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यम् ॥" [30] जिस प्रकार धधकती हुई अग्नि से चारों और चिनगारियाँ निकलती हैं उसी प्रकार ब्रह्म से यह सम्पूर्ण लोक,देव, प्राणी समुदाय उत्पन्न होते हैं ।

इस प्रकार ब्रह्म जगत् का निमित्त एवं उपादान दोनों कारण है । वस्तुतः ब्रह्म एक ही है, तथापि माया के कारण द्वैतभान होता है इसलिये सगुण एवं निर्गुण दो भेद बताये गये हैं । इसी सन्दर्भ में ब्रह्म के लक्षण पर भी विचार आवश्यक है ।

स्वरूप लक्षण – 'स्वरूपान्तरभूतत्वे सति अन्यव्यावर्तकं स्वरूपलक्षणं' अर्थात् जो वस्तु के स्वरूप के अन्तर्गत विद्यमान हो अन्यों से भेद करने वाला हो उसे स्वरूप लक्षण कहते हैं । जैसे–'सच्चिदानन्दं ब्रह्मं' यह ब्रह्म का स्वरूप लक्षण है क्योंकि सत्, चित् तथा आनन्द ब्रह्म के स्वरूप में विद्यमान है, और ये तीनों अन्यों से ब्रह्म को भिन्न करते हैं ।

तटस्थ लक्षण –'स्वरूपान्तराभूतत्वे सति इतरव्यावर्तकं तटस्थ लक्षणम्' अर्थात् जो स्वरूप के अन्तर्गत न होने पर भी अन्य से भेद करने वाला हो उसे तटस्थ लक्षण कहते हैं । जैसे– 'जन्माद्यस्य यतः' यह ब्रह्म का तटस्थ लक्षण है क्योंकि जगत् की जन्मादि क्रियाएं ब्रह्म के स्वरूप के अन्तर्गत नहीं है, तथापि ये ब्रह्म को अन्य जीव–प्रकृति इत्यादि से पृथक् करती है ।

परब्रह्म एवं अपरब्रह्म का स्वरूप

उपनिषदों में सृष्टि के मूल कारण ब्रह्म का दो स्वरूपों में वर्णन प्राप्त होता है ।

(1) निर्गुण ब्रह्म (परब्रह्म, निष्कलब्रह्म)
(2) सगुण ब्रह्म (अपर ब्रह्म, सविशेष ब्रह्म)

निर्गुण ब्रह्म को ही परब्रह्म या निष्कलब्रह्म तथा सगुण ब्रह्म को अपर ब्रह्म की संज्ञा दी जाती है । निष्कल को निरूपाधिक तथा सकल को सोपाधिक माना गया है । परब्रह्म सच्चिदानन्दरूप और निरूपाधिक होने के कारण् अनिर्वचनीय है तथा गुण एवं कला रहित है जिसे तैत्तिरीयोपनिषद् में सत्य, ज्ञानरूप और अनन्त कहा गया है–"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मं ॥" [31]

[30] बृ. उप. 2/1/20
[31] तै. उप. 2/1/1

उपनिषदों में वर्णित सगुण ब्रह्म मन, बुद्धि, इन्द्रियादि से गोचर है । यह वर्णनीय स्वरूप वाला है । पूर्वोक्त तटस्थ एवं स्वरूप लक्षण से परिपूर्ण है । छान्दोग्योपनिषद् में सगुण ब्रह्म का विवेचन 'तज्जलान्' शब्द के द्वारा किया गया है । 'तज्जलान्' अर्थात् तज्ज (तत्+ज) यह समस्त जगत् उसी ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है । उसी प्रकार 'तल्ल' (तत्+ल) अर्थात् ब्रह्म में लीन होने वाली है अतः सगुण ब्रह्म ही इस संसार का उत्पादक, धारक एवं संहारक है ।

तैत्तिरीयोपनिषद् में भी इसी भाव की सम्पुष्टि करते हुए बताया गया है–

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तद्विजिज्ञासस्व । तद् ब्रह्मेति ॥" [32] जिससे निश्चय ही ये सब भूत उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होने पर जिसके आश्रय से ये जीवित रहते हैं और अन्त में विनाशोन्मुख होकर जिसमें ये लीन हो जाते हैं उसे विशेष रूप से जानने की इच्छा कर वही ब्रह्म है ।

इस प्रकार सगुण ब्रह्म ही इस संसार का कारण है । वही सबका स्वामी, सर्वज्ञ और सर्वव्यापक है । वही इस नामरूपात्मक जगत् का अधिष्ठाता है । वही जगत् का उपादान एवं नित्य कारण है । उपनिषदों में निर्गुण ब्रह्म को परब्रह्म कहा गया है । यह परब्रह्म ही सच्चिदानन्द है, यह निरूपाधि होने के कारण अनिर्वचनीय है । निर्गुण ब्रह्म को किसी विशेषण से विशेषित नहीं किया जा सकता है वह गुणातीत अवस्था है । बृहदारण्यकोपनिषद् में निर्गुण ब्रह्म का वर्णन करते हुए कहा गया है–

"स्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवाय्वनाकाशमसङ्गमरसमगन्धमचक्षुष्कम्
ाश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमप्राणममुखममात्रमनन्तरमबाह्यं न तद्श्नाति किञ्चन न तदश्नाति कश्चन
॥" [33]

निर्गुण ब्रह्म न मोटा है, न पतला है, न छोटा है, न बड़ा है, न लाल है , न द्रव है, न छाया है,न तम है, न वायु है, न आकाश है, न सङ्ग. है,न रस है, न गन्ध है, न नेत्र है, न कान है,न वाणी है,न मन है, न तेज है, न प्राण है,न मुख है, न माप है,उसमें न अन्दर है, न बाहर है, वह कुछ भी नहीं खाता है ।

---

[32] तै.उप.3/1/1

[33]बृ.उप. 3/8/8

कठोपनिषद् में भी निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप को इस प्रकार बताया गया है–

"अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत् ।

अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥" [34]

जो अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय तथा रसहीन नित्य और गन्ध रहित है, जो अनादि, अनन्त, महत्तत्व से भी पर और ध्रुव है उस आत्मतत्त्व को जानकर पुरुष मृत्यु के मुख से छुट जाता है ।

केनोपनिषद् में ब्रह्म को मन से अनुपास्य बताया गया है–

"यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥" [35]

जो मन से मनन नहीं किया जाता बल्कि जिससे मन मनन किया हुआ कहा जाता है उसी को तू ब्रह्म जान । जिस देश कालावच्छिन्न वस्तु की उपासना करता है वह ब्रह्म नहीं है । इस प्रकार ब्रह्म अनुभूतिगम्य है । बृहदारण्यकोपनिषद् में ब्रह्म के दोनों रूपों को इस प्रकार बताया गया है–"द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च मर्त्यं चामृतं च स्थितं च यच्च सच्च त्यच्च ॥" [36] ब्रह्म के दो रूप हैं–मूर्त और अमूर्त, मर्त्य और अमृत, स्थित और यत् (चर) तथा सत् और त्यज् । यथार्थतः दोनों में कोई तत्त्विक भेद नहीं है । दोनों एक ही ब्रह्म के दो रूप हैं । यही कारण है कि एक ही मन्त्र के द्वारा दो पदों के माध्यम से एक ही ब्रह्म का प्रतिपादन किया गया है तब निश्चय ही उसमें किसी तरह का वस्तुगत भेद नहीं है अतः सृष्टि का मूल कारण रूप परमतत्त्व एक ही है उसे सगुण अथवा निर्गुण किसी भी रूप में स्वीकार किया जा सकता है । मुण्डकोपनिषद् में सभी भूतों के कारण तत्त्व का स्वरूप बताते हुए कहा गया है–

---

[34] क.उप. 1/3/15

[35] के. उप. 1/1/5

[36] बृ. उप. 2/3/1

"यत्तददेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुः श्रोत्रं तदपाणिपादम् । नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनि परिपश्यन्ति धीराः ॥"[37]

वह अदृश्य, अग्राह्य, अगोत्र, अवर्ण और चक्षुः श्रोत्रादिहीन है, इसी प्रकार अपाणिपाद, नित्य, विभु, सर्वगत, अत्यन्त सूक्ष्म और अव्यय है तथा जो सम्पूर्ण भूतों का कारण है उसे विवेकी लोग सब ओर देखते हैं । उपनिषदों में अनेक स्थानों पर ब्रह्म के उभयविध स्वरूप का वर्णन किया गया है । श्वेताश्वतरोपनिषद् में एक ओर उसे सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी, कर्माध्यक्ष तथा साक्षी कहा जाता है तो दूसरी ओर निर्गुण कहा गया है–

"एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।

कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥"[38]

अतः ब्रह्म के दोनों रूपों के वर्णन के पश्चात् एक विलक्षणता एवं विशिष्टता स्पष्ट हो जाती है । परब्रह्म निर्गुण और निराकार है एवं अपर ब्रह्म सगुण एवं साकार है । परब्रह्म परा विद्या का एवं अपर ब्रह्म अपरा विद्या का विषय होते हुए भी एक ही तत्त्व के दो अलग–अलग रूप है ।

ऐतरेयोपनिषद् का महत्व उपनिषद् साहित्य में ब्रह्म के स्वरूप वर्णन के कारण है । इसमें ब्रह्म के सगुण रूप का प्रतिपादन प्रमुखतया किया गया है । सृष्टि के लिये ईक्षण करना ही ब्रह्म के सगुण रूप को प्रकट करता है क्योंकि इक्षणादि कर्म सगुण ब्रह्म का ही स्वभाव है,निर्गुण ब्रह्म का नहीं । निर्गुण ब्रह्म कार्य–कारण की श्रृखंला में आबद्ध ही नहीं होते हैं क्योंकि वह मायातीत हैं । ईक्षणादि कर्म माया से सम्बद्ध होने पर ही सम्भव है । यहां सृष्टि जगत् की कारणता के रूप में सगुण ब्रह्म को प्रतिष्ठित किया गया है तथा व्यष्टि रूप शरीर के लिये भी उसी ब्रह्म को कारण माना गया है । यहां जगत् के कारणभूत ब्रह्म को प्रज्ञा के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है । जिस प्रकार समष्टि रूप ब्रह्माण्ड का व्यवहार ब्रह्म के बिना सम्भव नहीं है उसी प्रकार व्यष्टि रूप शरीर का भी व्यवहार प्रज्ञा के बिना सम्भव नहीं हैं । प्रज्ञान के विविध नामों का उल्लेख इस प्रकार किया गया है – "सज्ञांनमाज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं मेधा दृष्टिर्धृतिर्मतिर्मनीषा जूतिः स्मृतिः संकल्पः क्रतुरसुः कामो वश इति सर्वाण्येवैतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति ॥"

---

[37] मु.उप. 1/1/6

[38] श्वे.उप. 6/11

[39] संज्ञान (चेतनता), आज्ञान (प्रभुता), विज्ञान, प्रज्ञान, मेधा, दृष्टि, धृति, मति, मनीषा, जूति, स्मृति, सङ्कल्प, क्रतु, असु (प्राण), काम और वश (मनोज्ञ वस्तुओं के स्पर्शादि की कामना) ये सभी प्रज्ञान के नाम है । ब्रह्म के प्रज्ञान रूप की सिद्धि से पूर्व उसको आत्मा के रूप में माना गया है । जगत् का आदिकारण आत्मा को मानते हुए प्रथम अध्याय में बताया गया है -

"ॐ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् । नान्यत्किञ्चनमिषत् । स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति ॥"[40]

पहले यह जगत् एकमात्र आत्मा ही था ; उसके सिवा और कोई सक्रिय वस्तु नहीं थी । उसने सोचा की 'लोकों की रचना करूँ'। "स इमाँल्लोकानसृजत । अम्भो मरीचिर्मरमापोदोऽम्भः परेण दिवं द्यौः प्रतिष्ठान्तरिक्षं मरीचयः पृथिवी मरो या अधस्तात्ता आपः ॥" [41] उसने अम्भ, मरीचि, मर और आप इन लोकों की रचना की । जो द्युलोक से परे है और स्वर्ग जिनकी प्रतिष्ठा है वह अम्भ है, अन्तरिक्ष (भुवलोक) मरीचि है, पृथिवी मरलोक है और जो पृथिवी नीचे है वह आप है । "स ईक्षतेमे नु लोका लोकपालान्नु सृजा इति सोऽद्भय एव पुरुषं समुद्धृत्यामूर्छयत् ॥" [42] उसने इक्षण (विचार) किया कि – ये लोक तो तैयार हो गये , अब लोकपालों की रचना करूँ– ऐसा सोचकर जल में से ही एक पुरुष निकालकर अवयव युक्त किया । इस प्रकार परमपिता परमात्मा ने पृथिवी, द्यु, अन्तरिक्ष, इन लोकों का तो निर्माण तो कर दिया परन्तु इनका परिपालन कैसे हो इसके लिये विचारपूर्वक जिस विराट्पुरुष को अवयववयुक्त किया उसी विराट् पुरुष के उद्देश्य से ईश्वर ने संकल्प किया–

"तमभ्यतपत्तस्याभितप्तस्य मुखं निरभिद्यत यथाण्डं मुखाद्वाग्वाचोऽग्निर्नासिके निरभिद्येतां नासिकाभ्यां प्राणः प्राणाद्वायुरक्षिणी निरभिद्येतामक्षिभ्यां चक्षुश्चक्षुष आदित्यः कर्णौ निरभिद्येतां कर्णाभ्यां श्रोत्रं श्रोत्राद्दिशस्त्वङ्निरभिद्यत त्वचो लोमानि लोमभ्य ओषधिवनस्पतयो हृदयं निरभिद्यत हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमा नाभिर्निरभिद्यत नाभ्या अपानोऽपानान्मृत्युः ॥" [43] संकल्प किये पिण्ड से अण्डे के समान मुख उत्पन्न हुआ । मुख से वाक् और वागिन्द्रिय से अग्नि उत्पन्न हुआ । फिर

[39] ऐ.उप. 3/1/2
[40] वही 1/1/1
[41] वही 1/1/2
[42] वही 1/1/3
[43] वही 1/1/4

नासिकारन्ध्रों से प्राण हुआ और प्राण से वायु । (इसी प्रकार) नेत्र प्रकट हुए तथा नेत्रों से चक्षु इन्द्रिय और चक्षु से आदित्य उत्पन्न हुआ । फिर कान उत्पन्न हुए तथा कानों से श्रोत्रेन्द्रिय और श्रोत्र से दिशाएं प्रकट हुई । तदनन्तर त्वचा प्रकट हुई तथा त्वचा से लोम और लोम से औषधि एवं वनस्पतियाँ उत्पन्न हुई । इसी प्रकार हृदय से मन, मन से चन्द्रमा प्रकट हुआ । फिर नाभि उत्पन्न हुई तथा नाभि से अपान और अपान से मृत्यु की अभिव्यक्ति हुई । तत्पश्चात् देवताओं द्वारा अन्न एवं आयतन की याचना की गयी – "ता एता देवताः सृष्टा अस्मिन् महत्यर्णवे ..... अब्रवीद्य आयतनं प्रविशतेति ॥" [44] पुनः ब्रह्म ने उन इन्द्रियाधिष्ठाता देवताओं को क्षुधा–पिपासा से युक्त कर दिया तथा उनके आयतन के लिये के लिये क्रमशः गौ तथा अश्वशरीर को दिखाया गया, जिसे देवताओं द्वारा अस्वीकृत कर दिये जाने पर उस ब्रह्म ने अन्त में मनुष्य शरीर को दिखाया गया जिसे देखकर देवतागण प्रसन्न हुए तथा स्वीकृति प्रदान की तब ब्रह्म ने कहा कि अपने–अपने आयतन में प्रवेश कर जाओ तत्पश्चात् सभी इन्द्रियों ने अपने आयतनों में प्रवेश किया ।

"अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशदादित्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशाद्दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्नोषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशंश्चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशन्मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशदापो रेतो भूत्वा शिशनं प्रविशन् ॥" [45]

अग्नि ने वागिन्द्रिय होकर मुख में प्रवेश किया, वायु ने प्राण होकर नासिकारन्ध्रों में प्रवेश किया, सूर्य ने चक्षु इन्द्रिय होकर नेत्रों में प्रवेश किया । दिशाओं ने श्रवणेन्द्रिय होकर कानों में प्रवेश किया । औषधि और वनस्पतियों ने लोम होकर त्वचा में प्रवेश किया । चन्द्रमा ने मन होकर हृदय में प्रवेश किया । मृत्यु ने अपान होकर नाभि में प्रवेश किया । पुनः ईश्वर ने देवताओं को भूख–प्यास से युक्त करके उनके लिये अन्न रचना का विचार किया– "सोऽपोऽभ्यतपत्ताभ्योऽभितप्ताभ्यो मूर्तिरजायत । या वै सा मूर्तिरजायतान्नं वै तत् ॥" [46] उसने जलों को लक्ष्य करके तप किया । उन अभितप्त आपों से एक मूर्ति उत्पन्न हुई, यह जो मूर्ति उत्पन्न हुई वही अन्न है ।

---

[44] ऐ. उप. 1/2/1–3
[45] वही 1/2/4
[46] वही 1/3/2

इस प्रकार परमात्मा द्वारा लोकपालों के आहारार्थ रचे गये अन्न को आदिपुरुष ने वागिन्द्रिय द्वारा ग्रहण करने की परन्तु वाणी से ग्रहण करने की इच्छा की, परन्तु नहीं किया जा सका तत्पश्चात् नेत्र, श्रोत्र, त्वचा, मन इत्यादि ने भी ग्रहण करने की इच्छा व्यक्त की परन्तु नहीं किया जा सका । अन्त में अपान द्वारा ही अन्नग्रहण किया गया तदनन्तर परमेश्वर ने विचार किया कि यह पिण्ड मेरे बिना कैसे रहेगा ? अतः मैं किस मार्ग से इस में प्रवेश करूँ । मेरे बिना वाणी, प्राण, नेत्र, श्रोत्र, त्वक्,मन, अपान सभी इन्द्रियों के व्यापार यदि सम्भव है तो मेरा क्या प्रयोजन है । किन्तु राजा की प्रेरणा के बिना नगर के कार्यों समान मेरी प्रेरणा के बिना इनका होना असम्भव है । परमात्मा ने मूर्द्धद्वार से शरीर में प्रवेश किया ।

ईशावास्योपनिषद् में इस पिण्ड–ब्रह्माण्ड की नियामक परमतत्त्व का सूक्ष्म एवं गहन चिन्तन किया गया है । प्रथम मन्त्र में ही कहा गया है कि यह सारा ब्रह्माण्ड ईश्वर से व्याप्त है, कोई काल और स्थान ऐसा नहीं है जहां वह विद्यमान न हो, इस संसार के अणु–अणु और कण–कण में उसकी अपारशक्ति समाहित है–

"ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥" [47]

जगत् में जो भी स्थावर–जङ्गम संसार है, वह सब ईश्वर के द्वारा आच्छादनीय है । उसके त्यागभाव से तू अपना पालन कर किसी के धन की इच्छा न कर । ब्रह्म सभी का नियामक तथा पुरुषोत्तम है । प्रलयकाल में सम्पूर्ण जगत् उसी ब्रह्म में निवास करता है तथा सम्पूर्ण जगत् के भीतर वे आत्मारूप से निवास करते हैं अतः एव जगत् की कोई ऐसी वस्तु नहीं जो परमात्मक न हो । दृश्यमान सम्पूर्ण जगत् मिथ्या है । आत्मा (ब्रह्म) ही परमार्थ है । ब्रह्म ही जगत् में आच्छादनीय है । "यथा चन्दनार्गवादेरूद ..... त्यक्तं स्यात् ॥" [48] चन्दन तथा अगरू स्वभावतः सुगन्धित पदार्थ हैं, किन्तु जल में अधिक देर तक रहने के कारण उससे भी दुर्गन्ध आने लगती है, परन्तु चन्दन तथा अगरू की दुर्गन्ध औपाधिक है, स्वभाविक नहीं । सुगन्धि उसका स्वरूप है इसलिये जब चन्दन रगड़ा जाता है, तो चन्दन की स्वाभाविक सुगन्धि आविर्भूत हो जाती है और औपाधिक दुर्गन्धि दूर हो जाती है । उसी तरह जगत् में

[47] ईश. उप. 1

[48] ईश. उप. शा. भा. 1

परमात्मत्व की भावना करने से यह जगत् छूट जाता है । आत्मतत्त्व के स्वरूप के विषय में वर्णित किया गया है–

"अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत् ।

तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥" [49]

वह आत्मतत्त्व अपने स्वरूप से विचलित न होने वाला, एक तथा मन से भी तीव्र गति वाला है । इसे इन्द्रियां प्राप्त नहीं कर सकी; क्योंकि यह उन सब गतिशीलों को अतिक्रमण कर जाता है उसके रहते हुए ही वायु समस्त प्राणियों के प्रवृत्ति रूप कर्मों का विभाग करता है ।

आत्मतत्त्व (ब्रह्मतत्त्व) इन्द्रियों का प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता है । सभी तत्त्वों का एकमात्र अधिष्ठान वही ब्रह्म तत्त्व है–

"तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।

तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥" [50]

वह आत्मतत्त्व चलता है और नहीं भी चलता । वह दूर है और समीप भी है । वह सबके अन्तर्गत है और इस सबके बाहर भी है । ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है– "स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणस्नाविर शुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ "[51] अर्थात् वह आत्मा सर्वगत, शुद्ध, अशरीरी, अक्षत स्नायु से रहित, निर्मल, अपापहत, सर्वद्रष्टा, सर्वज्ञ, सर्वोत्कृष्ट और स्वयम्भू है । उसी ने नित्य सिद्ध संवत्सर नामक प्रजापतियों के लिये यथायोग्य रीति से अर्थों का विभाग किया है । उपर्युक्त मन्त्र में ब्रह्म के स्वरूप के साथ–साथ कर्मों का भी वर्णन किया गया है । उसी ब्रह्म ने अपनी योगमाया से विभिन्न संवत्सरादि की रचना करके उनके अधिष्ठान तथा उसमें प्राणियों के यथाकर्म के विभाज्य के द्वारा सृष्टि प्रक्रिया को प्रारम्भ किया वही देव सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त होकर प्राणियों की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित है ।

---

[49] ईश. उप. 4
[50] वही 5
[51] वही 8

जगत् के कारण रूप को अश्वत्थ वृक्ष के समान बताया गया है । संसार के कार्य रूप वृक्ष के निश्चय से उसके मूल ब्रह्म का स्वरूप निर्धारण किया गया है–

"ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः ।

तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ।

तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन एतद्वै तत् ॥" [52]

संसार में अश्वत्थ वृक्ष को पीपल की संज्ञा दी गयी है; तथा इसके मूल को ब्रह्म (सगुणब्रह्म) कहा गया है । इस अश्वत्थ वृक्ष की शाखाएं नीचे की ओर, मूल ऊपर की ओर है । मूलकारण अविनाशी एवं ज्योतिस्वरूप है । जिस प्रकार सम्पूर्ण अश्वत्थ वृक्ष अपने मूल पर ही आश्रित रहकर अपने अस्तित्त्व की रक्षा करता है, उसी प्रकार समस्त प्रपञ्च उसी एकमात्र ब्रह्म पर ही अवलम्बित है । यही भाव श्री मद्भागवद्गीता में भी वर्णित है–

"ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।

छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥" [53]

आदि पुरुष नारायण वासुदेव ही नित्य, अनन्त तथा सबके आधार होने के कारण और सबसे ऊपर नित्यधाम में सगुण रूप से वास करने के कारण ऊर्ध्व नाम से कहे गये हैं । वे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ही संसार रूप वृक्ष के कारण है ।

आत्मा व्यष्टि चैतन्य के रूप में ब्रह्म का ही प्रतिबिम्ब है, जो प्रत्येक प्राणी में विद्यमान है । इसका वर्णन करते हुए कठोपनिषद् में यमराज नचिकेता से कहते हैं ।

"न जायते न म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूवकश्चित् ।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥" [54]

---

[52] क. उप. 2/3/1

[53] श्रीमद्भग. 15/1

[54] क. उप. 1/2/18

यह विपश्चित् मेधावी आत्मा न उत्पन्न होता है, न मरता है; यह न तो किसी अन्य कारण से उत्पन्न हुआ है और न स्वतः ही कुछ बना है । यह अजन्मा नित्य, शाश्वत् और पुरातन है तथा शरीर के मारे जाने पर भी स्वयं नहीं मरता ।

"अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।

तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः ॥" [55]

आत्मा को अणु से भी अणु और महान् से भी महान् बताया है । यह आत्मा जीव की हृदय रूपी गुहा में स्थित है । निष्काम पुरुष अपनी इन्द्रियों के प्रसाद से आत्मा की उस महिमा को देखता है और शोकरहित हो जाता है ।" आत्मा के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है–

"अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत् ।

अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥" [56]

जो अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय तथा रसहीन, नित्य और गन्धरहित है; जो अनादि अनन्त, महतत्त्व से भी पर और ध्रुव है उस आत्मतत्त्व को जानकर पुरुष मृत्यु के मुख से छुट जाता है । एकमात्र ब्रह्म ही सर्वशक्तिमान् तथा सबकुछ करने में समर्थ है । इसका निदर्शन केनोपनिषद् के तृतीयखण्ड (यक्षोपाख्यान) में किया गया है । परब्रह्म ने देवों पर कृपा करके उन्हें शक्ति प्रदान की, जिससे देवताओं ने असुरों पर विजय प्राप्त की । यह विजय वस्तुतः परमात्मा की ही थी, परन्तु देवताओं को स्वयं की विजय पर अभिमान हो गया, और ब्रह्म की महिमा को स्वीकार नहीं किया । देवताओं के इस मिथ्याभिमानत्व से उनका विनाश सम्भव है यहा विचार करके ब्रह्म ने देवताओं के दर्प को चूर्ण करने के उद्देश्य से यक्ष का रूप धारण किया और देवताओं के दर्प को चूर्ण करने के उद्देश्य से यक्ष का रूप धारण किया और देवताओं के समक्ष प्रकट हुए । देवतागण आश्चर्य चकित होकर देखने लगे कि दिव्य यक्ष कौन है ? अतः यह दिव्य वेशधारी कौन है यह पता लगाने के लिये क्रमशः अग्नि, वायु गये परन्तु वे ज्ञात करने में असमर्थ रहे कि दिव्य यक्ष कौन है ? अन्ततः इन्द्रदेव प्रकट हुए परन्तु यक्ष को

[55] क. उप.1/2/20

[56] वही 1/3/15

देखकर तिरोहित हो गये । उसी समय दिव्य यक्ष के स्थान पर उमादेवी प्रकट हुई उन्होनें बताया–

"सा ब्रह्मेति होवाच । ब्रह्माणो वा एतद्विजये महीयध्वमिति, ततो हैव विदाञ्चकार ब्रहेति ॥" [57]

अर्थात् वे दिव्य यक्ष साक्षात् परमेश्वर ही थे । तुमने असुरों पर विजय ब्रह्म की शक्ति से ही प्राप्त की थी तुम लोग तो इसमें निमित्त मात्र थे । अतः परमात्मा ने तुम्हारा मिथ्याभिमानत्व समाप्त करके तुम्हारा कल्याण किया है । अतः तुम अपनी शक्ति का अभिमान त्याग कर ब्रह्म की शक्ति के बिना अपनी स्वतन्त्र शक्ति से कोई भी कुछ नहीं कर सकता है अतः सर्वत्र उस मूल कारण की ही शक्ति कार्यरत् है ।

कठोपनिषद् में ब्रह्म का स्वरुप इस प्रकार बताया गया है–"य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः । तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते । तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन् ॥" [58] प्राणादि के सो जाने पर जो यह पुरुष अपने इच्छित पदार्थों की रचना करता हुआ जागता रहता है वही शुक्र (शुद्ध) है, वह ब्रह्म है और वही अमृत कहा जाता है । उसमें सम्पूर्ण लोक आश्रित है, निश्चय यही वह ब्रह्म है । एक ही परमतत्त्व तद्भिन्न पदार्थों में उसी के अनुरूप होकर प्रतीत है । जैसे–आकाश तो एक ही है; किन्तु अविद्या रूपी उपाधि के कारण आकाश के घटाकाश, महाकाश, प्रतिबिम्बाकाश तथा जलावच्छिन्नाकाश नानात्व रूप देखे जाते हैं–

"अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।

एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥"[59]

जिस प्रकार सम्पूण भुवन प्रविष्ट हुआ एक ही अग्नि प्रत्येक रूप (रूपवान् वस्तु) के अनुरूप हो गया है उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों का एक ही अन्तरात्मा उनके रूप के अनुरूप हो रहा है तथा उनसे बाहर भी है ।

ब्रह्म का तद्भिन्न वस्तुओं से तदाकारता के साथ ही उनकी उनसे निर्लिप्तता का भी वर्णन भी प्राप्त है–

---

[57] के. उप. 4/1
[58] क. उप. 2/2/8
[59] वही 2/2/9

"सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्नलिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः ।

एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोक दुःखेन बाह्यः ॥" [60]

जिस प्रकार सम्पूर्ण लोक का नेत्र होकर भी सूर्य नेत्र सम्बन्धी बाह्यदोषों से लिप्त नहीं होता उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों का एक ही अन्तरात्मा संसार के दुःख से लिप्त नहीं होता, बल्कि उनसे बाहर रहता है । श्वेताश्वतरोपनिषद् में चराचर जगत् के आधार कारण ब्रह्म का चक्ररूप से वर्णन होता है–

"तमेकनेमिं त्रिवृतं षोडशान्तं शतार्धारं विशंतिप्रत्यराभिः ।

अष्टकैः षड्भिर्विश्वरूपैकपाशं त्रिमार्गभेदं द्विनिमित्तैकमोहम् ॥"[61]

उस एक नेमि, तीन वृत्त, सोलह अन्त, पचास अरों बीस प्रत्ययों छः अष्टकों विश्वरूप एकपाश, तीन मार्गों तथा दोनों के निमित्त एक मोह वाले कारण को देखा ।

अपरब्रह्म सबका कारण है, तथा एकमात्र वही विभिन्न कार्यरूप में भासता है । कार्य–ब्रह्म का नदी रूप से वर्णन इस संसार का ही वर्णन है–

"पञ्चस्त्रोतोऽम्बु पञ्चयोन्युग्रवक्रां पञ्चप्राणोर्मिं पञ्चबुद्ध्यादिमूलाम् ।

पञ्चावर्तां पञ्चदुःखौघवेगां पञ्चाशद्भेदा पञ्चापर्वामधीमः ॥"[62]

पाचं स्त्रोत जिसमें जल की धाराएं हैं, पांच उद्गमस्थानों के कारण जो बड़ी उग्र और वक्र है, जिसमें पञ्चप्राणरूप तरंगे हैं, पाचं प्रकार के ज्ञानों का मूल जिसका कारण है, जिसमें पाचं भँवर हैं, जो पांच प्रकार के दुःख रूप ओघवेगवाली है और जो पांच पर्वोंवाली है उस पचास भेदोंवाली नदी को हम जानते हैं ।

ब्रह्मसूत्र में जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारण को ब्रह्म नाम से अभिहित किया गया है । "जन्माद्यस्य यतः" [63] अर्थात् इस जगत् के जन्म आदि (उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय)

---

[60] क.उप. 2/2/11
[61] श्वे. उप. 1/4
[62] वही 1/5
[63] ब्र. सू. शा. भा. 1/1/2

जिससे होते हैं वह ब्रह्म है । यह जो प्रत्यक्ष दृश्यमान जड़ चेतनात्मक जगत् है, जिसकी अद्भूत रचना किसी एक अंश पर भी विचार करने से सभी आश्चर्य चकित हो जाते हैं, इस विचित्र विश्व के जन्म आदि जिससे होते हैं अर्थात् जो सर्वशक्तिमान् परात्पर परमेश्वर अपनी अलौकिक शक्ति से इस सम्पूर्ण जगत् की रचना करता है, इसका धारण पोषण तथा नियमित रूप से संचालन करता है; फिर प्रलयकाल आने पर जो इस समस्त विश्व को अपने में विलीन कर लेता हैं, वह परमात्मा ही ब्रह्म है । देवता, दैत्य, दानव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि अनेक जीवों से परिपूर्ण सूर्य, चन्द्रमा, तारा तथा नाना लोक–लोकान्तर से सम्पन्न इस अनन्त ब्रह्माण्ड का कर्ता कोई अवश्य है, वही ब्रह्म है । वही सबका आदि, सबसे बड़ा, सर्वाधार, सर्वज्ञ, सर्वेश्वर, सर्वव्यापी और सर्वरूप है । यह दृश्यमान जगत् उसकी अपार शक्ति के किसी एक अंश का दिग्दर्शन मात्र है । परब्रह्म परमेश्वर को सम्पूर्ण जगत् का कर्ता होते हुए भी अकर्ता बताया है ।

"चातुर्वण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।

तस्यकर्तारमपि मां विद्धयकर्तारमव्ययम् ॥" [64]

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र इन चार वर्णों का समूह, गुण और कर्मों के विभाग पूर्वक मेरे द्वारा रचा गया है । इस प्रकार सृष्टि रचनादि कर्म का कर्ता होने पर भी मुझ अविनाशी परमेश्वर को तू वास्तव में अकर्ता ही जान अतः परब्रह्म का कर्तापन साधारण जीवों की भांति नहीं सर्वथा अलौकिक है । माण्डूक्योपनिषद् में मूल कारण को इस प्रकार बताया गया है–"एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् ॥" [65] यह सबका ईश्वर है, यह सर्वज्ञ है, यह अन्तर्यामी है और समस्त जीवों की उत्पत्ति तथा लय का स्थान होने के कारण यह सबका कारण भी है ।

[64] श्रीमद्भ. 4/13

[65] माण्डू. उप., आगम प्रकरण, 6

"नान्तः प्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम् । अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥" [66]

जो न भीतर की ओर प्रज्ञावाला है, न बाहर की ओर प्रज्ञावाला है, न अन्तःप्रज्ञ है, न बहिष्प्रज्ञ है, न उभयतः प्रज्ञ है, न प्रज्ञानघन है, न प्रज्ञ है और न अप्रज्ञ है बल्कि अदृष्ट ,अव्यवहार्य, अग्राह्य, अलक्षण, अचिन्त्य, अव्यपदेश, एकात्मप्रत्ययसार, प्रपञ्च का उपशम, शान्त, शिव और अद्वैत रूप है । वही आत्मा है और वही साक्षात् जानने योग्य है ।

कर्तापन और भोक्तापन से रहित, नित्य शुद्ध, बुद्ध मुक्त ब्रह्म को इस जगत का कारण कैसे माना जा सकता है । यह प्रश्न उपस्थित होता है । इस पर कहा गया है कि "शास्त्रयोनित्वात्" [67] वेद में उस ब्रह्म को जगत् का कारण बताया गया है । मृतिका आदि उपादानों से घट आदि वस्तुओं की रचना करने वाले कुम्भकार आदि की भांति ब्रह्म को जगत् का निमित्त कारण मानना तो युक्तिसंगत है परन्तु उसे उपादान कारण कैसे माना जा सकता है । निम्न प्रश्न का उत्तर हुए अगिम सूत्र में कहा गया है–"तत्तु समन्वयात्" [68] वह ब्रह्म समस्त जगत् में पूर्वरूप से अनुगत होने के कारण उपादान कारण भी है । जिस प्रकार अनुमान प्रमाण और शास्त्र–प्रमाण से यह सिद्ध होता है कि इस विचित्र जगत् का निमित्त कारण परब्रह्म परमेश्वर है, उसी प्रकार यह भी सिद्ध है कि वही इसका उपादान कारण भी है, क्योंकि वह इस जगत् में पूर्णतया व्याप्त है, इसका अणुमात्र भी परमेश्वर से शून्य नहीं है । श्रीमद्भगवद्गीता में भी कहा गया है–

"यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुनं ।

न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥" [69]

हे अर्जुन! जो सब भूतों की उत्पत्ति का कारण है, वह भी मैं ही हूं; क्योंकि ऐसा चर और अचर कोई भी भूत नहीं है, जो मुझ से रहित हो ।

"मया ततमिदं सर्व जगदव्यक्तमूर्तिना ।

---

[66] माण्डू. उप., आगम प्रकरण,7
[67] ब्र. सू. शा. भा. 1/1/3
[68] वही 1/1/4
[69] श्रीमद्भ. 10/39

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥" [70]

मुझ निरकार परमात्मा से यह सब जगत् जल से हिम के सदृश परिपूर्ण है और सब भूत मेरे अन्तर्गत संकल्प के आधार स्थित हैं, किन्तु वास्तव मैं उनमें स्थित नहीं हूं ।

त्रिगुणात्मिका प्रकृति जड़ है, उसमें इक्षण या संकल्प नहीं बन सकता; क्योंकि वह ईक्षण चेतन का धर्म है; अतः जड़ प्रकृति को जगत् का उपादान कारण नहीं माना जा सकता है । जगत् का उपादान कारण ब्रह्म को ही इस विषय पर कहा गया है–"ईक्षतेर्नाशब्दम्" [71] श्रुति में 'इक्ष' धातु का प्रयोग होने के कारण शब्द–प्रमाण–शून्य प्रधान त्रिगुणात्मिका जड़ प्रकृति जगत् का कारण नहीं है । छान्दोग्योपनिषद् में जगत् की सदूपता का समर्थन करते हुए कहा गया है– "सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् । तद्धैक आहुरसदेवेदमग्रं आसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सज्जायत ॥" [72] हे सोम्य ! आरम्भ में यह एकमात्र अद्वितीय सत् ही था । उसी के विषय में किन्हीं ने ऐसा भी कहा कि आरम्भ में यह एकमात्र अद्वितीय सत् ही था । उस असत् से सत् की उत्पत्ति होती है–"तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत । तत्तेज ऐक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तदपोऽसृजत । तस्माद्यत्र क्व च शोचसि स्वेदते वा पुरुषस्तेजस एव तदध्यापो जायन्ते ॥" [73] उस सत् ने ईक्षण किया 'मैं बहुत हो जाऊं' अनेक प्रकार से उत्पन्न होऊं । इस प्रकार ईक्षण कर उसने तेज उत्पन्न किया उस तेज ने ईक्षण किया और जल की रचना की । इसी से पुरुष जहां कही शोक सन्ताप करता है उसे पसीने आ जाते हैं उस समय वहां तेज से ही जल की उत्पत्ति होती है । यहां सद् ब्रह्म का उपर्युक्त उपदेश महर्षि आरूणि द्वारा पुत्र श्वेतकेतु को दिया गया है । छान्दोग्योपनिषद् में जो कुछ दृश्यादृश्य है वह सब ब्रह्म ही है । सबको ब्रह्म की संज्ञा दी हुई है–"सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत ॥" [74] अर्थात् यह सारा जगत् निश्चय ब्रह्म ही है । यह उसी से उत्पन्न होने वाला, उसी में लीन होने वाला तथा उसी में चेष्टा करने वाला है । इस प्रकार जड़ प्रकृति को चेतनता के अभाव में कारण नहीं माना गया है । सभी उपनिषद् वाक्यों का प्रवाह समान रूप से चेतन को ही जगत् का कारण बताने में

---

[70] श्रीमद्भ. 9/4
[71] ब्र. सू. शा. भा. 1/1/5
[72] छा. उप. 6/2/1
[73] वही 6/2/3
[74] वही 3/14/1

है–"गतिसामान्यात्"[75] सभी वेदान्तों में कारण ज्ञान समान है, अतः चेतन ही जगत् का कारण है, प्रधान नहीं ।

तैत्तिरीयोपनिषद् में परमात्मा से सृष्टि के उत्पत्ति क्रम को क्रमशः इस प्रकार बताया है–"तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः । आकाशाद्वायु । वायोरग्निः । अग्नेरापः । अद्भ्य पृथिवी । पृथिव्या ओषधयः । ओषधीभ्योऽन्नम् । अन्नात्पुरुषः । स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः ॥" [76] आत्मा से आकाश उत्पन्नहुआ । आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथिवी से ओषधियों से अन्न और अन्न से पुरुष उत्पन्न हुआ । वह यह पुरुष अन्न एवं रसमय ही है । मुण्डकोपनिषद् में भी ब्रह्म का सर्वकारणत्व सिद्ध किया है–

"एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।

खं वायुज्योतिर्रापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ॥" [77]

इस अक्षर पुरुष से ही प्राण उत्पन्न होता है तथा इससे ही मन, सम्पूर्ण इन्द्रियां, आकाश, वायु, तेज, जल और सारे संसार को धारण करने वाली पृथ्वी उत्पन्न होती है । इस प्रकार सभी उपनिषद् वाक्यों में समानरूप से चेतन परमात्मा को ही जगत् का कारण बताया गया है; इसलिये जड़ प्रकृति को जगत् का कारण नहीं माना जा सकता है । ब्रह्मसूत्र में पुनः कहा गया है–"श्रुतत्वाच्च" [78] श्रुतियों द्वारा यही बात कही गयी है इसलिये भी परब्रह्म परमेश्वर ही जगत् का कारण सिद्ध होता है । जिस प्रकार अग्नि से स्फुल्लिङ्गों की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति होती है । यह अक्षरब्रह्म सत्य है जिस प्रकार अत्यन्त प्रदीप्त अग्नि से उसी के समान रूप वाली हजारों चिनगारियां निकलती हैं । हे सोम्य ! उसी प्रकार उस अक्षर ब्रह्म से अनेकों भाव प्रकट होते है और उसी में लीन हो जाते है । पर्वत, नदी, औषधि आदि का ब्रह्मजन्यत्व सिद्ध किया है–

"अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मात्स्यन्दते सिन्धवः सर्वरूपाः ।

---

[75] ब्र. सू. शा. भा. 1/1/10
[76] तै. उप. 2/1/1
[77] मुण्ड. उप. 2/1/3
[78] ब्र. सू. शा. भा. 1/2/1

अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा ॥" [79]

इसी से समस्त समुद्र और पर्वत उत्पन्न हुए है; इसी से अनेक रूपों वाली नदियां बहती है; इसी से सम्पूर्ण ओषधियां और रस प्रकट हुए है; जिस रस से भूतों से परिवेष्टित हुआ यह अन्तरात्मा स्थित होता है ।

ब्रह्मसूत्र में ब्रह्म के लिये आकाश, प्राण, ज्योतिः शब्दों का प्रयोग किया गया है जो ब्रह्म के वाचक है । इन सभी नामों से उपनिषद् में जो जगत् के कारण और उपास्य देव का वर्णन आया है वह परब्रह्म परमात्मा का ही वर्णन है । ब्रह्मसूत्र में बताया गया है–"सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात्" [80] सम्पूर्ण वेदान्त वाक्यों में जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारण रूप से प्रसिद्ध परब्रह्म का ही उपास्यदेव के रूप में उपदेश हुआ है । श्रीमद्भगवद्गीता में भी कहा गया है–

"बहिरन्तरश्च भूतानामचरं चरमेव च ।

सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥" [81]

वह परमात्मा चराचर सब भूतों के बाहर–भीतर परिपूर्ण है तथा चर और अचर भी है, वह सूक्ष्म होने से अविज्ञेय है तथा अति समीप में और दूर में भी स्थित है वही है जैसे सूर्य की किरणों में स्थित हुआ जल सूक्ष्म होने से साधारण मनुष्यों के जानने में नहीं आता है, वैसे ही सर्वव्यापी परमात्मा भी सूक्ष्म होने से साधारण मनुष्यों के जानने में नहीं आता है । वह परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण और सबका आत्मा होने से अत्यन्त समीप है ।

छान्दोग्योपनिषद् में भी ब्रह्म तत्त्व को सूक्ष्म से भी सूक्ष्म तथा महान् से भी महत्तम बताया है । यहां श्वेतकेतु जिज्ञासा व्यक्त करते हैं कि यह अत्यन्त स्थूल पृथिवी आदि नाम रूपों वाला संसार, अत्यन्त सूक्ष्म, सद्रूप नामरूपादि रहित सत् से कैसे उत्पन्न होता है ? अर्थात् अत्यन्त सूक्ष्म आत्मतत्त्व (ब्रह्म) से यह अत्यन्त स्थूल नामरूपात्मक जगत् कैसे आविर्भूत होता है ? यहां महर्षि उद्दालक अपने पुत्र को श्वेतकेतु की जिज्ञासा को शान्त करने हेतु न्यग्रोध फल का

[79] मुण्ड. उप. 2/1/9
[80] ब्र. सू. शा. भा. 1/2/1
[81] श्रीमद्भ. 13/15

दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं–महर्षि उद्दालक श्वेतकेतु को वट का एक फल लाने का आदेश देते हैं । श्वेतकेतु लाये हुए फल को आदेशानुसार फोड़ते है । पुनः महर्षि उद्दालक श्वेतकेतु को फल के अन्दर देखने का आदेश देते हैं । श्वेतकेतु फल के अन्दर देखकर बताते हैं कि इसमें दाने हैं । महर्षि उद्दालक पुनः दोनों दानों को फोड़कर देखने को कहते हैं परन्तु श्वेतकेतु बताते है कि हे तात् ! इसमें कुछ भी नहीं दिखाई देता है । श्वेतकेतु के ऐसा कहने पर उद्दालक ने कहा कि हे सोम्य ! इस वट वृक्ष की जिस शक्ति (अणिमा) को तू नहीं देखता है, हे सोम्य ! उस अणिमा का ही यह इतना बड़ा वट वृक्ष है यथा–

"न्यग्रोधफलमत आहरेतीदं भगव इति भिन्द्धीति भिन्न भगव इति किमत्र पश्यसीत्यण्व्य इवेमा धाना भगव इत्यासामड़ैकां भिन्द्धीति भिन्ना भगव इति किमत्र पश्यसीति न किञ्चन भगव इति तं होवाच यं वै सोम्यैतमणिमानं न निभालयस एतस्य वै सोम्यैषोऽणिम्न एवं महान्न्यग्रोधस्तिष्ठति श्रद्धत्स्व सोम्येति ॥" [82]

यहां अणिमा का तात्पर्य अणु है । न्यग्रोध फल के दृष्टान्त के माध्यम महर्षि उद्दालक ने समाधान प्रस्तुत किया है । जिस प्रकार सूक्ष्म बीज कालान्तर में विशाल वट–वृक्ष के रूप में परिणत हो जाता है; उसी प्रकार सूक्ष्म आत्मतत्त्व भी स्थूल प्रपञ्चात्मक जगत् में उत्पन्न हो जाता है ।

यह समस्त सृष्टि एकमात्र सद्ब्रह्म से व्याप्त एवं ओत्प्रोत है । ब्रह्म की सर्वत्र विद्यमानता को भी आरूणि लवण के दृष्टान्त के माध्यम से पुत्र श्वेतकेतु को समझाते हैं कि पिता श्वेतकेतु को नमक की डली पानी में डालने को कहते हैं एवं अगले दिन पानी में डाले गये नमक को लाने का आदेश देते हैं । नमक जल में विलीन हो जाता है इस प्रकार पिता आरूणि पुत्र श्वेतकेतु को समझाते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार नमक जल में ऊपर, नीचे, मध्य सर्वत्र पूर्णतया विद्यमान है । उसी प्रकार वह सत् भी निश्चय से यही विद्यमान है । उसी प्रकार वह सत् भी निश्चय से यही विद्यमान है, किन्तु तुम उसे देख नहीं सकते–

[82] छा. उप. 6/12/1–2

"यथा विलीनमेवाङ्गस्यान्तादाचामेति कथमिति लवणमिति मध्यादाचामेति कथमिति लवणमित्यन्तादाचामेति कथमिति लवणमित्यभिप्रास्यैतदथ मोपसीदथा इति .....निभालयसेऽत्रैव कितेति ॥" [83]

सर्वत्र व्याप्त आत्मतत्त्व के विषय में कहा गया है कि वह अज्ञेय एवं अनिर्वचनीय तत्त्व है–

"न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्यो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि ॥" [84]

इस मन्त्र में परब्रह्म के निर्गुण स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है । इसमें स्पष्ट किया गया है कि सच्चिदानन्दघन परब्रह्म को अन्तःकरण एवं इन्द्रियां नहीं जान सकती है । अलौकिक दिव्य तत्त्व में इनका प्रवेश सम्भव नहीं है किन्तु इनमें चेतना एवं क्रिया उसी ब्रह्म की प्रेरणा तथा शक्ति से होती है । उसी ब्रह्म के विषय में कहा गया है–

"यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥" [85]

जो वाणी से प्रकाशित नहीं है, किन्तु जिससे वाणी प्रकाशित होती हैं उसी को तू ब्रह्म जान, जिस इस (देशकालावच्छिन्न वस्तु) की लोक उपासना करता है वह ब्रह्म नहीं है । ब्रह्मसूत्र में परब्रह्म के लिये विभिन्न विशेषणों का प्रयोग किया गया है जिनमें एक अन्तर्यामी नामक विशेषण भी है–"अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात्" [86] आधिदैविक और आध्यात्मिक आदि समस्त वस्तुओं में जिसे अन्तर्यामी बतलाया गया है वह परब्रह्म ही है क्योंकि वहां उसी के धर्मों का वर्णन है । बृहदारण्यकोपनिषद् में यह प्रसङ्ग. आया है कि उद्दालक ऋषि ने याज्ञवल्क्य मुनि से पहले तो सूत्रात्मा के विषय में प्रश्न किया; फिर उस अन्तर्यामी के सम्बन्ध में पूछा है, जो इस लोक और परलोक को तथा समस्त भूत प्राणियों को उनके भीतर नियन्त्रण में रखता है । अन्तर्यामी का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हुए उसे जड़–चेतनात्मक समस्त भूतों सब इन्द्रियों और जीवों का नियन्ता बताकर अन्त में इस प्रकार कहा है–

---

[83] छा. उप. 6/13/2
[84] के. उप. 1/3
[85] वही 1/4
[86] ब्र. सू. शा. भा. 1/2/18

"एष त आत्मान्तर्याम्यमृतोऽदृष्टो द्रष्टाश्रुतः श्रोतामतो मन्ताविज्ञातो विज्ञाता नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा नान्योऽतोऽस्ति श्रोता नान्योऽतोऽस्ति मन्ता नान्योऽतोऽस्ति विज्ञातैष त आत्मान्तर्याम्यमृतोऽतोऽन्यदार्तं ततो होद्दालक आरुणिपरराम ॥" [87]

यह तुम्हारा अन्तर्यामी अमृतस्वरूप आत्मा देखने में न आने वाला किन्तु स्वयं सबको देखने वाला है, सुनने में न आने वाला किन्तु स्वयं सब कुछ सुनने वाला, मनन करने में न आने वाला किन्तु स्वयं सबका मनन करने वाला वह विशेष रूप से किसी की जानने में नहीं आता किन्तु स्वयं सबको भलीभांति जानता है । ऐसा यह तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी अमृत है । इस से भिन्न सब कुछ विनाशशील है । परब्रह्म परमेश्वर को अदृश्यता आदि गुणों से युक्त बताया है– "अदृश्यत्वादिगुणयुक्तो धर्मोक्तेः" [88] अदृश्यता आदि गुणों वाला परब्रह्म परमेश्वर ही है; क्योंकि उस जगह उसी की सर्वज्ञता आदि धर्मों का वर्णन है । मुण्डकोपनिषद् में महर्षि शौनक अङ्गिऱा ऋषि की शरण में गये और पूछा कि किसको जान लेने पर सब कुछ जाना हुआ हो जाता है ? इस पर अङ्गिऱा ऋषि ने उत्तर दिया कि जानने योग्य दो विद्याएं है एक अपरा और दूसरी परा । परा विद्या वह है, जिससे उस अक्षर ब्रह्म को जाना जाता है । उस अक्षर ब्रह्म को समझाने के लिये अङ्गिऱा ने उसके गुण और धर्मों का वर्णन करते हुए कहा है–

"यत्तदद्रेश्मयग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुः श्रोत्रं तदपाणिपादम् । नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ॥" [89]

वह जो अदृश्य,अग्राह्य, अगोत्र, अवर्ण और चक्षु श्रोत्रादिहीन है, इसी प्रकार अपाणिपाद, नित्यं, विभु, सर्वगत अत्यन्त सूक्ष्म और अव्यय है तथा जो सम्पूर्ण भूतों का कारण है उसे विवेकी लोग सब ओर देखते हैं । समस्त भूतों के कारण परब्रह्म परमेश्वर ही है इसकी पुष्टि करते हुए ब्रह्मसूत्रकार ने बताया है–"रूपोपन्यासाच्च" [90] श्रुति में उसी के निखिल लोकमय विराट् स्वरूप का वर्णन किया गया है, इससे भी सिद्ध होता है कि वही समस्त भूतों का कारण है । मुण्डकोपनिषद् में परब्रह्म परमेश्वर के सर्वलोकमय विराट्स्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया गया है–

---

[87] बृ.उप. 3/7/23
[88] ब्र. सू. शा. भा. 1/2/21
[89] मु. उप. 1/1/6
[90] ब्र. सू. शा. भा. 1/2/23

"अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग् विवृताश्च वेदाः ।

वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥" [91]

अग्नि इस परमेश्वर का मस्तक है, चन्द्रमा और सूर्य दोनों नेत्र है, सब दिशाएं दोनों कान हैं और प्रकट हुए वेद उसकी वाणी है । वायु इसका प्राण और सम्पूर्ण विश्व हृदय है । इसके पैरों से पृथिवी उत्पन्न हुई है । यह समस्त प्राणियों का अन्तरात्मा है ।

"तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूताः साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि ।

प्राणापानौ ब्रीहियवौ तपश्च श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च ॥" [92]

उससे ही कर्म के अङ्गभूत बहुत से देवता उत्पन्न हुए तथा साध्यगण मनुष्य, पशु, पक्षी, प्राण–अपान, ब्रीहि, यव, तप, श्रद्धा, सत्य, ब्रह्मचर्य और विधि ये सब भी उसी से उत्पन्न हुए हैं ।

"सप्तप्राणाः प्रभवन्ति तस्मात् सप्तार्चिषः समिधः सप्तहोमाः ।

सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा गुहाशया निहिताः सप्त सप्त ॥" [93]

उस पुरुष से ही सात प्राण (सात इन्द्रियां) उत्पन्न हुए है । उसी से उनकी सात दीप्तियां, सात समिधा, सात होम और जिनमें वे सञ्चार करते हैं वे सात स्थान प्रकट हुए हैं । इस प्रकार प्रतिदेह में स्थापित ये सात–सात पदार्थ उस पुरुष से ही प्रकट हुए है ।

ब्रह्मसूत्र में परब्रह्म परमात्मा के लिये प्रयुक्त विशेष शब्दों में एक 'वैश्वानर' नाम भी है । वैश्वानर नाम से परब्रह्म का ही वर्णन किया गया है–

"वैश्वानरः साधारणशब्द विशेषात्" [94] माण्डूक्योपनिषद् में आत्मा को चार पादों वाला बताया है । आत्मा के प्रथम पाद को यहां वैश्वानर नाम से अभिहित किया है–

---

[91] मु. उप. 2/1/4
[92] वही 2/1/7
[93] वही 2/1/8
[94] ब्र. सू. शा. भा. 1/2/24

"जागरितस्थानो बहिष्प्रज्ञः सप्ताङ्ग. एकोनविशंतिमुखः स्थुलग्वैश्वानरः प्रथमः पादः ॥" [95] जाग्रत अवस्था जिसकी अभिव्यक्ति का स्थान है, जो बहिः प्रज्ञ, सात अंगो वाला, उन्नीस विषयों का भोक्ता है वह वैश्वानर पहला पाद है । छान्दोग्योपनिषद् के पाचवें अध्याय के ग्यारहवें काण्ड से जो प्रसङ्ग. आरम्भ हुआ है उसमें प्राचीनशाल सत्ययज्ञ, इन्द्रद्युम्न, जन तथा बुडिल ये पाचों ऋषि श्रेष्ठ गृहस्थ और महान् वेदवेत्ता थे इन्होनें एकत्र होकर विचार किया कि हमारा आत्मा कौन और ब्रह्म का स्वरूप क्या है ? प्रश्न का उत्तर जानने के लिये पाचों उद्दालक मुनि के पास गये । उद्दालक मुनि द्वारा राजा अश्वपति को वैश्वानर आत्मा बताये जाने पर सभी उनके पास गये । राजा के समक्ष आत्मा विषयक प्रश्न उपस्थित किया । राजा ने क्रमशः एक–एक से पूछा कि इस विषय में आप क्या जानते हैं तो उनमें से प्राचीन शाल ने उत्तर दिया कि मैं द्युलोक को आत्मा समझकर उपासना करता हूं । इन्द्रद्युम्न ने कहा– मैं वायु की उपासना करता हूं । जन ने अपने को आकाश और बुडिल ने जल का उपासक बताया । इनके उत्तर सुनकर राजा ने कहा–आप लोग विश्व के आत्मा वैश्वानर की उपासना तो करते हैं परन्तु उसके एक–एक अङ्ग.की ही उपासना आपके द्वारा होती है अतः यह सर्वाङ्गपूर्ण नहीं है–

"तस्य ह वा एतस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूर्धैव सुतेजाश्चक्षुर्विश्वरूपः प्राणः पृथक्वर्त्मात्मा संदेहो बहुलो बस्तिरेव रयिः पृथिव्येव पादावुर एव वेदिर्लोकानि बर्हिर्हृदय गार्हपत्यो मनोऽन्वाहार्यपचन आस्यमाहवनीयः ॥" [96]

अर्थात् उस विश्व के आत्मा वैश्वानर का द्युलोक मस्तक है, सूर्य नेत्र है, वायु प्राण है, आकाश शरीर का मध्यभाग है, जल बस्तिस्थान है, पृथिवी दोनों चरण है, वेदी वक्षःस्थल है, दर्भ लोम है गार्हपत्य अग्नि हृदय है, अन्वाहार्य अग्नि मन है और आहवनीय अग्नि मुख है । यहां विश्व के आत्मा रूप विराट् पुरुष को ही वैश्वानर कहा गया है ।

सर्वान्तर्यामी परब्रह्म परमात्मा के व्यापक रूप का प्रतिपादन करते हुए बताया गया है– "द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दात्" [97] उपनिषदों में जिसको स्वर्ग और पृथिवी का आधार बताया गया है

[95] माण्डू.उप., आगम प्रकरण, 3
[96] छा. उप. 5/18/2
[97] ब्र. सू. शा. भा. 1/3/1

। वह परब्रह्म परमात्मा ही है क्योंकि वहां उस परमात्मा के बोधक आत्मा शब्द का प्रयोग हुआ है–

"यस्मिन्द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मनः सहप्राणैश्च सर्वैः ॥"

तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथामृतस्यैष सेतु ॥" [98]

जिसमें द्युलोक, पृथिवी, अन्तरिक्ष और सम्पूर्ण प्राणों के सहित मन ओत्प्रोत है उस एक आत्मा को ही जानो, और सब बातों को छोड़ दो यही अमृत (मोक्षप्राप्ति) का सेतु (साधन) है । ब्रह्मसूत्र में अक्षर शब्द भी परब्रह्म परमात्मा का ही वाचक बताया है क्योंकि उसको आकाशपर्यन्त सम्पूर्ण जगत् को धारण करने वाला बताया गया है–"अक्षरमम्बरान्तधृतेः" [99] याज्ञवल्क्य–गार्गी संवाद के माध्यम से अक्षर ब्रह्म का वर्णन बृहदारण्यकोपनिषद् में प्राप्त होता है । इस संवाद के माध्यम से गार्गी महर्षि याज्ञवल्क्य से दो प्रश्न पूछती है । द्वितीय प्रश्न का उत्तर स्पष्टतः अक्षर स्वरूप परब्रह्म को निर्देशित करता है । गार्गी ने याज्ञवल्क्य से पूछा–कि जो द्युलोक से ऊपर है, जो पृथिवी से नीचे है और जो द्युलोक और पृथिवी के मध्य में है और स्वयं भी जो ये द्युलोक और पृथिवी है तथा जिन्हें भूत और भविष्य कहते हैं वह काल किसमें ओत्प्रोत है ? इसके उत्तर में याज्ञवल्क्य ने कहा गार्गि ! यह सब आकाश में ओत्प्रोत है तब गार्गि ने पूछा वह आकाश किसमें ओत्प्रोत है ? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि आकाश तो स्वयं ही विभु, व्यापक, नित्य तथा अनन्त है अतः इस अनन्त आकाश को किसमें ओत्प्रोत माना जाए इसके उत्तर में याज्ञवल्क्य कहते हैं कि हे गार्गि ! जिसमें आकाश ओत्प्रोत है उसे ब्रह्मवेता अक्षर कहते हैं यथा–

"स होवाचैतद् वै तदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा ..... किञ्चन न तदश्नाति कश्चन ॥" [100] जो कि न स्थूल है, न सूक्ष्म है, न छोटा है, न बड़ा है, न लाल है, न द्रव है, न छाया है, न तम है, न वायु है, न आकश है, न सङ्ग. है, न रस है, न गन्ध है, न नेत्र है, न कान है, न वाणी है, न मन है, न तेज है, न प्राण है, न मुख है, न माप है, उसमें न अन्तर है, न बाहर है, वह कुछ भी नहीं खाता उसे कोई भी नहीं खाता ।

---

[98] मु. उप. 2/2/5

[99] ब्र. सू. शा. भा. 1/3/10

[100] बृ. उप. 3/8/8

कारण एवं कार्य के विषय में विचार करने पर यह तो ज्ञात होता है कि कारण सदैव अपने कार्य को धारण करता है । लेकिन प्रकृति को कारण मानने वाले यह भी कह सकते हैं कि आकाशपर्यन्त सभी भूतों को प्रकृति धारण करती है और अक्षर शब्द को प्रकृति का ही वाचक मानते हैं । लेकिन ब्रह्मसूत्रकार ने अक्षर शब्द को परब्रह्म का वाचक बताया गया है । इस शंका का निवारण करते हुए कहा गया है–"सा च प्रशासनात्" [101] वह आकाश पर्यन्त सबभूतों को धारण करना रूप क्रिया परमेश्वर की ही है क्योंकि अक्षर को सब पर शासन करने वाला कहा गया है । बृहदारण्यकोपनिषद् में परब्रह्म का अक्षर रूप में निरूपण किया गया है–

"एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठत एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि द्यावापृथिव्यौ विधृतौ तिष्ठत ॥" [102]

हे गार्गि! इस अक्षर के ही प्रशासन में सूर्य और चन्द्रमा विशेष रूप से धारण किये हुए स्थित रहते हैं । इस अक्षर के ही प्रशासन में द्युलोक और पृथिवी विशेष रूप से धारण किये हुए रहते हैं । यहां अक्षर का जो स्वरूप एवं लक्षण बताया गया है वह परब्रह्म का ही लक्षण है–हे गार्गि! यह अक्षर स्वयं दृष्टि का विषय नहीं, किन्तु श्रोता है, मनन का विषय नहीं, किन्तु मन्ता है, स्वयं अविज्ञात रहकर दूसरों का विज्ञाता है, इससे भिन्न कोई दृष्टा नहीं है, कोई श्रोता नहीं है । हे गार्गि ! निश्चय इस अक्षर में ही आकाश ओत्प्रोत है । "पत्यादिशब्देभ्यः" [103] अर्थात् परब्रह्म के लिये प्रयुक्त विभिन्न विशेषणों में पति, परमपति, परममहेश्वर आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है । वेद में जगत् की कारणों का वर्णन अनेक प्रकार से किया गया है तथा जगत् के उत्पत्ति का क्रम भी वर्णित किया गया है । ब्रह्मसूत्रकार ने भी बताया है–"कारणत्वे न चाकाशादिषु यथाव्यपदिष्टोक्तेः" [104]आकाश आदि किसी भी रचना क्रम से रचे जाने वाले पदार्थों में कारण रूप से सर्वत्र एक ही वेदान्त वर्णित ब्रह्म का प्रतिपादन किया गया है इसलिये परब्रह्म ही जगत् का कारण है । यहां परब्रह्म को कारण मानने में कोई दोष नहीं है ,क्योंकि आकाशादि जो जगत् के दूसरे कारण कहे गये है उनका भी परमकारण परब्रह्म ही है अतः ब्रह्म की ही कारणता सर्वत्र परिलक्षित होती है, अन्य किसी की नहीं । जगत् के उत्पत्ति क्रम जो भेद

[101] ब्र. सू. शा. भा. 1/3/11
[102] बृ. उप. 3/8/9
[103] ब्र. सू. शा. भा. 1/3/43
[104] वही 1/4/14

दिखाई देता है तैत्तिरीयोपनिषद् में श्रुति के द्वारा आकाश आदि के क्रम से सृष्टि बतायी है– "आत्मनः आकाशः सम्भूतः" [105] कही पर "तत्तेजोऽसृजत" [106] तेज आदि के क्रम से सृष्टि का प्रतिपादन किय गया है । ऐतरेयोपनिषद् में "स इमॉल्लोकानसृजत । अम्भो मरीचीर्मरमापः" [107] उसने अम्भ, मरीचि, मर और आप इन लोकों की रचना की । तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है– "असद्वा इदमग्र आसीत्" [108] पहले यह असत् ही था, इसी से सत् उत्पन्न हुआ । छान्दोग्योपनिषद् में "सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्" [109] आरम्भ में यह एकमात्र अद्वितीय सत् ही था ।

इस प्रकार उपनिषदों कही तो असत्, कही पर केवल सत् ही था ऐसा वर्णन है अतः प्रश्न उपस्थित होता है कि असत् आदि शब्द ब्रह्म के वाचक कैसे हो सकते है ? इसके उत्तर में कहा गया है–"समाकर्षात्" [110] आगे–पीछे कहे हुए वाक्य का पूर्णरूप से आकर्षण करके उसके साथ सम्बन्ध जोड़ लेने से असत् आदि भी ब्रह्म के ही वाचक सिद्ध होते हैं । तैत्तिरीयोपनिषद् में जो कहा गया है कि पहले असत् ही था इसी से सत् उत्पन्न हुआ । यहां असत् शब्द अभाव या मिथ्या का वाचक नहीं है क्योंकि इससे पूर्व भी सत्य, ज्ञान, अनन्त कहकर ब्रह्म का लक्षण किया है फिर आकाश आदि से जगत् की उत्पत्ति बतायी है । इस प्रकार पूर्वापर प्रसंग अनुसार असत् शब्द का अर्थ 'अप्रकट ब्रह्म' और उससे होने वाले सत् का अर्थ जगत् रूप में प्रकट ब्रह्म ही होगा । तैत्तिरीयोपनिषद् की भृगुवल्ली में भृगु अपने पिता वरुण के पास जाकर ब्रह्मविषयक प्रश्न करते हैं तथा वरुण द्वारा ब्रह्मोपदेश दिया जाता है । यहां पिता वरुण के आदेशानुसार भृगु ब्रह्म प्राप्ति के तप करना प्रारम्भ करते हैं । भृगु का ज्ञान व्यष्टि से समष्टि की ओर अग्रसर होता है । महर्षि वरुण ने भृगु को अन्न, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन तथा वाणी ये ब्रह्मप्राप्ति के द्वार बताये जो कि अपरब्रह्म की प्राप्ति के साधन है । महर्षि भृगु तप के माध्यम से इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अन्न ही ब्रह्म है; यथा–"अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्" [111] अन्न ही ब्रह्म है क्योंकि समस्त भूत पदार्थ अन्न से ही उत्पन्न होते हैं, अन्न द्वारा जीवित रहते हैं;

---

[105] तै.उप. 2/1/1
[106] छा.उप. 6/2/3
[107] ऐ. उप. 1/1/2
[108] तै.उप. 2/7/1
[109] छा.उप. 6/2/1
[110] ब्र. सू. शा. भा. 1/4/15
[111] तै.उप. 3/2/1

तथा पुनः अन्न में ही लीन हो जाते हैं । पुनः तप के बाद भृगु इस निष्कर्ष पर पहुचे कि "प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्" [112] प्राण ही ब्रह्म है । तदनन्तर भृगु निरन्तर तप के द्वारा "मनो ब्रह्मेति व्यजानात्"[113] मन ही ब्रह्म है, "विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्"[114] विज्ञान ब्रह्म है तथा "आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्"[115] आनन्द ही ब्रह्म है इस निष्कर्ष पर पहुचें यहां महर्षि भृगु ने ब्रह्म की सिद्धि हेतु अन्नादि को आधार बनाया है, उसका एक क्रम है जिसे पञ्चकोष की संज्ञा दी जाती है । यहां ब्रह्म को आनन्दमय रूप में माना गया है आनन्दमय कोष समस्त कोषों का केन्द्र बिन्दु है । यह कोष जीवात्मा की संज्ञा से अभिहित न होकर ब्रह्म की संज्ञा से अभिहित होता है ।

कार्य अपने कारण में सदैव रहता है इसीलिये कारण से कार्य की उपलब्धि होती है । ब्रह्मसूत्रकार ने भी इसकी पुष्टि की है–"भावे चोपलब्धेः" [116] कारण में शक्ति रूप से कार्य की सत्ता होने पर ही उसकी उपलब्धि होती है, इसलिये यह सिद्ध होता है कि यह जगत् अपने कारण ब्रह्म में सदैव स्थित है क्योंकि जो वस्तु विद्यमान होती है, उसकी उपलब्धि होती है जैसे खरगोश के सींग और आकाश पुष्प की भांति जिसका सर्वथा अभाव होता है, उसकी उपलब्धि नहीं होती है । यह जड़–चेतनात्मक जगत् अपने कारण रूप परमेश्वर में शक्तिरूप से अवश्य विद्यमान है और सदैव अपने कारण से अभिन्न है । ब्रह्म में जगत् की विद्यमानता को पुनः स्पष्ट करते हुए कहा है–"पटवच्च" सूत में वस्त्र की भांति ब्रह्म में जगत् पहले से ही स्थित है । कपड़ा सूत में अप्रकट रहता है, परन्तु बुनने के बाद प्रकट रूप दिखाई देता है अतः प्रकट होने के बाद व पहले दोनों ही अवस्थाओं में वस्त्र अपने कारणरूप पट में विद्यमान है और उससे अभिन्न भी है । यही अवस्था ब्रह्म एवं जगत् के सन्दर्भ में स्वीकार करनी चाहिए । सामान्यतः ऐसा देखा जाता है कि किसी वस्तु का निर्माण करने के लिये साधन सामग्री देखी जाती है परन्तु ब्रह्म के सन्दर्भ में ऐसी कोई सामग्री नहीं है अतः प्रश्न उपस्थित होता है कि ब्रह्म किसके द्वारा जगत् रचना में प्रवृत होता है उत्तर में कहा गया है–"उपसंहारदर्शनान्नेति चेन्न

[112] तै.उप. 3/3/1
[113] वही 3/4/1
[114] वही 3/5/1
[115] वही 3/6/1
[116] ब्र. सू. शा. भा. 2/1/15

क्षीरवृद्धि" [117] यदि लोक में घट आदि बनाने के लिये साधन–सामग्री का संग्रह देखा जाता है, किन्तु ब्रह्म के पास कोई साधन नहीं है, इसलिये ब्रह्म जगत् का कर्ता नहीं है तो ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि दूध की भांति ब्रह्म को अन्य साधनों की अपेक्षा नहीं है । लोक में घड़ा, वस्त्र आदि बनाने के लिये कार्यकर्ता तथा मिट्टी, दण्ड, चाक और सूत करघा आदि साधनों का संग्रह अवश्य देखा जाता है; किन्तु ब्रह्म को एकमात्र, अद्वितीय, निराकार, निष्क्रिय कहा जाता है, और वह बिना साधन सामग्री के भी जगत् रचना उसी प्रकार कर सकते हैं जैसे दूध अपनी सहज शक्ति से किसी बाह्य साधन की सहायता लिये बिना ही दहीरूप में परिणत हो जाता है । उसी प्रकार परमात्मा भी अपनी स्वाभाविक शक्ति से जगत् का स्वरूप धारण कर लेता है जैसे मकड़ी भी जाला बनाने के लिये किसी अन्य साधन की अपेक्षा नहीं करती है वैसे ही परब्रह्म भी किसी अन्य साधन का सहारा लिये बिना अपनी अचिन्त्य शक्ति से ही जगत् की रचना करता है । श्वेताश्वतरोपनिषद् में भी परब्रह्म को सम्पूर्ण योनियों का उत्पत्तिस्थान बताया है ।

"यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको विश्वानि रूपाणि योनीश्च सर्वाः ।

ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैर्बिभर्ति जायमानं च पश्येत् ॥" [118]

जो अकेला ही प्रत्येक स्थान तथा सम्पूर्ण रूप और समस्त योनियों का अधिष्ठान है, तथा जिसने सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न हुए कपिल ऋषि को ज्ञानसम्पन्न किया था और जन्म लेते हुए भी देखा था । अतः परब्रह्म ही कारण है और वही कार्य रूप में अभिव्यक्त होते हैं । श्वेताश्वतरोपनिषद् में एक ही परमात्मा में शासक और शासकीय भाव का समर्थन किया गया है–"य एको जालवानीशत ईशनीभिः सर्वाल्लोकानीशतः ईशनीभिः । य एवैक उद्भवे सम्भवे च य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥" [119] जो एक जालवान् (मायावी) अपनी ईश्वरीय शक्तियों से शासन करता है, जो अकेला ही जगत् के प्रादूर्भाव के समय अपनी शक्तियों से सम्पूर्ण लोकों का शासन करता है ।

"एको हि रूद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमाल्लोकानीशत ईशनीभिः ।

---

[117] ब्र. सू. शा. भा. 2/1/24
[118] श्वे. उप. 5/2
[119] वही 3/1

प्रत्यड.जनांस्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः ॥"[120]

क्योंकि एक ही रूद्र है, इसलिये उससे भिन्न किसी अन्य वस्तु के लिये अपेक्षा नहीं करते । वह अपनी शक्तियों द्वारा इन लोकों का शासन करता है, वह समस्त जीवों के भीतर स्थित है, और सम्पूर्ण लोकों की रचना कर उनका रक्षक होकर प्रलयकाल में उन्हें संकुचित कर लेता है । परमेश्वर से जगत् की सृष्टि का प्रतिप्रदान करते हुए बताया है–

"विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।

सं बाहुभ्यां धमति संपतत्रैद्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥" [121]

वह सब ओर नेत्रों वाला, सब ओर मुखों वाला, सब ओर भुजाओं वाला और सब ओर पैरों वाला है । वह एकमात्र देव द्युलोक और पृथिवी की रचना करता हुआ दो भुजाओं और पतत्रों (पैरों और पंखों) से युक्त करता है । मुण्डकोपनिषद् में ब्रह्म की ही सत्ता सर्वत्र है, वही सर्वव्यापक है । यह अमृत ब्रह्म ही आगे है, ब्रह्म ही पीछे है, ब्रह्म ही दायी–बायी ओर है तथा ब्रह्म ही नीचे–ऊपर फैला हुआ है । यह सारा जगत् सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही है । [122]

ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है–

"स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्त्राविर शुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥" [123]

अर्थात् आत्मा सर्वगत, शुद्ध, अशरीरी, अक्षत, स्नायु से रहित, निर्मल, अपापहत, सर्वद्रष्टा, सर्वज्ञ, सर्वोत्कृष्ट और स्वयम्भू है । उसी ने नित्य संवत्सर नामक प्रजापतियों के लिये यथायोग्य रीति से अर्थों का विभाग किया है । उपर्युक्त मन्त्र में ब्रह्म के कर्मों के साथ कर्मों का भी वर्णन किया गया है । उसी ब्रह्म ने अपनी योगमाया से विभिन्न संवत्सरादि की रचना करके उनके अधिष्ठान देव तथा उसमें प्राणियों के यथाकर्म के विभाजन के द्वारा सृष्टि प्रक्रिया को

---

[120] श्वे.उप.3/2
[121] वही 3/3
[122] मु.उप. 2/2/11
[123] ईश.उप. 8

प्रारम्भ किया वही देव सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त होकर प्राणियों की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित है ।

कारण एवं कार्य में सम्बन्ध

कारण एवं कार्य के स्वरूप को जानने के पश्चात् कार्य एवं कारण में परस्पर कैसा सम्बन्ध है यह जानना अत्यावश्यक है । समस्त चराचर जगत् अर्थात् सृष्टि का एकमात्र ब्रह्म ही कारण है । ब्रह्म द्विविध कारण से युक्त है अर्थात् ब्रह्म निमित्त कारण भी है तथा उपादान कारण भी । ब्रह्म तथा जगत् की प्रत्येक रचना में अभेदता (तादात्म्य सम्बन्ध) सम्बन्ध है । कारण रूप ब्रह्म ही कार्य रूपी जगत् में प्रकट होते हैं अतः कारण का ही परिवर्तित रूप कार्य है तथा कार्य विघटन के पश्चात् पुनः कारण में ही समाहित हो जाता है । ब्रह्म के कारण एवं कार्य रूप को बतलाने के लिये अग्नि तथा चिनगारियों का दृष्टान्त दिया गया है अर्थात् जैसे अग्नि तथा चिनगारियों में कोई अन्तर नहीं है वही स्थिति ब्रह्म तथा जगत् के सन्दर्भ में है–

"यथोर्णनाभिस्तन्तुनोच्चरेद्यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुल्लिङ्गा. व्युच्चरन्त्येवमेवास्मादात्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वेदेवाः सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति तस्योपनिषत्सत्यस्य सत्यमिति प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यम् ॥" [124]

जिस प्रकार वह उर्णनाभि (मकड़ी) तन्तुओं पर ऊपर की ओर जाती है तथा जैसे अग्नि से अनेकों क्षुद्र चिनगारियां निकलती है उसी प्रकार इस आत्मा से समस्त प्राण, समस्त लोक, समस्त देवगण और समस्त भूत विविध रूप से उत्पन्न होते हैं । सत्य का सत्य यह उस आत्मा की उपनिषद् है । प्राण ही सत्य है । उन्हीं का यह सत्य है ।

ईशावास्योपनिषद् के प्रारम्भ में ही शान्तिपाठ के अन्तर्गत ब्रह्म का अत्यन्त सुन्दर निदर्शन किया है ।

"ऊँ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥" [125]

---

[124] बृ.उप. 2/1/20

[125] ईश. उप. शान्ति मंत्र

ऊँ यह (परब्रह्म) पूर्ण है और यह कार्य ब्रह्म भी पूर्ण है; क्योंकि पूर्ण से पूर्ण की ही उत्पत्ति होती है तथा प्रलयकाल में पूर्ण कार्यब्रह्म का पूर्णत्व लेकर (अपने में लीन करके) पूर्ण परब्रह्म ही शेष बचता है । त्रिविध ताप की शान्ति हो अर्थात् ब्रह्म सत् स्वरूप, चित् स्वरूप तथा आनन्दस्वरूप है, जो ऊँ शब्द वाच्य हैं । वह पूर्ण है तथा उनका कार्यभूत यह जगत् भी पूर्ण है । पूर्ण ब्रह्म से ही जगत् उत्पन्न होता है । पूर्ण ब्रह्म की पूर्णता को लेकर उससे निकल जाने पर भी वह पूर्ण ब्रह्म ही पूर्ण रूप से बचे रहते हैं अर्थात् परब्रह्म सर्वदा सभी प्रकार से पूर्ण है । यह जगत् भी उस परब्रह्म से पूर्ण है । ईशावस्योपनिषद् के प्रथम मन्त्र में "ईश्वास्यमिदं सर्वं....." [126] सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म का व्याप्य है औरा ब्रह्म सम्पूर्ण जगत् में व्यापक है । दोनों में नियाम्य–नियामक भाव सम्बन्ध है । ब्रह्म जगत् से पूर्णरूपेण विलक्षण भी है तथा उसमें समाहित भी है । एकमात्र ब्रह्म के सन्दर्भ में ही ऐसा कहा जाता है कि वह इस सम्पूर्ण जगत् के बाहर तथा सूक्ष्म होने के कारण इसके भीतर भी है अन्यथा लोक में जो पदार्थ अन्दर विद्यमान होता है वह बाहर नहीं होता है जैसे–घटादि यदि कमरे में है तो उसी समय बाहर नहीं हो सकते हैं अतः ब्रह्म के अतिरिक्त संसार की कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो जगत् के बाहर तथा भीतर सर्वत्र विद्यमान है ।

ऐतरेयोपनिषद् में कार्य–कारण के सम्बन्ध के विषय में बताते हुए कहा गया है कि जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय करने वाले सर्वशक्तिमान् परमात्मा ने अपने से भिन्न किसी अन्य वस्तु का ग्रहण किये बिना ही सम्पूर्ण जगत् की आकाशादि क्रम से रचनाकर अपने को स्वयं ही जानने के लिये सम्पूर्ण प्रादियुक्त शरीर में प्रवेश ही जानने के लिये सम्पूर्ण प्राणादियुक्त शरीर में प्रवेश करके 'मैं ब्रह्म हूं' इस प्रकार का बोध प्राप्त किया ।

कार्य–कारण के परस्पर सम्बन्ध को जल एवं फेन के दृष्टान्त द्वारा ऐतरेयोपनिषद् शांकरभाष्य में बताया गया है–जिस प्रकार जल एवं फेन इन दो वस्तुओं की प्रतीति होती है, वस्तुतः फेन जल जल के अतिरिक्त कुछ नहीं है; क्योंकि जब जल के परमाणुओं को गति प्रदान की जाती है तो फेन की उत्पत्ति होती है तथा जल भी अपनी स्थिति में बना रहता है । फेन पुनः विघटन होने पर जल में ही विलीन हो जाता है उसी प्रकार यह जगत् उस आत्मतत्त्व से भिन्न होते हुए भी अभिन्न सिद्ध है । छान्दोग्योपनिषद् में कहा भी गया है–"यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं

[126] ईश. उप. 1

विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृतिकेत्येव सत्यम् ॥" [127]अर्थात् हे सौम्य ! जिस प्रकार मृतिका के एक पिण्ड के द्वारा सम्पूर्ण मृन्मय पदार्थों का ज्ञान हो जाता है कि विकार केवल वाणी के आश्रयभूत नाममात्र है, सत्य तो केवल मृतिका ही है ।

"यथा सोम्यैकेन लोहमणिना सर्वं लोहमणिना सर्वं लोहमयं विज्ञातं स्यद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं लोहमित्येव सत्यम् ॥"[128]

"यथासोम्यैकेन नखनिकृन्तनेन सर्वं काष्णायसमित्येव सत्यमेव सोम्य स आदेश भवतीति ॥" [129]

मिट्टी के उदाहरण द्वारा कार्य–कारण की अभिन्नता को बताया गया है । सुवर्ण एवं कार्य की अभिन्नता का भी उदाहरण दिया गया है– जिस प्रकार एक लोहमय (सुवर्णमय) पदार्थ जान लिये जाते हैं, क्योंकि विकार वाणी पर आवलम्बित मात्र है, सत्य केवल सुवर्ण ही है । हे सोम्य ! जिस प्रकार एक नखकृन्तन (नहन्ना) के ज्ञान से सम्पूर्ण लोहे के पदार्थ लिये जाते हैं, क्योंकि विकार वाणी पर अवलम्बित केवल नाममात्र है, सत्य केवल लोहा ही है । इस प्रकार यहां कारण की कार्य से अनन्यता सिद्ध की है । यही भाव ब्रह्मसूत्रकार ने भी स्पष्ट किया है– "तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः ॥" [130] आरम्भण शब्द आदि हेतुओं से उसकी अर्थात् कार्य की कारण से अनन्यता सिद्ध होती है । इसी प्रकार यह कार्यरूप में वर्तमान जगत् भी ब्रह्मरूप ही है । इस कथन से जगत् की ब्रह्म से अनन्यता सिद्ध होती है । इसी प्रकार यह कार्यरूप में वर्तमान जगत् भी ब्रह्मरूप ही है । इस सूत्र में आदि शब्द का प्रयोग होने से यह अन्यत्र आये हुए दूसरे वाक्यों से भी यही बात सिद्ध होती है । इस प्रकार श्रुति में कारणरूप ब्रह्म से कार्यरूप जगत् की अनन्यता का स्पष्ट प्रतिपादन किया गया है ।

छान्दोग्योपनिषद् में उपदेश का आरम्भ करके आचार्य ने कहा–हे सोम्य ! यह समस्त जगत् प्रकट होने से पहले एकमात्र अद्वितीय सत्यस्वरूप ब्रह्म ही था इससे कारण एवं कार्य की अनन्यता के साथ यह सिद्ध है कि यह जड़–चेतन भोग्य और भोक्ता के आकार में प्रत्यक्ष

---

[127] छा.उप. 6/1/4
[128] वही 6/1/5
[129] वही 6/1/6
[130] ब्र.सू.शा.भा. 2/1/14

दिखने वाला जगत् उत्पत्ति के पहले भी अवश्य था परन्तु परब्रह्म परमात्मा की शक्तिरूप में था । जिस प्रकार स्वर्ण के विकार हार, ककंण, कुण्डल आदि उत्पत्ति के पहले और विलीन होने के बाद अपने कारणरूप स्वर्ण में शक्तिरूप से रहते हैं अतः जड़–चेतनात्मक सम्पूर्ण जगत् उत्पत्ति के पहले और प्रलय के बाद परब्रह्म परमेश्वर में शक्तिरूप से अव्यक्त रहता है । श्रीमद्भगवद्गीता में भी कहा गया है–

"एत्तद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।

अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयास्तथा ॥

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥" [131]

हे अर्जुन ! तू ऐसा समझ कि सम्पूर्ण भूत इन दोनों प्रकृतियों से ही उत्पन्न होने वाले हैं और मैं सम्पूर्ण जगत् का प्रभव तथा प्रलय हूं अर्थात् सम्पूर्ण जगत् का मूल कारण हूं । मुझसे भिन्न दूसरा कोई भी परम कारण नहीं है । यह सम्पूर्ण जगत् सूत्र में मनियों के सदृश मुझ में गुँथा हुआ है । ब्रह्मसूत्रकार ने बताया है कि ब्रह्म ने स्वयं को ही जगत् रूप में प्रकट किया है इसीलिये ब्रह्म ही जगत् का उपादान कारण सिद्ध होता है ऐसा बताया है– "आत्मकृतेः परिणामात्" [132] तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है–"असद्वा इदमग्र आसीत् ततो वै सदजायत तदात्मानं स्वयमकुरुत ॥" [133] पहले यह जगत् असत् (अव्याकृत ब्रह्मरूप) ही था । उसी से सत् (नाम–रूपात्मक व्यक्त) की उत्पत्ति हुई । उस असत् ने स्वयं अपने को ही नामरूपात्मक जगत् में रचा । इस प्रकार कर्ता और कर्म के रूप उस एक ही परमात्मा का वर्णन होने से स्पष्ट होता है कि ब्रह्म ही जगत् का कर्ता है एवं स्वयं ही जगत् रूप में अभिव्यक्त हुआ है"योनिश्च हि गीयते" [134] प्रकृतिवाचक योनि शब्द से भी आत्मा कहा गया है, अतः ब्रह्म ही उपादान एवं निमित्त कारण है । जगत् रूप में परिणत होने का वर्णन होने से वह ब्रह्म स्वयं ही इस रूप में बना है । तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है–

---

[131] श्रीमद. 7/6–7
[132] ब्र. सू. 1/4/26
[133] तै.उप. 2/7/1
[134] ब्र. सू. 1/4/27

"तत्सृष्टवा तदेवानुप्राविशत् । तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत् । निरुक्तं चानिरूक्तं च । निलयनं चानिलयनं च विज्ञानं चाविज्ञानं च । सत्यं चानृतं च सत्यमभवत् । यदिदं किचं तत्सत्यमित्याचक्षते ॥" [135]

अर्थात् जगत् की रचना करने के अनन्तर वह परमात्मा होकर वह सत्यस्वरूप परमात्मा मूर्त–अमूर्त कहे जाने योग्य, और न कहे जाने योग्य, आश्रय–अनाश्रय, चेतन–अचेतन एवं व्यवहारिक सत्य–असत्यरूप हो गया । यह जो कुछ है उसे ब्रह्मवेत्ता जन सत्यनाम से पुकारते हैं । परब्रह्म परमात्मा के ही सब रूपों में परिणत होने का प्रतिपादन किया है इसलिये वही जगत् का उपादान एवं निमित्त कारण है । इस प्रकार ब्रह्म ही कर्ता व कर्म उभय स्वरूप वाले हैं । ब्रह्म तथा जगत् में परस्पर अभेद सम्बन्ध माना जाता है क्योंकि मूलतः दोनों एक ही तत्व है; जिनके पृथक् होने का प्रश्न ही नहीं उठता है । शुद्धात्मा ही ब्रह्म है । मायोपहित आत्मा ही ईश्वर तथा अविच्छिन्न आत्मा जीव है । आत्मा और ब्रह्म के बारे में विचार करने पर ज्ञात होता है कि उपनिषदों में परमतत्त्व के वाचक के रूप में आत्मा और ब्रह्म है । यह सम्पूर्ण विश्व ही ब्रह्म है;और ब्रह्म ही आत्मा है, यह आत्मा और ब्रह्म में वही सम्बन्ध है, जो जलती अग्नि और उससे निष्पन्न स्फुल्लिङ्गों में होता है । ब्रह्म और आत्मा दोनों एक ही तत्त्व के द्योतक है ।

ब्रह्म का तद्भिन्न वस्तुओं से तदाकारता के साथ ही उनकी उनसे निर्लिप्तता का भी वर्णन प्राप्त है–

"सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः ।

एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥" [136]

जिस प्रकार सम्पूर्ण लोक का नेत्र होकर भी सूर्य नेत्र सम्बन्धी बाह्यदोषों से लिप्त नहीं होता उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों का एक ही अन्तरात्मा संसार के दुःख से लिप्त नहीं होता, बल्कि उनसे बाहर रहता है ।

---

[135] तै.उप. 2/6/1

[136] क. उप. 2/2/11

आधुनिक विज्ञान में कार्य–कारण सिद्धान्त

19वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में पारम्परिक भौतिकी के सभी सिद्धान्त सर्वत्र व्याप्त हो गये तथा उन पर लोगों का अत्यधिक विश्वास बनता जा रहा था । यह धारणा सर्वत्र व्याप्त हो गयी कि भौतिकी में नवीन खोजने योग्य कुछ भी नहीं है । पारम्परिक भौतिकी को आधार बनाकर ही समग्र विश्व की व्याख्या प्रस्तुत की गयी । न्यूटन के गुरूत्वाकर्षण एवं गति के नियम पर्याप्त मान लिये गये । अत्यन्त सूक्ष्म तथ्यों को शास्त्रीय भौतिकी के ढांचे में बैठाना कठिन प्रतीत होने लगा क्योंकि परमाणवीय घटनाओं की व्याख्या करने के लिये जिन सिद्धान्तों का उपयोग किया गया उसमें सफलता प्राप्त नहीं हुई । नवीन परमाणवीय घटनाओं की व्याख्या करने के लिये पुराने सिद्धान्तों का उपयोग किया गया तब आशा के विपरीत फलों की प्राप्ति हुई । मैक्सप्लांक ने तप्तकृष्ण पिण्डों के विकिरण की प्रवृत्ति की व्याख्या चिरसम्मत भौतिकी के आधार पर करने की कोशिश की तब वे सफल नहीं हुए तथा कल्पना करनी पड़ी कि द्रव्यकण प्रकाश ऊर्जा का उत्सर्जन एवं अवशोषण अविभाज्य इकाईयों में करते हैं यह ईकाई क्वांटम कहलाती है । चिरसम्मत भौतिकी में "प्रकाश विद्युत प्रभाव" की व्याख्या में भी विफलता प्राप्त हुई । इस प्रभाव में प्रकाश के कारण धातुओं से इलेक्ट्रान का उत्सर्जन होता है अतः इसके व्याख्या करने के लिये आइन्सटाइन ने प्लांक की कल्पना का सहार लिया और यह प्रतिपादित किया कि प्रकाश ऊर्जा कणिकाओं के रूप में संचरित होता है । इस प्रकार भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में ऊपरी सतह पर सब कुछ ठीक प्रतीत हो रहा था परन्तु गहराई से देखने पर अनेक समस्याएं प्रकट हो रही थी अतः धीरे–धीरे भौतिकी के सिद्धान्तों में नवीन अन्वेषण प्रारम्भ हुआ और आधुनिक भौतिकी का जन्म हुआ ।

आधुनिक विज्ञान का उद्भव एवं विकास

इस प्रकार नवीन तथ्यों का अध्ययन करने और उनकी गुत्थियों को सुलझाने में भौतिकी की जिस शाखा की उत्पत्ति हुई उसे आधुनिक भौतिकी नाम दिया गया । आधुनिक भौतिकी का द्रव्य संरचना से सीधा सम्बन्ध है । अणु, परमाणु, केन्द्रक तथा मूल कण आधुनिक भौतिकी का मुख्य विषय है ।

भौतिकी को अंग्रजी में Physics कहते हैं जो ग्रीक भाषा के एक शब्द से व्युत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है–प्रकृति । इसका तुल्य संस्कृत शब्द भौतिकी है जिसका उपयोग भौतिक जगत् के अध्ययन से सम्बन्धित है । आधुनिक भौतिकी के अन्तर्गत सूक्ष्म परिघटनाओं अर्थात् परमणुओं तथा नाभिकों के स्तर के सूक्ष्मतम पैमाने पर द्रव्य के संघटन एवं संरचना तथा इलेक्ट्रान, फोटान तथा अन्य मूल कणों से अन्योन्य क्रियाओं पर विचार करना प्रारम्भ हुआ । आधुनिक भौतिकी में मुख्य रूप से क्वान्टम सिद्धान्त के अन्तर्गत सूक्ष्म परिघटनाओं की व्याख्या की जाती है । आधुनिक भौतिकी के प्रमुख सिद्धान्त यथा–

- आइन्सटाइन द्वारा प्रतिपादित सामान्य एवं विशेष सापेक्षता के सिद्धान्त
- जेम्स क्लार्क मैक्सवेल के तापगतिकी नियम
- मैक्सप्लांक का क्वांटम सिद्धान्त
- हाइजनबर्ग का अनिश्चिता सिद्धान्त
- कण भौतिकी
- तरंग यान्त्रिकी
- एकीकृत क्षेत्र सिद्धान्त ।
- बिग–बैगं सिद्धान्त

  इत्यादि सिद्धान्तों में कार्य–कारण विषयक मत प्रस्तुत किये गये हैं ।

आधुनिक विज्ञान में कार्य–कारण सम्बन्धी सिद्धान्त

आधुनिक विज्ञान में जीवन तथा जगत् के सृजनात्मक तथ्यों को उपस्थापित किया गया है । सृष्टि सृजन का मूल कारण क्या है ? एवं कार्य क्या है ? इस विषय को प्रतिपादित करने के लिये वैज्ञानिकों ने अनेक सिद्धान्त दिये जिनमें सृष्टि के मूल कारण को एक ऊर्जा के रूप में माना गया है, जिसका एक रूप से दूसरे रूप में रूपान्तरण सम्भव है । सर्वत्र एक ही ऊर्जा के विभिन्न रूप विद्यमान है ।

तापगतिकी का सिद्धान्त (Theory of Thermodynamics)

तापगतिकी भौतिक–विज्ञान की वह शाखा है जिसमें ऊर्जा तथा कार्य के सम्बन्ध के बारे में अध्ययन किया जाता है । जर्मन वैज्ञानिक जानक्लार्क मैक्सवेल ने तापगतिकी का नियम प्रदान

किया हैं जो भौतिकी के सर्वोच्च के नियम के रूप में स्वीकृत है । भौतिकी में ऊष्मागतिकी (ऊष्मा+गतिकी=ऊष्मा की गति सम्बन्धी) के अन्तर्गत ऊर्जा का कार्य एवं ऊष्मा में रूपान्तरण तथा इसका तापमान और दाब जैसे स्थूल चरों से सम्बन्ध का अध्ययन किया जाता है । इसमें ताप, दाब तथा आयतन का सम्बन्ध भी समझा जाता है । इस प्रकार ऊष्मागतिकी में ऊष्मा के कार्य में तथा कार्य के ऊष्मा में परिणत होने का विवेचन किया जाता है । तापगतिकी में वर्णित नियमों के अनुसार ऊर्जा की न तो उत्पत्ति होती है न ही विनाश होता है । विश्व में कुल ऊर्जा का परिणाम सदैव समान रहता है । ऊर्जा केवल एक रूप से दूसरे रूप में रूपान्तरित होती है । यह नियम ऊर्जा संरक्षण से सम्बन्धित है । इसे ऊर्जा की अविनाशिता का नियम भी कहते हैं क्योंकि ऊष्मा ऊर्जा का ही एक रूप है और किसी भी प्रक्रिया में समस्त प्रकार की ऊर्जा का योग अपरिवर्तित रहता है । N.C. Panda ने '*Maya in Physics*' में तापगतिकी सिद्धान्त को इस प्रकार बताया है–

" In the process of the motion of heat, heat does not arise out of nothing and does not vanish in to nothing . This is the first law of thermodynamics. Extending this principle to all forms of energy. The law may be restated: The total energy content of a closed system is constant. A closed system is one that exchanges no energy with the outside world. It does not take up and give off energy…….if heat is transformed in to other form of energy, or other form of energy is transformed in to heat, the heat energy is equal to the amount of transformed energy."[137]

तापगतिकी सिद्धान्त में यह भी बताया गया है कि ऊर्जा एवं ताप का परस्पर परिवर्तन सम्भव है तथा दोनों को ही एक ईकाई द्वारा मापन सम्भव है । तापगतिकी में जिस प्रकार ऊर्जा को मूल माना गया है तथा यह भी कहा गया है कि ऊर्जा में वृद्धि एवं ह्रास दोनों ही सम्भव नहीं हैं । यह सिद्धान्त औपनिषदिक ब्रह्म (मूल कारण) अवधारणा से साम्यता रखता है

आइन्सटीन का सापेक्षता सिद्धान्त

सापेक्षता सिद्धान्त आधुनिक भौतिकी का मूलभूत सिद्धान्त है । प्रख्यात वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्सटाइन ने इस सापेक्षता सिद्धान्त को दो रूपों में प्रस्तुत किया है–

[137] Panda,N.C.,Maya in physics, P. 215

1) विशिष्ट सापेक्षता (Special Theory of relativity)
2) सामान्य सापेक्षता (General theory of relativity)

सापेक्षता सिद्धान्त में आइन्सटाइन ने एक सीधी रेखा में एकसमान गति से दौड़ने वाली वस्तुओं का ही विवेचन किया है ।

1) भौतिकी के नियम एक दूसरे के सापेक्ष एक समान गति कर रहे हैं और यह सभी निरीक्षकों के लिये समान होते हैं ।
2) निर्वात में प्रकाश का वेग सभी निरीक्षकों के लिये समान होता है । चाहे प्रकाश के स्त्रोत की गतिकुछ भी हो । इन सिद्धान्तों के द्वारा निम्न बिन्दुओं का ज्ञान सम्भव है–
   - किसी स्थिर घड़ी की अपेक्षा एक गतिशील घड़ी धीमी चलती है ।
   - दो घटनाएं जिन्हें कोई निरीक्षक 'क' एक साथ घटित होते हुए देखता है, किसी दूसरे निरीक्षक 'ख' पहले के सापेक्ष गतिशील होती है ।
   - द्रव्य और ऊर्जा तुल्य है; एक को दूसरे में बदला जा सकता है । इस परिवर्तन $E = mc^2$ में का सम्बन्ध लागू होता है ।[138]

आइन्सटाइन का यह समीकरण भौतिक वास्तविकता से सम्बन्धित कई मूलभूत तथ्यों का उद्घाटन करता है । आपेक्षिकता के प्रतिपादन के पहले वैज्ञानिकों की मान्यता थी कि विश्व दो सत्ताओं से निर्मित है– द्रव्य और ऊर्जा परन्तु आइन्सटाइन ने प्रमाणित किया कि द्रव्यमान और ऊर्जा समान है । द्रव्य ऊर्जा है और ऊर्जा द्रव्य है । दोनों के बीच का अन्तर अस्थायी है ।

"Einstein's famous equation from 1905 E=mc demonstrates that energy is equivalent with matter. It suggests that the concept of mass is indeed, less basic then what can be believed from everyday experiences with massive bodies. In fact, energy can be transformed into massive particles ad mass can be transformed into energy. Energy in all it's differences appearances is a key concept in physics."[139]

[138] https://hi.wikipedia.org/wiki/विशिष्ट_आपेक्षिकता
[139] http://nobelprize.org/education/physics/energy/intro.html

क्वाण्टम सिद्धान्त (Quantum Theory)

जर्मन वैज्ञानिक मैक्स प्लांक ने सर्वप्रथम क्वाण्टम सिद्धान्त को प्रस्तुत किया । मैक्स प्लांक ने क्वाण्टम सिद्धान्त में Thermodynamics और Electrodynamics का सम्मिश्रण किया तथा निम्न समीकरण प्रस्तुत की । यहां E= Energy है, V= is frequency of radiation (विकिरण की आवृत्ति), h= is known as Plank's constant (आनुपातिक स्थिरांक) इस समीकरण के लिये प्लांक को नोबल पुरस्कार भी मिला । '*Maya in Physics'* में क्वाण्टम सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए बताया है–

"Planck invented the quantum. Quantum is a quantity of something. It is a specific amount."Nature comes in bits and pieces." These bits or 'atoms of energy' were termed as quanta by Plank . 'Quantum' is a Latin word which means : how much ? The equivalent word in Sanskrit is katama." [140]

मैक्स प्लांक के इस सिद्धान्त को प्रारम्भ में द्विविध स्वरूप के कारण अत्यधिक महत्व नहीं मिला परन्तु जब आइन्सटाइन ने इसके महत्व को समझकर क्वाण्टम सिद्धान्त को नयी दिशा प्रदान की तब इसका स्वरूप लोगों के सामने आया । आइन्सटाइन ने यह प्रतिपादित किया कि सभी प्रकार की विकिरण ऊर्जा, प्रकाश, ऊष्मा, एक्स–रे आदि में क्वांटा अत्यन्त लघु पुंजों के रूप में संचरण करती है । 1905 में आइन्सटाइन ने क्वाण्टम की धारणा का प्रयोग करके प्रकाशविद्युत प्रभाव की व्याख्या प्रस्तुत की ।

क्वाण्टम सिद्धान्त में जिन परमाणविक कणों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है । वे कण रूप में तो रहते ही हैं, तरंग रूप में भी रहते हैं । तरंग कण द्वैधता सिद्धान्त में बताया गया है कि सभी पदार्थों में अत्यन्त सूक्ष्म स्तर पर जाने पर तरंग एवं कण दोनों ही रूप में व्यवहार करते हैं । यह आधुनिक भौतिकी के क्वाण्टम यान्त्रिकी क्षेत्र एक आधारभूत सिद्धान्त है । पदार्थ के सूक्ष्मतम स्तर पर जाने पर कोई भी वस्तु कण या तरंग रूप होती है लेकिन एक साथ दोनों नहीं होते हैं । इस समय स्थिति बड़ी विलक्षण होती है । कुछ घटनाओं से प्रकाश तरंगमय प्रतीत होता है और कुछ से कणमय, संभवतः सत्य द्वैतमय है । प्रकाश के भी दो विभिन्न रूप है, दोनों ही सत्य है । ऐसा ही द्वैत द्रव्य के सम्बन्ध में भी पाया जाता है । वह भी

[140] Panda,N.C.,Maya in physics, P. 74

कभी तरंगमय दिखाई देता है और कभी कणरूप । न तो प्रकाश के ओर न द्रव्य के दोनों रूप एक ही समय एक ही साथ दिखाई दे सकते हैं । वे परस्पर विरोधी, किन्तु पूरक है ।[141]

कण भौतिकी (Partical Physics)

कण भौतिकी, भौतिकी की वह शाखा हैं जिसमें उपपरमाणविक कणों के पारस्परिक सम्बन्धों तथा उनके अस्तित्व का अध्ययन किया जाता है । जिनसे पदार्थ तथा विकिरण निर्मित है । आधुनिक कण भौतिकी की खोज उपपरमाणविक कणों पर केन्द्रित है । जिसमें नाभिक को बनाने वाले कण जैसे–इलेक्ट्रान, प्रोटान, और न्यूट्रान । यहां प्रोटान और इलेक्ट्रान यौगिक कण है जो कि क्वार्क से मिलकर बने हैं । कण भौतिकी के वैज्ञानिकों के अनुसार प्राथमिक कण इलेक्ट्रान, प्रोटान है तथा ये कण तरंग के समान प्रकृति भी रखते हैं ।[142]

भौतिकी में मूलभूत कण वे कण होते हैं, जिनकी उपसंरचना ज्ञात नहीं है । यह किन कणों से मिलकर बना है, यह अज्ञात है । मूलभूत कण ब्रह्माण्ड की आधारभूत संरचना है । समस्त ब्रह्माण्ड इन्हीं मूलभूत कणों से मिलकर बना है । कण भौतिकी के मानक माडल के अनुसार क्वार्क, लेप्टान और गेज बोसान मूलभूत कण है । कणों को दो भागो में विभाजित किया है–
1) लेप्टान

2) हेड्रान

लेप्टान कण मूल कण माने जाते हैं । इनके अन्तर्गत छः कण आते हैं–इलेक्ट्रान, म्यूआन, टाऊ, इलेक्ट्रान न्यूट्रिनो, म्यूआन न्यूट्रिनो,टाऊ न्यूट्रिनो । हेड्रान भारी कण होते हैं, जिनको फिर दो भागों में विभक्त किया जाता है ।

1) बेरान्स (तीन क्वार्कों से मिलकर बने हैं)

2) मेसान (क्वार्क तथा एन्टीक्वार्क के युग्म से बने हैं)

क्वार्क कणों का भी आगे विभाजन किया गया है–अप, डाउन, स्ट्रेन्ज, टाप, बाटम, चार्म । इन छः प्रकार के क्वार्क कणों का विवेचन करने के उपरान्त यह जिज्ञासा होती है कि क्या ये

[141]http://hi.wikipedia.org/wiki/तरंग–कण_द्वैधता
[142] http://hi.wikipedia.org/wiki/कण_भौतिकी

क्वार्क कण आन्तरिक संरचना से रहित प्राथमिक कण है ? यदि नहीं तो ये क्वार्क कण किससे बने हैं ? अतः प्रश्न उपस्थित होता है कि भौतिक जगत् का मूल आधार क्या है ? विज्ञान जगत् में हो रहे प्रयोगों से नित्य नवीन प्रकार के सूक्ष्म कण खोजे जा रहे हैं जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि कोई भी एक कण जगत् का आधार नहीं है । अतः सृष्टि के मूल कारण को ज्ञात करने में विज्ञान अभी तक किसी निश्चित निर्णय पर नहीं पहुंच पाया है । मूल कारण का ज्ञान करने के लिये अनेक गम्भीर शोध किये गये । इसी क्रम में 1960 में वैज्ञानिक पीटर हिग्गस तथा अन्य पांच वैज्ञानिकों के समूह ने हिग्स बोसोन की परिकल्पना प्रस्तुत की । हिग्स बोसोन शब्द में हिग्स एडिनबर्ग विश्वविद्यालय भौतिक शास्त्री पीटर हिग्गस तथा बोसोन भारतीय भौतिक शास्त्री सत्येन्द्र नाथ बोस के द्वारा गैसों के तापीय व्यवहार पर जो सांख्यिकीय विधि प्रयुक्त की गयी वह अपर्याप्त थी । उनके द्वारा यह सबसे पहले ब्रिटिश जर्नल को भेजी गयी जो वापस भेज दी गयी । तब यह अल्बर्ट आइन्सटीन द्वारा तुरन्त इसका महत्व समझकर प्रकाशित किया गया । यह क्वाण्टम मैकेनिक्स का आधार बना तथा बोस–आइन्सटीन सांख्यिकीय के रूप में प्रसिद्ध गया । इसे बोसोन संज्ञा से परिभाषित किया गया ।

अनिश्चितता सिद्धान्त (Principal of Uncertainty)

विशिष्ट भौतिकविद् हाइजनबर्ग ने अनिश्चितता सिद्धान्त की उत्पत्ति क्वाण्टम यान्त्रिकी के व्यापक नियमों से 1927 में प्रदान की । इस सिद्धान्त के अनुसार किसी कण की गति एवं स्थिति, दोनों राशियों को एकसाथ पूर्ण शुद्धता के साथ नहीं जाना जा सकता है, एक राशि का जितनी शुद्धता से ज्ञान कर सकते हैं, उतनी ही कम शुद्धता से आप दूसरी राशि का ज्ञान कर सकते हैं । अनिश्चितता के नियम ने वैज्ञानिकों को गहराई से प्रभावित किया । क्योंकि यह नियम चिरस्थापित भौतिकी में दृढ़ता से स्थापित कार्य–कारण सम्बन्ध को परमाणु के स्तर पर स्थापित नहीं करता । Swami Jitatmananda ने *'Modern Physics and Vedana'* में अनिश्चितता सिद्धान्त के बारे में इस प्रकार बताया है ।

"Heisenberg showed that sub atomic entities like the electron can never be measured or determined in a 'casual way' there is and must always be an element of 'uncertanity' or 'indeterminacy'in our knowledge of the electrons. This discovery is known as the uncertaininty principal or the principal of indeterminacy.

It postulates that if we try to determine precisely the momentum or the velocity of the electron. We will know almost nothing about its position and vice versa."[143]

अतः इस सिद्धान्त के निष्कर्ष में यह कहा जाता है कि जिस क्षणकाल पर कण की स्थिति की यथार्थ माप प्राप्त किया जाता है उस काल पर उसका वेग अनिर्णित हो जाता है । अगर किसी क्षणकाल पर कण की स्थिति का ज्ञान करने के लिये कोई विकल्प नहीं रहता । ऐसी अवस्था में स्थिति और संवेग दोनों की माप कुछ अनिश्चिताओं के भीतर ही सम्भव है । इस प्रकार हाइजनबर्ग ने यह सिद्ध कर दिया कि सूक्ष्म कणों विश्व में मापक उपकरणों की उपयोगिता सीमित होती है । ये उपकरण कणों की गति को यथार्थ रूप में मापने में अक्षम होते हैं । इसलिये हाइजनबर्ग ने यह सिद्ध किया कि इलेक्ट्रान का वास्तविक स्वरूप अनिश्चितता में आवृत है ।

एकीकृत क्षेत्र सिद्धान्त (Unified field Theory)

एक सर्वव्यापक सिद्धान्त जिसमें प्रकृति के सभी ज्ञात बुनियादी बलों को संयुक्त करने का प्रयास किया गया है । प्रमुखतः चार बलों को स्वीकार किया गया है–

1) गुरुत्वाकर्षण
2) विद्युत चुम्बकीय
3) दृढ़ प्रबल (प्रबल नाभिकीय बल)
4) क्षीण बल (दुर्बल नाभिकीय बल)

इनमें विद्युत चुम्बकीय बल और क्षीण नाभिकीय बल को एकीकृत करने में सफलता प्राप्त की । आधुनिक विज्ञान में बल के अनेक स्वरूप प्राप्त होते हैं । वैज्ञानिकों ने यह माना कि बलों के विभिन्न स्वरूप एक ही बल से उत्पन्न होने चाहिये । प्रारम्भ में बताये गये चारों बलों की उत्पत्ति एक ही मूल से मानने के लिये वर्तमान में भी निरन्तर प्रयास किये जा रहे हैं । आधुनिक विज्ञान में जिसे एक ही मुख्य बल माना है, उसी बल को वैदिक ऋषियों ने ब्रह्म (माया) नाम से अभिहित किया है । सृष्टि सर्ग से पूर्व ब्रह्म य आत्मा जिसे आधुनिक विज्ञान के सन्दर्भ में ऊर्जा की आदि अवस्था माना जा सकता है, से किस प्रकार माया (बल) का

[143] Jitatmananda, Swami, Modern Physics and Vedanta, p. 38

प्रादूर्भाव होता है । इस माया या बल की उत्पत्ति ब्रह्म रूपी ऊर्जा से ही मानी गयी है । माया या बल ब्रह्म रूपी ऊर्जा में प्रथम परिवर्तन है । माया को ब्रह्म की शक्ति माना है । ब्रह्म निष्क्रिय है परन्तु इस बल या माया के कारण ही ब्रह्म (ऊर्जा) में सृष्टि सम्पादन का स्वरूप बनता है । अतः वैदिक ऋषियों द्वारा वर्णित मूलबल एवं उसके प्रकार कृष्ण–विवर, सृष्टि का आरम्भ होना , कणों की उत्पत्ति आदि विषयों पर की गयी, व्याख्या आधुनिक वैज्ञानिक व्याख्याओं से विरोधाभास नहीं रखती है वरन् आधुनिक विज्ञान से अधिक व्यापक एवं गहन है ।

बिग बैंग सिद्धान्त (Big bang theory)

आधुनिक विज्ञान के अनुसार ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का कारण क्या है ? एवं किस प्रकार उत्पत्ति हुई है । इसकी विस्तृत व्याख्या महाविस्फोट में की गयी है । इसमें स्वीकार किया गया है कि ब्रह्माण्ड का जन्म एक महाविस्फोट के परिणामस्वरूप हुआ है । जिसके अनुसार लगभग चौदह अरब वर्ष पूर्व सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक परमाण्विक ईकाई के रूप में था । उस समय मानवीय समय और स्थान जैसी कोई वस्तु अस्तित्व में नहीं थी । महाविस्फोट प्रतिरूप के अनुसार लगभग 13.7 अरब वर्ष पूर्व इस धमाके से अत्यधिक ऊर्जा का उत्सर्जन हुआ यह ऊर्जा इतनी अधिक थी कि जिसके प्रभाव से आज तक ब्रह्माण्ड फैलता ही जा रहा है । महाविस्फोट के 1.43 सेकेंड के अन्तराल के बाद समय, अन्तरिक्ष की वर्तमान मान्यताएं अस्तित्व में आ चुकी थी तथा भौतिकी के नियम प्रारम्भ हो गये थे । क्वार्क, लेप्टान और फोटोन का गर्म द्रव्य बन चुका था । 1.4 सेकेंड में मिलकर प्रोटान और न्यूट्रान बनने लगे और इस समय तक ब्रह्माण्ड कुछ ठण्डा हो गया था । हाइड्रोजन, हीलियम आदि का अस्तित्व आरम्भ होने लगा और अन्य भौतिक तत्त्व बनने प्रारम्भ हो गये । महाविस्फोट सिद्धान्त के आरम्भ का इतिहास आधुनिक भौतिकी में जार्ज लिमेत्री ने दिया है । उनका यह सिद्धान्त अल्बर्ट आइन्सटाइन के प्रसिद्ध सामान्य सापेक्षवाद के सिद्धान्त पर आधारित है । इस प्रकार आधुनिक बिगबैंग सिद्धान्त की हिरण्यगर्भ, नासदीय, वाड़मनस इत्यादि सूक्तों से साम्यता दृष्टिगोचर होती है ।

आधुनिक विज्ञान एवं औपनिषदिक चिन्तन में साम्यता

आधुनिक विज्ञान एवं औपनिषदिक चिन्तन दोनों के ही सिद्धान्तों का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि दोनों के मूलतः एक ही चिन्तन को प्रस्तुत किया गया है परन्तु दोनों का देखने का

दृष्टिकोण भिन्न–भिन्न है । विज्ञान में दृश्यजगत् से अन्तर्जगत की ओर खोज प्रारम्भ की वही वैदिक ऋषियों ने अन्तर्जगत का ज्ञान प्राप्त करते हुए बाह्य जगत् को परिभाषित किया । इस प्रकार दोनों का मार्ग अलग–अलग होते हुए भी अन्तिम लक्ष्य एक ही है । आधुनिक वैज्ञानिकों ने ब्रह्माण्ड के विषय में हुई जिज्ञासा पर जब विचार करना प्रारम्भ किया तो पहले बाह्य जगत् की वस्तुओं का अवलोकन किया कि वे किस तरह से कार्य करती है, किससे बनी हुई है ? इत्यादि प्रश्नों से भौतिक जगत् को वैज्ञानिक दृष्टि से जानने की जिज्ञासा बढ़ने लगी तथा विषयों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन किया जाने लगा । ब्रह्माण्ड किससे बना है यह जानने के लिये अणु, परमाणु, क्वार्क, इलेक्ट्रान, बोसोन, लेप्टान इत्यादि अत्यन्त सूक्ष्म कणों का जानना प्रारम्भ किया तथा आज विज्ञान ने ब्रह्माण्ड के कारण रूप में मूलभूत कण को स्वीकार किया है । आधुनिक भौतिकी का गहनतम दृष्टि से अध्ययन करने पर वैज्ञानिकों ने जिस वास्तविक सत्य को स्वीकार किया और ब्रह्माण्ड का मूल कारण माना उसे वैदिक ऋषियों ने पूर्व में ही बता दिया था । इस प्रकार आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी उस असीम सत्ता को Engery के रूप में स्वीकार किया । दोनों में ही कहा गया कि उस असीम सत्ता को दैनिक जीवन एवं भाषा में समझना अत्यधिक कठिन है । मुण्डकोपनिषद् में ज्ञान के दो स्वरूप बताये गये हैं–

"तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरूक्तं छन्दोज्योतिषमिति । अथ परा यया तदक्षतमधिगम्यते ॥" [144]

उनमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द और ज्योतिष यह अपरा है तथा जिससे उस अक्षर परमात्मा का ज्ञान होता है वह परा है । मुण्डकोपनिषद् में वर्णित परा विद्या के ज्ञान आत्म साक्षात्कार संभव है तथा शाश्वत् सत्य का ज्ञान संभव है । जबकि अपरा विद्या के द्वारा भौतिक जगत् का ज्ञान किया जा सकता है । यहां अपरा विद्या के द्वारा भौतिक जगत् का ज्ञान किया जा सकता है । यहां अपरा एवं परा विद्या का शास्त्रीय भौतिकी एवं आधुनिक भौतिकी से सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है । जिस प्रकार अपरा विद्या के अन्तर्गत भौतिक जगत् का अध्ययन संभव है उसी प्रकार पारम्परिक भौतिकी के द्वारा भी किया जाता है । जबकि औपनिषदिक चिन्तन में उस परमसत्ता को जानने के विषय में कहा जाता है

[144] मु. उप. 1/1/5

जिसकी सत्ता कण–कण में व्याप्त है । यही सिद्धान्त आधुनिक भौतिकी में स्थापित किया गया है कि ब्रह्माण्ड की मूल कारण रूप सत्ता को अत्यन्त सूक्ष्मतम कण के रूप में जाना जा सकता है । वह एक ही मूल कारण सम्पूर्ण भूतों का कारण है ।

वैदिक ऋषियों ने भी ब्रह्माण्ड के रहस्यात्मक पहलुओं को ज्ञात करने के लिये पहले स्वयं अन्तर्मन को जानना प्रारम्भ किया और यह जानना प्रारम्भ किया कि एक मूलभूत सत्ता है जो स्वयं के अन्दर भी विद्यमान है । ऋषियों ने यह भी बताया कि जिस सत्ता का अस्तित्व हमारे अन्तःकरण में विद्यमान है वही भौतिक जगत् की अन्य वस्तुओं में भी विद्यमान है अतः सभी भौतिक पदार्थ एवं जीव परस्पर सम्बन्धित है क्योंकि जिस मूल सत्ता से हम बने हैं उसी से सम्पूर्ण जगत् पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, जीव–जन्तु भी बने हैं । इसी आधार पर कठोपनिषद् में बताया गया है कि सत्ता विभिन्न रूपों में विभाजित है जिसे हम दृश्य जगत् में देख सकते हैं ।

"वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूप रूपं प्रतिरूपो बभूव ।

एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥"[145]

जिस प्रकार इस लोक में प्रविष्ट हुआ वायु प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतों का एक ही अन्तरात्मा प्रत्येक रूप के अनुरूप हो रहा है और उनसे बाहर भी है । इस प्रकार उपनिषदों में ब्रह्माण्ड का मूल एक ही सत्ता को स्वीकार किया ।

वर्तमान समय में आधुनिक विज्ञान में यह सर्वमान्य धारणा है कि यह सम्पूर्ण सृष्टि ऊर्जा के ही विभिन्न रूप है अर्थात् सृष्टि में जो कुछ भी दृश्यमान है; वह सब ऊर्जा ही है । अलबर्ट आइन्सटीन के सापेक्षवाद सिद्धान्त में द्रव्य और ऊर्जा परस्पर तुल्य होते हैं । द्रव्य का क्षय होने पर ऊर्जा उत्पन्न होती है तथा जब ऊर्जा का क्षय होता है तो द्रव्य की उत्पत्ति होती है इसको आइन्सटीन का ऊर्जा द्रव्यमान सम्बन्ध कहा जाता है । विश्व में ऊर्जा एवं द्रव्यमान दोनों के योग का संरक्षण होता है अर्थात् जो कुछ भी द्रव्यमान इस सृष्टि में उपस्थित है, वह भी ऊर्जा ही है । यह सब ऊर्जा के ही विभिन्न रूप है अतः यह मानना तर्कसंगत है कि सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति एक ही ऊर्जा से हुई है । इस प्रकार आधुनिक विज्ञान में वर्णित ऊर्जा की

[145] क.उप.2/2/10

अवधारणा औपनिषदिक ब्रह्म (मूल कारण) से युक्ति संगत प्रतीत होता है । छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है–

"सर्वंखल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत । [146]

यह सारा जगत् निश्चय ब्रह्म ही है, यह उसी से उत्पन्न होने वाला, उसी में लीन होने वाला और उसी में चेष्टा करने वाला है अर्थात् जगत् का मूल कारण ब्रह्म है क्योंकि ब्रह्माण्ड के सभी पदार्थ उसी से उत्पन्न होकर उसी में समाहित होते हैं अतः कार्य पुनः कारण में ही लीन हो जाता है । श्वेताश्वतरोपनिषद् में प्रकृति को माया एवं महेश्वर को मायावी बताते हुए कारण एवं कार्य के संघात रूप को बताया है–

"मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरं ।

तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥" [147]

माया रूपी प्रकृति एवं मायावी महेश्वर के अवयवभूत कार्य–कारण संघात से ही सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है । यहां आधुनिक विज्ञान में वर्णित ऊर्जा–द्रव्यमान सम्बन्ध कार्य–कारण सिद्धान्त का ही प्रतिरूप है । कारण एवं कार्य में मूलतः कोई भेद नहीः है दोनों एक ही है, कारण से कार्य की अभिव्यक्ति होती है तथा कार्य नष्ट होकर पुनः कारण में ही मिल जाता है । यही सिद्धान्त विज्ञान में द्रव्यमान एवं ऊर्जा के विषय में बताया गया है । द्रव्यमान का ऊर्जा में एवं ऊर्जा का द्रव्यमान में रूपान्तरण संभव है ।

ऊर्जा संरक्षण के नियम एवं मैक्सवेल के तापगतिकी सिद्धान्त में बताया है कि ऊर्जा को न तो उत्पन्न किया जा सकता है और न ही उसे नष्ट किया जा सकता है । ऊर्जा अपने एक स्वरूप से दूसरे में परिवर्तित होती रहती है । यही तथ्य ब्रह्म के विषय में भी दृष्टिगोचर होता है । इस जगत् में ऊपर, नीचे, बाहर, भीतर सर्वत्र ब्रह्म समान भाव में स्थित है । श्वेताश्वतरोपनिषद् में बताया है कि उस एक ही तत्त्व द्वारा अपनी शक्ति से बिना किसी प्रयोजन के अनेक वर्णों वाले स्वरूप को धारण करता है ।

---

[146] छा.उप. 3/14/1

[147] श्वे. उप. 4/10

"य एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगा द्वर्णाननेकान्निहितार्थो दधाति ।

वि चैति चान्ते विश्वमादौ स देवः स नो बुद्धया शुभया संयुनक्तु ॥"[148]

सृष्टि के आरम्भ में जो एक और निर्विशेष होकर भी अपनी शक्ति के द्वारा बिना किसी प्रयोजन के नाना प्रकार के अनेक वर्ण (विशेष रूप) धारण करता है तथा अन्त में जिसमें विश्व लीन हो जाता है । वह प्रकाश स्वरूप परमात्मा हमें शुभ बुद्धि से युक्त करें । इस प्रकार ऋषियों ने एक ब्रह्म तत्त्व से सृष्टि उत्पत्ति कर अन्त में उसी तत्व में सृष्टि के विलीन होने की बात बतायी है तथा आधुनिक विज्ञान की ऊर्जा की अवधारणा में उसी वैदिक सिद्धान्त का स्वरूप प्रतीत होता है । क्योंकि एक ही ऊर्जा से ब्रह्माण्ड निर्मित होता है एवं अन्त में उसी में मिलना यह चिन्तन आधुनिक भौतिकी एवं औपनिषद् चिन्तन दोनों में दृष्टिगोचर होता है । एक ही ऊर्जा स्वयं को विभिन्न रूपों में विभाजित करती है । इस सिद्धान्त को आइन्सटाइन ने अपने सूत्र $E = m c^2$ में प्रतिपादित किया है एक ही सत्ता से बनी होने के कारण सभी में उसी सत्ता का अस्तित्व और विभिन्न तत्त्वों को मिलाने पर वह एक मूल सत्ता पुनः बनती है अर्थात् ऊर्जा का द्रव्य में एवं द्रव्य का ऊर्जा में रूपान्तरण सम्भव है ।

आधुनिक विज्ञान के प्रमुख सिद्धान्तों जैसे–सापेक्षता सिद्धान्त, तापगतिकी सिद्धान्त के अन्तर्गत परस्पर अन्तर्सम्बद्धता को स्वीकार किया गया है क्योंकि एक ही ऊर्जा से सब निर्मित होने के कारण परस्पर अन्तःसम्बद्ध है । इसी आधार पर ब्रह्माण्ड के सभी पदार्थ परस्पर एक दूसरे से सम्बद्ध है तथा प्रभावित भी करते है । Modern Physics ने यह सिद्ध कर दिया कि कोई भी तत्त्व स्वतन्त्र नहीं है, प्रत्येक तत्त्व एक–दूसरे से परस्पर सम्बद्ध है, सृष्टि के किसी भी परमाणु में कोई हलचल होती है तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उससे प्रभावित होता है । परमाणुओं का अन्तःसम्बन्ध ही समग्र जगत् का आधार है । David Bohm के अनुसार–

"The movememt of a single particle is connected with the entire universe and therefore, the movement of any particle is a Holomovement." [149]

"The Tao of Physics" में जगत् की अन्तःसम्बद्धता को इस प्रकार स्पष्ट किया है–

---

[148] श्वे. उप.4/1

[149] Chandra,B.k.Jagdish, Parallels between science and Religion and Philosophy and science- A critical review, P. 10

"In other words, subatomic particle are not 'things' but interconnections between things , and these in turn are interconnections between other things, and so on .In Quantum theory we never end up with any 'things'; we always deal with interconnections."[150]

तैत्तिरीयोपनिषद् में परस्पर अन्तःसम्बद्धता को इस प्रकार बताया है–'तैत्तिरीयोपनिषद्' में ब्रह्म को कारण और सम्पूर्ण सृष्टि को कार्य कहा गया है । जिस प्रकार कारण अपने कार्य में निहित होता है उसी प्रकार कार्य रूप सृष्टि ब्रह्म रूपी कारण की ही अभिव्यक्ति है ।

"तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः । आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः । अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी । पृथिव्या ओषधयः । ओषधीभ्योऽन्नम् । अन्नात्पुरुषः । स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः ॥" [151]

उस ब्रह्म से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि , अग्नि से जल, जल से पृथिवी, पृथिवी से औषधि, औषधि से अन्न और अन्न से पुरूष उत्पन्न हुआ । अतः निश्चय ही यह पुरूष अन्नरसमय है । इस प्रकार एक आत्मतत्त्व से ही क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, औषधि, अन्न एवं पुरुष की उत्पत्ति हुई ।

इस प्रकार Quantum Physics में पदार्थ के सूक्ष्मतम कणों का अध्ययन किया जाता है अतः इसे समझना अत्यधिक कठिन कार्य है । '*Maya in physics'* में N.C. Panda ने Niels Bohr के Quantum Physics सम्बन्धी मत को उद्धृत किया है–"Anyone who is not shocked by Quantum theory has not understood it ."[152] एक अन्य वैज्ञानिक Richard Feynman के मत को इस प्रकार दिया है–

"I think it is safe to say that no one understands Quantum mechanics. Do not keep saying to yourself, if you can possibly avoid it , 'But how it be like that ? because you will go 'down the drain' in to a blind alley from which nobady has yet escaped ." [153]

---

[150] Capra, Fritjof, The Web of Life, p.30
[151] तै. उप. 2/1/1
[152] Panda,N.C.,Maya in physics, p. 73
[153] वही p. 73

आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा Quantum Physics के विषय में जो मत प्रस्तुत किये गये वह वैदिक ऋषियों के द्वारा पहले ही बता दिया गया जैसा कि केनोपनिषद् में वर्णित है–

"यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः ।

अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ॥" [154]

ब्रह्म जिसको ज्ञात नहीं है उसी को ज्ञात है और जिसको ज्ञात है वह उसे नहीं जानता क्योंकि वह जानने वालों का बिना जाना हुआ है और न जानने वालों का जाना हुआ है क्योंकि अन्य वस्तुओं के समान दृश्य न होने से वह विषय रूप से नहीं जाना जा सकता है । ब्रह्म के स्वरूप की भांति ही मूलभूत कण का भी स्वरूप है ।

उपनिषदों में ब्रह्म तत्त्व की जो द्वैधीभाव वाली स्थिति है वही हाइजनबर्ग के अनिश्चितता सिद्धान्त में स्पष्ट की गयी है । इस सिद्धान्त में भी गतिमान कण की स्थिति को स्पष्ट व्यक्त नहीं किया जा सकता है । Particle Physics (कण भौतिकी) में जिस Wave function को बताया गया है, उसमें भी कण के द्विरूपमय स्वीकार किया है । पदार्थ के सूक्ष्मतम स्तर पर जाने पर कण एवं तरंग दोनों प्रकार का व्यवहार देखा जाता है । जो कि विवादास्पद गुणों की विशेष स्थिति है । मूल–कण परमतत्त्व के गुणों की यही स्थिति ईशावस्योपनिषद् में भी बतायी गयी है–

"तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।

तदन्तरस्य सर्वस्य तदुसर्वस्यास्य बाह्यतः ॥" [155]

वह आत्मतत्त्व चलता है और नहीं भी चलता है । वह दूर भी है और समीप भी है । वह सबके अन्तर्मन में भी है और सबके बाहर भी है । इसी प्रकार कठोपनिषद् में भी बताया है–

[154] केन. उप. 2/3

[155] ईश. उप. 5

"आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः ।

कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ॥" [156]

वह स्थित हुआ भी दूर तक जाता है, शयन करता हुआ भी सब ओर पहुँचता है । मद (हर्ष) से युक्त और मद से रहित उस देव को भला मेरे सिवा और कौन जान सकता है । इस प्रकार वह परमतत्त्व स्थिति गति तथा नित्य–अनित्य आदि अनेक विरूद्ध धर्मरूप उपाधिवाला है । बृहदारण्यकोपनिषद् में विपरीत धर्म से युक्त ब्रह्म की स्थिति को बताया है–

"स्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवाय्वनाकाशमसङ्ग.मरसमगन्धमचक्षुष्कमश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमप्राणममुखममात्रमनन्तरमबाह्यं न तद्श्नाति किञ्चन न तदश्नाति कश्चन ॥" [157]

निर्गुण ब्रह्म न मोटा है, न पतला है, न छोटा है, न बड़ा है, न लाल है , न द्रव है, न छाया है,न तम है, न वायु है, न आकाश है, न सङ्ग.है,न रस है, न गन्ध है, न नेत्र है, न कान है,न वाणी है,न मन है, न तेज है, न प्राण है,न मुख है, न माप है,उसमें न अन्दर है, न बाहर है, वह कुछ भी नहीं खाता है

Particle Physics (कण भौतिकी) में जिस Wave function को बताया गया है उसके विषय में अल्बर्ट आइन्सटाइन ने इस प्रकार वर्णन किया है–"It seems as though we must use sometimes the one theory and sometimes the other , while at times we may use either . we are faced with a new kind of difficulty . we have two contradictory picture of reality, separately neither of them fully explains the phenomena of light, but together they do ."[158]

इस प्रकार क्वांटम थ्योरी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में एकरूपता का आभास कराती है तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को परस्पर मानती है – "Quantum theory thus reveals a basic oneness of the universe. It shows that we cannot decompose the world into independently existing smallest units. As we penetrate in to matter, nature does not show us any isolated

[156] कठ. उप. 1/2/21

[157] बृ.उप. 3/8/8

[158] https://en.wikipedia.org/wiki/Wave%E2%80%93particle_duality

'basic building blocks' but rather appears as a complicated web of relations between the various parts of the whole." [159]

इस प्रकार क्वाण्टम थ्योरी में ब्रह्माण्ड के मूल कण तथा परस्पर अन्तर्सम्बद्धता को मुख्यतः प्रतिपादित किया गया है ।

सम्पूर्ण जगत् एक ही कारण से उत्पन्न होता है इस विषय में एक ओर सिद्धान्त बिग बैंग नाम से अभिहित है, जिसे आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा स्वीकार किया गया । बिगबैंग सिद्धान्त के अनुसार यह माना गया कि एक महाविस्फोट के फलस्वरूप ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होती है । ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के सन्दर्भ यही भाव हिरण्यगर्भ एवं नासदीय सूक्त में भी देखा जा सकता है । हिरण्यगर्भ सूक्त में उत्त्पत्ति की प्रारम्भिक अवस्था को इस प्रकार बताया है–

"हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥" [160]

आदिकाल में हिरण्यगर्भ सम्यक् रूप से अवस्थित था । सभी उत्पत्तिशील पदार्थों का एक ही स्थायी परमात्मा है । वही इस पृथिवी और द्युलोक को भी धारण किये हुए है । हम हवि के द्वारा उसी की अर्चना का विधान करें ।

"यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।

य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥" [161]

जो अपनी महान् सामर्थ्य से प्राणयुक्त और देखने वाले सम्पूर्ण प्राणिसमुदाय के एक मात्र अधिपति हैं, जो इन द्विपद (मनुष्यों) और चतुष्पदों (गवादि पशुओं) के स्वामी है । उन सुखस्वरूप अद्वितीय परमेश्वर की हम श्रेष्ठ रीति से अर्चना करते हैं ।

---

[159] Capra, Fritjof, The Tao of Physics, P. 78
[160] ऋ. 10/121/1
[161] वही 10/121/3, यजु. 23/3

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।

यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥" [162]

जिनकी महिमा से ये सभी हिमाच्छादित पर्वत हुए हैं । जिनकी सामर्थ्य को जलपूर्ण नदियाँ, गतिशील पृथिवी, समुद्र, आकाशादि व्यक्त कर रहे हैं । सभी मुख्य दिशाएं भुजाओं के समान जिनकी सामर्थ्य का संकेत कर रही हैं ।

"येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळहा येन स्वः स्तम्भितं येन स्वः नाकः ।

यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥" [163]

जिन्होनें इन ऊँचे अन्तरिक्ष और पृथिवी को अपने–अपने निर्धारित स्थानों पर कुशलता पूर्वक स्थापित किया है । स्वर्गलोक को स्थिर किया है और सूर्य को अन्तरिक्ष में केन्द्रित किया है । इस प्रकार हिरण्यगर्भ सूक्त में द्विपद, चतुष्पद, पृथ्वी, जल, आकाश प्रत्येक तत्त्व को उत्पन्न करने वाला एक मात्र हिरण्यगर्भ ही है । हिरण्यगर्भ शब्द का अर्थ– हिरण्य ज्योति अर्थात् अत्यधिक चमकती हुई अविनाशी ज्योति । वह अखण्ड मूल तत्त्वरूप ज्योति है अर्थात् ज्योतिर्मय पिण्ड जिस गर्भ में है वह । यहां हिरण्यगर्भ का जो शाब्दिक अर्थ बताया है तथा जिस प्रारम्भिक उत्पत्ति अवस्था का वर्णन किया है वही स्थिति आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित बिगबैंग सिद्धान्त में भी प्रतीत होती है । यद्यपि आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति कैसे हुई इस सन्दर्भ में अनेक अवधारणाएं एवं परिकल्पनाए प्रस्तुत की गयी है परन्तु ब्रह्माण्ड के मूलकारण के वास्तविक सत्य को जानना अभी भी संभव नहीं हो पाया है । जस्टिस धनञ्जय देशपाण्डे ने इस सन्दर्भ में आइन्सटाइन के मत को निम्न सन्दर्भ में प्रस्तुत किया है ।

"Search for truth is never completely final but always subject to question and doubt." [164]

---

[162] ऋ. 10/121/4

[163] वही 10/121/5, यजु.32/6

[164] Deshpandey, Justice Dhananjay, Modern Science in Vedas, P. 16

ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में भी बिगबैंग सिद्धान्त से साम्यता दिखाई देती है । नासदीय सूक्त (ऋग्वेद 10/129/1–7) में नासदीय सूक्त में अनेक समस्याएं व्यक्त कर समाधान प्रस्तुत किया गया है ।

1) सृष्टि की प्रारम्भिक अवस्था में न सत् था न असत् ।
2) सृष्टि की मूल अवस्था में वह बिना वायु के श्वास ले रहा था ।
3) गहन तम की अवस्था में प्रकृति अपने कारण (अव्यक्त) रूप में थी ।

"नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमापरोयत् ।

किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥" [165]

प्रलयकाल में पंचभूतादि सृष्टि का अस्तित्त्व नही था और न ही अभावग्रस्त असत् सृष्टि का अस्तित्व था । उस समय भूलोक, आकाश तथा आकाशादि से परे अन्य लोक भी नही था । सबको आच्छादित करने वाला ब्रह्माण्ड भी नही था एवं जल का अस्तित्व भी नही था ।

"न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः ।

आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यत्र परः किं चनास ॥" [166]

इस प्रकार 'Big Bang' की पूर्व अवस्था का वर्णन भी प्राप्त होता है । उस समय न मृत्यु, न अमरता का अस्तित्त्व था, प्राणवायु भी नही थी केवल ब्रह्म मात्र का अस्तित्व विद्यमान था । वह बिना ऑक्सीजन के श्वास ले रहा था जिससे ऊर्जा (Energy) नासदीय सूक्त की सर्वत्र व्याप्ति सिद्ध होती है । सृष्टि के प्रारम्भ में किसी की भी सत्ता विद्यमान नही है । विज्ञान के 'Big Bang' सिद्धान्त में भी यही स्वीकार किया गया है कि सभी की सत्ता 'Big Bang' के बाद निर्मित हुई है ।

"It is scientifically admitted fact that both organic and inorganic matter were not in existence at the beginning of the universe. The 'Big Bang' theory says the same thing. Whatever matter or Energy or space that is in existence today was condensed into a Cosmic egg having unbelievable density. Whatever existed was

[165] ऋ. 10/129/1
[166] वही 10/129/2

neither organic nor inorganic, nor were elements born, nor were there any gases, nor was there any solidity, nor any energy. Because all the aforementioned varieties were born after 'Big Bang'" [167]

सृष्टि उत्पत्ति की प्रक्रिया में परब्रह्म परमात्मा के मन में विराट् सृष्टि को उत्पन्न करने की इच्छाशक्ति (काम) तदनन्तर (रेत) बीज–सृजन–सामर्थ्य द्वारा मानी गयी है ।

"कामस्तदग्रे समवर्ततााधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।

सतो बन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥" [168]

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि सृष्टि की उत्पत्ति के सन्दर्भ में 'Big Bang' से हजारों वर्ष पूर्व ऋषियों द्वारा इसका प्रतिष्ठापन किया जा चुका था कि सृष्टि की रचना कहां से हुई किसने रचना की किसने नही की यह सब परमेश्वर ही जानते हैं ।

"इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ।

यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥" [169]

यह विविध प्रकार की सृष्टि जिस उपादान कारण और निमित्त कारन से उत्पन्न हुई है, यह कारण अर्थात् ईश्वर ही सृष्टि को धारण किये हुए हैं । उसके अतिरिक्त और कोई नहीं । इस सृष्टि को जो स्वामी ईश्वर उत्कृष्ट सत्य रूप आकाश के सदृश अपने प्रकाश में या आनन्द में प्रतिष्ठित है ।

इस प्रकार आधुनिक विज्ञान के कार्य–कारण सम्बन्ध को जानने पर ज्ञात होता है कि यह औपनिषदिक कार्य–कारण सिद्धान्त के समान ही है जिससे ऋषि प्रदत्त औपनिषदिक चिन्तन की सनातनता स्वतः सिद्ध होती है ।

---

[167] Deshpandey, Justice Dhananjay, Modern Science in Vedas, P. 20

[168] ऋ. 10/129/4

[169] ऋ. 10/129/7

पंचम अध्याय

औपनिषदिक कार्य–कारण सिद्धान्त की वर्तमान उपादेयता

उपनिषद् भारतीय संस्कृति के प्राण है । ब्रह्माण्ड में समस्तज्ञान का जो सार तत्त्व है, वही उपनिषदों के समुज्ज्वल स्वरूप में आविर्भूत हुआ है । औपनिषद् ज्ञान समस्त मानव जीवन में सभी प्रकार के सांसारिक ज्ञान, लौकिक कर्म और हृदयगत भाव प्रवाह को अनुप्राणित करते आ रहे हैं । जनमानस के राग–द्वेषादि युक्त देहेन्द्रिय–मन–बुद्धि पर भी औपनिषद् दर्शन का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । मानव जीवन के विभिन्न पक्षों साहित्य, शिल्प, कला, विज्ञान, धर्म, दर्शन तथा नीतिशास्त्र, सभी का निर्माण और प्रचार–प्रसार उपनिषद् ज्ञान को मानव जीवन के परमादर्श के रूप में मानकर हुआ है । उपनिषदों के शक्ति और ज्ञानपरक मन्त्र मनुष्य को इस योग्य बनाते हैं कि शक्ति से सम्पन्न होने के साथ–साथ अपने दिव्य स्वरूप का भी साक्षात्कार कर सके जो सत्–चित्–आनन्दमय स्वरूप युक्त हैं अतः उपनिषद् मानव को रचनात्मक जीवन जीने एवं उसकी सार्थकता का मार्ग प्रशस्त करते हैं । इनमें आध्यात्मिक विरासत और भौतिक जीवन को निरन्तर दिशा एवं प्रकाश देने की ऊर्जा विद्यमान है किन्तु आज उपनिषदों की विषयवस्तु को समझने के लिये अपने पूर्वजों की विरासत के साथ न्याय करने के लिये उसे आध्यात्मिक और भौतिक दोनों सन्दर्भों में विवेचित और विश्लेषित करने की आवश्यकता है । आधुनिक युग तथा आधुनिक आवश्यकता के आलोक में उपनिषदों की अमृतवाणी को व्यवहारिक दृष्टिकोण से सूत्रबद्ध करने की आवश्यकता है । वर्तमान परिदृश्य परिवर्तित होता जा रहा है । प्रौद्योगिकी, उद्योगों, प्राकृतिक सम्पदा के दोहन, नगरीकरण, जनसंख्या विस्फोट, स्वार्थलिप्सा, एकांगी दृष्टिकोण इत्यादि के कारण मनुष्य की शारीरिक और मानसिक समायोजन की क्षमता बिगड़ती जा रही है । मानवीय संवेदनाओं के अभाव में भय, असुरक्षा की स्थिति, धनी–निर्धन के बीच का भेद बढ़ता जा रहा है । भ्रष्टाचार, नैतिक मूल्यों का अवमूल्यन, हिंसा–आतंक, शारीरिक–मानसिक समस्याओं से मानव जीवन आक्रान्त है । ऐसे अनेक तत्त्व हैं जिनसे व्यक्तिगत एवं वैश्विक स्तर पर जीवन नष्ट होता जा रहा है । मनुष्य सुख–शान्ति की खोज में भोगों की मरीचिका में भटक रहा है । सत्ता–संपत्ति की दौड़ में मनुष्य वास्तविक मार्ग को विस्मृत कर चुका है । अतः कुंठित तथा अवसादग्रस्त मनुष्य, विघटित परिवार तथा विश्रृंखलित समाज में परिवर्तन करने के लिये एक नवीन विचारधारा अत्यन्त आवश्यक है । अतः ये प्रश्न मानव मन को उद्वेलित करते हैं–

- क्या औपनिषदिक ज्ञान मानव जीवन की चुनौतियों का सामना कर सकता है ?
- क्या उपनिषद् जो ब्रह्मविद्या या अध्यात्म–ज्ञान तथा दर्शन के स्रोत हैं, वर्तमान समय की समस्याओं का समाधान कर सकते हैं ?
- क्या औपनिषदिक ज्ञान मानव को व्यष्टि से समष्टि की ओर ले जाने में समर्थ हैं ?
- क्या उपनिषद् मनुष्य एवं प्रकृति के अन्तर्सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाने में समर्थ हैं ?
- क्या औपनिषदिक ज्ञान जड़–चेतन सम्बन्धी भेद को समाप्त करने में सक्षम है ?
- क्या औपनिषदिक ज्ञान से समग्र सृष्टि एक ही चेतनतत्त्व से उद्भूत होती है अतः मूल रूप में सृष्टि का एक ही कारण है यह भावना जन मानस में व्याप्त की जा सकती है ।
- क्या औपनिषदिक कार्य–कारण सिद्धान्त से समस्त ब्रह्माण्ड के प्रत्येक तत्त्व के प्रति आत्मभाव की भावना का विकास संभव है ।

इन सभी प्रश्नों का समाधान उपनिषदों में सन्निहित है । वर्तमान समय की तुलना ऋषि–मुनियों के विचारों से करने पर अवगत होता है कि वे निश्चय ही भविष्यद्रष्टा थे । औपनिषदिक कार्य–कारण सिद्धान्त के अन्तर्गत कार्य एवं कारण में अभेद स्वीकार किया गया है । दोनों पृथक् नहीं है अपितु कारण का ही अभिव्यक्त रूप कार्य है एवं कार्य भी विघटन के पश्चात् कारण में ही विलीन हो जाता है । औपनिषदिक कार्य–कारण सिद्धान्त में सृष्टि का मूलाधार एक ही कारण है यह स्वीकार करने से वर्तमान युग में व्याप्त विभिन्न समस्याओं का समाधान संभव है ।

त्यागपूर्वक उपभोग की भावना स्थापित करना

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में धर्म, अर्थ, काम में धर्म को अधिक महत्ता मिली है और सांस्कृतिक आदर्श त्याग का रहा है भोग का नहीं किन्तु वर्तमान समय में मनुष्य की इच्छाएं, आवश्यकताएं अनन्त हैं, उनका पूरा होना संभव नहीं है । सभी अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने के लिये, लोभ व स्वार्थ पूर्ति के लिये, सुख–शान्ति की खोज में, भोगों की मृग मरीचिका में भटक रहे हैं । वास्तविक मार्ग को विस्मृत कर चुके हैं । वस्तुतः ब्रह्माण्ड में जितने भी भौतिक पदार्थ है, वे मनुष्य के साथ नहीं जाने वाले हैं उन पर हमारा कोई आधिपत्य नहीं है । इसी प्रकार जन्मजन्मान्तरों के साथ प्राप्त हुआ सूक्ष्म और कारण शरीर भी परिवर्तनशील और प्रकृतिप्रदत्त है, इसीलिये उसके साथ भी हमारा स्थायी सम्बन्ध नहीं है । सभी पदार्थ एवं मानव शरीर का कारण भी परमतत्त्व ही है अतः औपनिषदिक कार्य–कारण सिद्धान्त को जानने की अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि उससे सभी एक परमात्मा को कारण मानकर तथा ब्रह्माण्ड के कण–

कण में उसी का आधिपत्य स्वीकार किया है । जिससे वैयक्तिक स्वामित्व एवं संग्रह करने की प्रवृत्ति तथा लोभ एवं भोग लिप्सा को समाप्त किया जा सकता है । ईशावास्योपनिषद् में स्पष्ट उपदेश दिया गया है ।

"ईशावास्यमिदं सर्व यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥" [1]

अखिल ब्रह्माण्ड में जो भी जड़–चेतन रूप जगत् है वह सर्वत्र परमेश्वर से व्याप्त है । समस्त जगत् उसी से परिपूर्ण है कोई भी अंश उससे रहित नहीं है । परमात्मा का सर्वदा स्मरण करते हुए मनुष्य इस जगत् में आसक्ति का त्याग करके केवल कर्तव्यपालन के लिये ही कर्मों का आचरण करें । समस्त जगत् परमात्मा की ही अभिव्यक्ति है अतः किसी के भी धन की अभिलाषा, कामना या लालच नहीं करना चाहिये । हमें दूसरों की ही नहीं अपितु अपनी भी वस्तुओं का भी लोभ मोहवश संग्रह नहीं करना चाहिये । सभी भोग्य पदार्थ परमात्मा के ही है और उसकी प्रसन्नता के लिये ही उनका उपयोग करना चाहिये । ईशावास्योपनिषद् के द्वितीय मन्त्र में भी जीवन पर्यन्त अनासक्त भाव से कर्म करने का सन्देश दिया है–

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।

एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥" [2]

इस संसार में शास्त्र नियत कर्मों को करते हुए ही सौ वर्षों करते हुए ही सौ वर्षों तक जीने की इच्छा करनी चाहिये । कर्म करते हुए कर्मों से अलिप्त रहने का यही एक मार्ग है । ईशावास्योपनिषद् जीवन का समग्र दर्शन मानव समाज के समक्ष प्रस्तुत करते हैं । इन मन्त्रों में व्यक्ति, जगत् और ब्रह्म के सम्बन्ध का निरूपण है और जीवन के लक्ष्य की घोषणा है । आवश्यकतानुसार ही विषयवस्तु का ग्रहण करने का आदेश देकर ज्ञान–कर्म सिद्धान्त और व्यवहार का सुन्दर समन्वय किया गया है । जितने भी पदार्थ जगत् में विद्यमान है सभी परमेश्वर प्रदत्त है अतः इनका त्यागपूर्वक उपभोग करना चाहिये । कठोपनिषद् में भी कहा गया है– "प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम् ॥" '[3] वैयक्तिक स्वामित्व ही सब अनर्थों की जड़ है । तत्त्वज्ञान से

[1] ईश.उप. 1
[2] वही 2
[3] क.उप. 1/2/6

वैयक्तिक स्वामित्व के भाव को निरस्त करके समष्टिभाव से सब के हित के लिये कर्म करते हुए जीवन को सफल और सार्थक बनाने का मार्ग प्रशस्त किया है क्योंकि वित्त संग्रह मनुष्य को लक्ष्य च्युत कर देता है–"न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः ॥" [4] वित्त संग्रह को जीवन का लक्ष्य बना लेना पतन का कारण है । आज भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी की समस्या का मूलकारण धनलिप्सा ही है अतः उपनिषदों में वर्णित सत्यस्वरूप को जानने की आवश्यकता है जिससे धनेच्छा से मुक्त हो सके ।

"हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।

तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥" [5]

कर्मयोगी अपनी इच्छा और प्रार्थना को एक साथ अभिव्यक्त करते हुए कहता है कि उस स्वर्णमय पात्र से सत्य का मुख ढका हुआ है । हे जगत् के पोषक आप उसे दूर कीजिये जिससे कि मैं आप को देख सकूं । यहां हिरण्यमय पात्र सम्मोहक प्रकृति है । हिरण्य चमकीला, लुभावना और आकर्षक होता है । वस्तुतः मनुष्य जीवन की सार्थकता इसी में है कि वह एक परमतत्त्व की ओर केन्द्रीभूत है । श्रीमद्भागवद्गीता में भी अनासक्ति पूर्वक कर्म करने का सन्देश दिया है–

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥" [6]

तेरा कर्म करने पर ही अधिकार है उसके फल में नहीं इसलिये तू कर्मों के फल का हेतु मत हो तथा कर्म न करने में भी आसक्ति न हो । इस प्रकार कारण –कार्य सिद्धान्त से अवगत होने पर सभी एक ही कारण को स्वीकार करेंगे तथा सभी एक तत्त्व से प्रादूर्भूत है यह स्वीकार करेंगे जिससे प्रत्येक व्यक्ति के लोभ–लालच एवं धन संग्रह इत्यादि वृत्तियों की समाप्ति संभव है क्योंकि मूलतः मनुष्य को यह ज्ञान होगा कि सभी तात्विक दृष्टि से एक रूप है । ब्रह्माण्ड में हमारा कुछ नहीं है अपितु सभी तत्त्व परमात्मा की ही देन है ।

---

[4] क.उप. 1/1/27

[5] ईश.उप. 15

[6] श्रीमद्भग. 2/47

ब्रह्म एवं ब्रह्माण्ड में एकत्व

उपनिषदों में ब्रह्माण्ड के साथ मनुष्य के अन्तः सम्बन्ध का प्रतिपादन करते हुए जिस प्रकार सभी प्रणियों में ब्रह्मा को अनुभूत किया है उसी प्रकार ब्रह्म और ब्रह्माण्ड में भी एकत्व दर्शन किये है । मुण्डकोपनिषद् में ऋषि ने बताया है–

"यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति ।

यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम् ॥"[7]

मकड़ी (उर्णनाभि) जिस प्रकार अपने शरीर से भिन्न तन्तुओं को निःसृत करती है और समाहित भी कर लेती है । पृथ्वी भी उसी प्रकार अनेक औषधियां उत्पन्न करती है तथा जिस प्रकार जीवित पुरुष से केश लोम उत्पन्न होते हैं और ब्रह्म से समस्त विश्व उत्पन्न होता है । पृथ्वी में जैसे– अन्न, तृण, वृक्ष, लता आदि बीज पड़ते हैं और पृथ्वी बिना किसी पक्षपात के सबको उत्पन्न करती है । उसी प्रकार जीव भी कर्म रूपी बीजों के अनुसार विभिन्न योनियों में उत्पन्न होते हैं साथ ही मनुष्य शरीर से जिस प्रकार केश, रोयें, नख आदि उत्पन्न होते हैं, बढ़ते हैं उसी प्रकार परब्रह्मपरमेश्वर से यह जगत् स्वभाव से ही उत्पन्न होता है एवं विस्तार को प्राप्त करता है ।

इस प्रकार संसार की संरचना पर विचार करते हुए उपनिषदों में अनन्त, असीम ब्रह्माण्ड के मूल में व्यापक दिव्य शक्ति ब्रह्म की पुष्टि है जो अन्तर्यामी रूप से सभी प्राणियों को अनुप्राणित और पोषित करता हुआ स्वयं में धारण करता है । इस प्रकार उपनिषदों में परब्रह्म परमात्मा संसार और प्राणियों के बीच अर्थात् महत् ब्रह्माण्ड तथा प्राणियों के लघु ब्रह्माण्ड के बीच घनिष्ठ एकत्व का प्रतिपादन किया है । उपनिषदों के तत्त्व दृष्टा ऋषियों ने ब्रह्म एवं ब्रह्माण्ड में एकत्व को अनुभूत किया है । जिस प्रकार सूर्य का तेज ब्रह्माण्ड के कण–कण में व्याप्त हो जाता है उसी प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ब्रह्म के तेज से परिव्याप्त है ।

[7] मु.उप. 1/1/7

"ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्मा दक्षिणतश्चोत्तरेण ।

अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥"[8]

यह अमृत ब्रह्म ही आगे है, ब्रह्म ही पीछे है, ब्रह्म ही दायीं–बायीं ओर है, ऊपर फैला हुआ है, वह सब ब्रह्म ही है । इस प्रकार सृष्टि के कण–कण में व्याप्त ब्रह्म समस्त ब्रह्माण्ड में रहते हुए भी उससे बाहर रहता है–

"एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति ।

तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥" [9]

जो एक सबको अपने अधीन रखने वाला और सम्पूर्ण भूतों का एक ही अन्तरात्मा अपने एक रूप को अनेक प्रकार का कर लेता है, अपनी बुद्धि में स्थित उस संसार के दुःखों आत्मदेव को जो धीर (विवेकी) पुरुष देखते हैं उन्हीं को नित्य सुख प्राप्त होता है, औरों को नहीं । प्रश्नोपनिषद् में एक नदी के दृष्टान्त से सम्पूर्ण जगत् का पुरुश्रायत्व प्रतिपादन किया है–"स यथेमा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते ॥"[10] जिस प्रकार समुद्र की ओर बहती हुई ये नदियां समुद्र में पहुचकर अस्त हो जाती हैं, उनके नाम रूप नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ब्रह्म से ही उत्पन्न होकर उसी में मिल जाता है ।

उपनिषदों में वर्णित कार्य–कारण सिद्धान्त को जानने पर ज्ञात होता है कि जो पिण्ड में है, वही ब्रह्माण्ड में है । ब्रह्म एवं आत्मा में परस्पर अभेद सम्बन्ध माना गया है, क्योंकि मूलतः दोनों एक ही तत्त्व है जिनके पृथक् होने का प्रश्न ही नहीं उठता है । शुद्धात्मा ही ब्रह्म है । मायोपहित आत्मा ही ईश्वर है तथा अविच्छिन्न आत्मा जीव है; जबकि ब्रह्म शुद्धात्मा है । उपनिषदों में परमतत्त्व के वाचक के रूप में आत्मा और ब्रह्म शब्द उपलब्ध होते हैं, यह सम्पूर्ण विश्व ही ब्रह्म है और ब्रह्म ही आत्मा है । दोनों सत्ताओं के एक ही होने से अर्थात् बनाने वाला एवं बनने वाला दोनों एक ही है अतः कारण एवं कार्य में वही सम्बन्ध है, जो जलती हुई

[8] मु.उप. 2/2/11
[9] क.उप. 2/2/12
[10] प्र.उप. 6/5

अग्नि और उससे निष्पन्न स्फुल्लिंगो में होता है । ब्रह्म एवं आत्मा दोनों एक ही तत्त्व के द्योतक है । दोनों का प्रमुख उद्देश्य सम्पूर्ण विश्व में एक ही सत्ता का विकास सिद्ध करना है ।

ऋषियों द्वारा अनुभूत एकत्व से अथवा सारे ब्रह्माण्ड को सम्पूर्णता में देखने पर जीव जगत् से सम्बन्धित सभी निष्कर्ष प्रासंगिक है क्योंकि जगत् के कारण के विषय में जानने पर एवं कार्य–कारण में अभेद को स्वीकारने पर हमारा दृष्टिकोण स्वतः परिवर्तित हो जायेगा । जिससे निश्चय ही मानव जगत् में एकत्व भाव से परिपूर्ण होकर व्यवहार करेगा । व्यक्ति तथा समाज का आचरण प्रत्येक तत्त्व के प्रति सर्वात्मभाव से परिपूर्ण होगा ।

बृहदारण्यकोपनिषद् में ब्रह्म को सभी प्राणियों का अधिपति कहा गया है । जिस प्रकार रथ की नाभि में तथा रथ की नेमि में सभी अरें समर्पित रहते हैं उसी प्रकार उसी एक ब्रह्म में समस्त भूत, देव, लोक, प्राण एवं आत्माएं विद्यमान है ।

"स वा अयमात्मा सर्वेषां भूतानामभिपतिः सर्वेषां भूतानां राजा तद्यथा रथनाभौ च रथनेमौ चाराः सर्वे समर्पिताः एवमेवावस्मिनात्मनि सर्वाणि भूतानि सर्वे देवाः सर्वे लोकाः सर्वे प्राणाः सर्व एत आत्मानः समर्पिताः ॥"[11]

बृहदारण्यकोपनिषद् में राजा जनक की सभा में गार्गी के प्रश्नों के उत्तर देते हुए याज्ञावल्क्य ने कहा कि समस्त विश्व जल में ओतप्रोत है । गन्धर्व लोक आदित्य लोक में, आदित्यलोक चन्द्रलोक में तथा चन्द्र लोक नक्षत्र लोक में ओतप्रोत है । नक्षत्र लोक देवलोक में, देवलोक इन्द्रलोक में, इन्द्रलोक प्रजापति लोक में तथा प्रजापति लोक ब्रह्मलोक में ओतप्रोत है ।[12] इस प्रकार समस्तलोकों को ब्रह्मलोक में ओतप्रोत देखने वाला यह प्रसंग ब्रह्म और ब्रह्माण्ड में एकत्व भाव को सम्पुष्ट करता है अतः औपनिषदिक कार्य–कारण सिद्धान्त से ब्रह्म एवं ब्रह्माण्ड में एकत्वानुभूति संभव है ।

जड़ एवं चेतन में अभेद

औपनिषदिक ऋषियों ने गहन तप साधना के फलस्वरूप सम्पूर्ण जीव और जगत् के मूलतत्त्व तथा अन्तर्निहित तत्त्व को अनुभूत किया । इसी के परिणाम स्वरूप सम्पूर्ण जगत् को चेतनमय

[11] बृ.उप. 2/5/15
[12] वही 3/6/1

स्वीकार किया । यह ऋषि चेतना से ही जड़ एवं चेतन का एकत्वरूप अभेद ज्ञान तथा समस्त जगत् के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होता है । सामान्यतः मानव जीवन में जड़ व चेतन का भेद स्वीकार किया जाता है किन्तु ऋषियों का ऐसा अनुभव है कि यह सम्पूर्ण जगत् तत्त्वतः चैतन्यमय है । ईशावस्योपनिषद् में सभी भूतों को एक ही आत्मा में देखने वाले अभेददर्शी की स्थिति को इस प्रकार बताया है–

"यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ।

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥" [13]

जो साधक सम्पूर्ण भूतों को आत्मा में ही देखता है और समस्त भूतों में भी आत्मा को ही देखता है, वह इस सार्वात्म्यदर्शन के कारण ही किसी से घृणा नहीं करता है । औपनिषदिक चिन्तन में जिस प्रकार जड़ एवं चेतन में अभेद मानते हुए कण–कण में एक ही तत्त्व की सत्ता को स्वीकार किया है । उसी प्रकार आधुनिक भौतिकी में भी जड़ एवं चेतन में अभेद स्वीकार किया गया है । महान् भारतीय वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बोस ने भी जड़ एवं चेतन में अभेद को इस प्रकार बताया है–

"In 1899 Bose began a comparative study of the non-living like metals and the animals. Experimentally he found that metals become less sensitive if continuously used, but return to normal after a period of rest. The discovery of the 'Fatigue of Metals' led Bose from the domain of physics to physiology. To the surprise of scientists, the boundary line between the so-called 'living' and 'nonliving' become hard to ascertain . Physiologists listened with ……scientists saw with worder the similar curves of muscles and metals, when they are responding to the effect of fatigue, stimulation., depression and poisonous drugs. Subsequently Bose found that plants also responded in the similar way like metals or muscles. In 1901, May 10, Bose demonstrated all his experiments in England and concluded with the words." [14]

इस प्रकार जगदीश चन्द्रबोस के प्रयोग से यह स्पष्ट हो गया कि सर्वत्र एक ही सत्ता सर्वत्र व्याप्त होने से यह जड़ या यह चेतन है, इस प्रकार का भेद समाप्त हो गया तथा शास्त्रीय

[13] ईश. उप. 6

[14] Jitatmananda, Swami, Holistic Science and Vedanta, p. 2-3

भौतिकी विचारधारा में जड़ एवं चेतन की भिन्न– भिन्न सत्ता मानने के कारण व्याप्त हुए भेद को निम्न प्रयोगों के द्वारा समाप्त किया जाना सम्भव है ।

शास्त्रीय भौतिकी विचारधारा के प्रसिद्धा वैज्ञानिक न्यूटन एवं रेनेडेकार्ट ने जड़ (matter) तथा चेतन (mind) दो भेद स्वीकार किये हैं । इसी भेददृष्टि के कारण मनुष्य ने स्वयं को चेतन सिद्ध करते हुए सम्पूर्ण प्रकृति पर अपना आधिपत्य स्थापित किया ।

"The 'cartesian' division of the world into mind and matter modulated the thinking of Western scientists who visualized all the object of the world as dead parts assembled in to a huge machiine Decartes thought that the universe and every thing in it are automata. He supported this philosophy by the mathematics . He extended his mechanistic view of matter even to living to organisms. In his view plants, animals and human beings are simply machines. He visualized a separate rationl soul. sitting in each human being in the pineal gland in the brain. He tried to show that all living organisms were nothing but automata."[15]

शास्त्रीय भौतिकी में स्वीकृत जड़ एवं चेतन के भेद अनेक समस्याएं मानव जीवन में बढ़ती जा रही हैं अतः औपनिषदिक कार्य–कारण सिद्धान्त का ज्ञान प्राप्त करके एक ऐसी दृष्टि विकसित की जा सकती है जड़ एवं चेतन का भेद समाप्त करना सम्भव हो सकेगा । मनुष्य़, पशु–पक्षी आदि सभी एक ही तत्त्व से प्रादूर्भूत है यह भावना जनमानस में व्याप्त होने पर भेद समाप्त किया जा सकता है ।

"तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूताः साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि ।

प्राणापानौ ब्रीहियवौ तपश्च श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च ॥" [16]

उससे ही बहुत से देवता उत्पन्न हुए तथा साध्यगण, मनुष्य, पशु, पक्षी, प्राण–अपान, ब्रीहि , यव, तप, श्रद्धा, सत्य, ब्रह्मचर्य और विधि ये सब उसी से उत्पन्न हुए है अतः सभी चर–अचर उस एकतत्त्व से उद्भूत है अतः जड़ एवं चेतन में भेद कैसे हो सकता है ।

बाह्य दृष्टि से देखने पर ज्ञान में चेतन एवं अचेतन का भेद दिखाई देता हैं जिसका अतिक्रमण सम्भव नहीं है, लेकिन ऋषियों द्वारा अनुभूत ज्ञान के आधार पर सम्पूर्ण जगत् चैतन्यमय है ।

[15]Panda, N.C., Maya in physics, p. 15
[16] मु. उप. 2/1/7

जिस एक अद्वितीय सद्वस्तु की सत्ता से यह सम्पूर्ण जगत् सत्तावान् है, वही सद्वस्तु चित् स्वरूप तथा स्वयं प्रकाश है । अन्य के सम्बन्ध से जिसका परिचय हो, तथा दूसरे के ज्ञान में प्रतिभासित होने से जिसकी सत्ता का ज्ञान हो, उसी को जड़ (अचेतन) बताया है परन्तु चेतन के आश्रय और सत्ता से ही जड़ की सत्ता है । सम्पूर्ण जगत् के मूल में जो एक वस्तु है, जिसका दूसरा कोई न तो आश्रय है, न ही प्रकाशक, अपनी सत्ता से ही सत्तावान है, स्वयं प्रकाश से प्रकाशित है तथा सम्पूर्ण जगत् के रूप में स्वयमेव प्रतिभासित हो रहा है । वह अद्वितीय तत्त्व निश्चित ही स्वयंप्रकाश तथा चैतन्यमय है । ऋषि चेतना सम्पूर्ण जड़ पदार्थों में उस एक चैतन्यस्वरूप को देखती है । ऋषिगण एक अद्वितीय नित्य, चैतन्यमय तत्त्व को ही इन्द्रियों और मन के सम्मुख जीवों और जड़ पदार्थों के रूप में देखते हैं । इस प्रकार चेतन ही जड़ का यथार्थस्वरूप है । इन्द्रियगोचर ज्ञान आत्मा और अनात्मा के भेद का, अस्मद् और युष्मद् के भेद का, व्यष्टि और समष्टि के भेद का, ज्ञाता और ज्ञेय के भेद का, भोक्ता और भोग्य के भेद का तथा विभिन्न व्यक्तियों के पारस्परिक भेद का अतिक्रमण नहीं करता है, किन्तु ऋषि चेतना स्वयं की आत्मा तथा समस्त प्राणियों की आत्मा में पारमार्थिक एकत्व का दर्शन कराती है ।

समस्त प्राणियों का स्वयं तथा स्वयं की समस्त प्राणियों में अनुभूति करना ही सर्वात्मभाव है । एक ही आत्म विभिन्न स्थावर–जङ्गम शरीरों में नाम रूपों में, आकृति–प्रकृति में प्रतिभासित हो रही है । प्रबुद्ध ऋषि चेतना इसी सत्य का प्रत्यक्ष अनुभव करती है । इसी के फलस्वरूप राग–द्वेष, शत्रु–मित्र, अपने–पराये, हिंसा–घृणा, लोभ–मोह–भय सभी विकार समाप्त हो जाते हैं । इसी चिन्तन से मनुष्य के व्यष्टि एवं समष्टि स्तर पर संतुलन एवं सामंजस्य सम्भव है ।

पर्यावरण सम्पोषण में सहायक

ब्रह्माण्ड का सम्पूर्ण पारिस्थितिकी चक्र स्वतः संतुलित एवं सामंजस्यपूर्ण है । पारिस्थितिकी चक्र का संतुलन पर्यावरण की शुद्धता पर अवलम्बित है किन्तु वर्तमान परिदृश्य परिवर्तित होता जा रहा है । प्रौद्योगिकी, उद्योगों, प्राकृतिक सम्पदा के दोहन, नगरीकरण, जनसंख्या के विस्फोट और तद्जन्य प्रदूषण के कारण मनुष्य की शारीरिक और मानसिक समायोजन की क्षमता बिगड़ती जा रही है । इसी कारण पारिस्थितिकी तंत्र में असन्तुलन बढ़ता जा रहा है । पृथिवी की जीवनदायी शक्ति समाप्त होती जा रही है । मनुष्य ने भूमि, जल, वायु और प्रकृति के संसाधनों का ऐसा दुष्प्रयोग किया है कि उसका प्रभाव पेड़–पौधों, पशु–पक्षियों तथा अन्य

जीवधारियों पर भी दृष्टिगोचर होता है । आज मानवीय क्रियाकलापों, नगरीकरण, औद्योगिकीकरण और रासायनिक प्रयोगों से पर्यावरण में जो असन्तुलन हो रहा है, उससे मनुष्य के मानसिक व्यवहार पर भी दूरगामी प्रभाव हो रहे हैं । वनों का विनाश किया जा रहा है, पशु–पक्षियों की बहुत सी प्रजातियाँ नष्ट हो चुकी हैं । उपयोगिता के नशे में जीवन की संवेदना और सौन्दर्य बोध समाप्त होता जा रहा है । मानवीय संवेदनाओं के अभाव में भय, असुरक्षा की स्थिति, धनी–निर्धन के बीच का भेद बढ़ता जा रहा है । भ्रष्टाचार, नैतिक मूल्यों का अवमूल्यन, हिंसा–आतंक, शारीरिक–मानसिक समस्याओं से मानव जीवन आक्रान्त है । ऐसे अनेक तत्त्व हैं जिनसे व्यक्तिगत एवं वैश्विक स्तर पर जीवन नष्ट होता जा रहा है । मनुष्य सुख–शान्ति की खोज में भोगों की मरीचिका में भटक रहा है । सत्ता–संपत्ति की दौड़ में मनुष्य वास्तविक मार्ग को विस्मृत कर चुका है । अतः कुंठित तथा अवसादग्रस्त मनुष्य, विघटित परिवार तथा विश्रृंखलित समाज में परिवर्तन करने के लिये एक नवीन विचारधारा अत्यन्त आवश्यक है और इस नूतन विचारधारा का मूल औपनिषदिक कार्य–कारण सिद्धान्त में ही विद्यमान है । क्योंकि कार्य–कारण सिद्धान्त का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि कार्य कारण की अभिव्यक्ति है तथा कार्य पुनः कारण में ही समाहित हो जाता है । साथ ही यह भी ज्ञात होता है एक ही कारण से समग्र ब्रह्माण्ड का उद्भव होता है अतः सभी में एक ही सत्ता विद्यमान है । वर्तमान समय की तुलना ऋषि–मुनियों के विचारों से करने पर अवगत होता है कि वे निश्चय ही भविष्यद्रष्टा थे । उन्हें भलीभाँति ज्ञात था कि मनुष्य प्रकृति से पृथक् नहीं वरन् उसका ही अंश है । चेतना के विकास के पीछे सम्पूर्ण प्रकृति, समग्र ब्रह्माण्ड है अतः सभी जीवों से ही नहीं बल्कि पेड़–पौधों, नदी आदि के प्रति भी सद्व्यवहार का उपदेश दिया है । तुलसी, पीपल आदि वृक्षों को जल से सींचना तथा इनकी पूजा अर्चना करना जो आज भी विद्यमान है, इसी विचारधारा का परिणाम है । वैदिक परम्परा में कार्य–कारण सिद्धान्त के अनुसार यह संसार मूल चेतन तत्त्व की अभिव्यक्ति मात्र है । एक ही सत्ता को विद्वान् अनेक नामों से पुकारते हैं ।

"एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति ॥" [17]

"एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति ॥" [18]

---

[17] ऋ. 10/114/5

[18] वही 1/164/46

प्रकृति का चक्र स्वतः व्यवस्थित रूप से गतिमान है । सृष्टि एक मूल तत्त्व से समुद्भूत है अतः संसार की सभी प्राकृतिक वस्तुएँ परस्पर अन्तर्सम्बन्धित हैं । विविध प्राकृतिक तत्त्वों में से एक भी तत्त्व की हानि होने पर सभी तत्त्व प्रभावित होते हैं ।

भौतिक विज्ञान के ही समान विज्ञान की अन्य शाखा जीव विज्ञान में भी 19–20वीं सदीं में मनुष्य एवं प्रकृति के अन्तर्सम्बन्धों पर विशेष बल दिया । मनुष्य एवं प्रकृति के अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन करने के लिये आधुनिक जीव विज्ञानियों द्वारा विकसित जीव विज्ञान की नई शाखा 'पारिस्थितिकी' है । आधुनिक पारिस्थितिकी की वर्तमान संकल्पना का श्रेय जर्मनी के जीव वैज्ञानिक 'अर्नस्ट हेकल' (Ernst Haeckel) को जाता है, जिन्होनें 1869 में पारिस्थितिकी को परिभाषित किया–

"The word ecology is derived from the Greek oikos, meaning "house" or "place to live". Literally, ecology is the study of organisms "at home". Usually ecology is defined as the study of the relation of organisms or groups of organisms to their environment, or the science of the interrelations between living organisms and their environment. Because ecology is concerned especially with the biology of organisms and with functional processes on the lands, in the oceans and in fresh waters, it is more in keeping with the modern emphasis to define ecology as the study of the structure and function of nature." [19]

पारिस्थितिकी के उद्भव के पश्चात् जीव एवं प्रकृति के अन्तर्सम्बन्धों को तथा प्रत्येक तत्त्व की परस्पर सम्बद्धता को गहन दृष्टि से समझते हुए 20वीं सदीं मे 'गहन पारिस्थितिकी' विचारधारा समुद्भूत हुई । गहन पारिस्थितिकी शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 1973 में नार्वे के दार्शनिक आर्नेनैस (Arne Naess) ने किया । 'आर्नेनैस' द्वारा प्रतिपादित गहन पारिस्थितिकीय विचारधारा का विस्तृत वर्णन उनकी पुस्तक '*Ecology Community and lifestyle'* में प्राप्त होता है, इसमें स्पष्ट किया गया है कि मानवीयता को प्रकृति से पृथक् नहीं किया जा सकता है । प्रकृति के बिना मानव का अस्तित्व असंभव है । यदि मानव प्रकृति की हानि करते हैं तो उनकी स्वयं की ही क्षति होती है ।

"Naess offers in this book the basis of new ontology which posists humanity as inseparable from nature. If this ontology is fully understood, it will no longer be

[19] Eugene P. Odum, Fundementals of Ecology, p. 3

possible for us to injure nature wantonly, as this would mean injuring an integral part of ourselves. From this ontological beginning, ethics and pratical action are to fall into place." [20]

गहन पारिस्थितिकी विचारधारा से शास्त्रीय भौतिकी में न्यूटन एवं रेने देकार्त द्वारा स्थापित एकांगी दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ । इस विचारधारा के फलस्वरूप एक नवीन सार्वभौमिक दृष्टिकोण विकसित हुआ ।

"The new concepts in physics have brought about a profound change in our worldview ; from the mechanistic worldview of Descartes and Newton to a holistic, ecological view." [21]

गहन पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण सतही पारिस्थितिकी चिन्तन में व्याप्त एकांगी विकास के स्थान पर धारणीय विकास (Sustainable Development) की अवधारणा पर बल देता है । धारणीय विकास से तात्पर्य है जिसमें भावी पीढ़ियों के लिये संरक्षित सम्पदा का पूर्ण निषेध न हो रहा हो तथा अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप ही प्राकृतिक सम्पदा का उपयोग हो रहा हो न कि लोभ के कारण । Lester Brown ने धारणीय विकास की परिभाषा देते हुए कहा है–"A sustainable society is one that satisfies its needs without diminishing the prospects of future generations." [22]

गहन पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण में प्रकृति के साथ साहचर्य स्थापित करते हुए स्वयं को प्रकृति का अभिन्न अंग स्वीकार किया जाता है । Arne Naess के अनुसार–

"The essence of deep ecology', he says, 'is to ask deeper questions'. This is also the essence of a paradigm shift. We need to be prepared to question every single aspect of the old paradigm. Eventually, we will not need to throw everything away, but before we know that, we need to be willing to question everything. So, deep ecology asks profound question about the very foundation of our modern, scientific, industrial, growth-oriented, materialistic worldview and way of life. It questions this entire paradigm from an ecological perspective: From the

[20] Naess, Arne, Ecology, community and lifestyle, p. 2
[21] Capra, Fritjof, The Web of Life, p. 5
[22] वही p. 4

perspective of our relationship to one another, to future generations, and to the web of life of which we are part." [23]

गहन पारिस्थितिकी विचारधारा पृथिवी पर रहने वाले प्राणी समुदाय एवं प्रकृति के मध्य एक सामञ्जस्य विकसित करती है । Arne Naess ने Bill Devall और George Sessions के मत को उद्धृत करते हुए कहा है–

"Deep ecology is emerging as a way of developing a new balance and harmony between individuals communities, and all of nature. It can potentially satisfy our deepest yearnings: Faith and trust in our most basic intuitions, courage to take direct action, Joyous confidence to dance with the sensual harmonies discovered through sport, playful intercourse with the rhythms of our own bodies, the rhythms of flowing water, and the overall processes of life on Earth." [24]

जीव वैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित गहन पारिस्थितिकी (Deep Ecology) जैसी अवधारणा का प्रतिपादन वैदिक मन्त्रों में भी स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है । गहन पारिस्थितिकी में मुख्यतः परस्पर सम्बद्धता, अन्तर्निर्भरता एवं गहन दृष्टि को स्वीकार किया गया है । गहन पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण से अध्ययन करने पर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का प्रत्येक तत्त्व परस्पर सम्बद्ध एवं अन्तर्निर्भर प्रतीत होता है और अन्त में समग्र सृष्टि का आधार एक ही मूलतत्त्व है, यह गहन दृष्टि विकसित होती है । इस प्रकार गहन पारिस्थितिकी विचारधारा के अनुकूल आचरण करने पर मनुष्य प्रकृति को स्व का ही अंश मानकर व्यवहार करता है, जिससे मनुष्य एवं प्रकृति के अन्तर्सम्बन्ध प्रगाढ़ होते जाते हैं । मानव सदैव पर्यावरण के प्रति सद्भावना से परिपूर्ण व्यवहार करते हुए संरक्षणार्थ कटिबद्ध रहता है, जिससे पारिस्थितिकीय सन्तुलन बना रहता है ।

गहन पारिस्थितिकी विचारधारा (Deep Ecology) में परस्पर सम्बद्धता एवं अन्तनिर्भरता नामक जिन तत्त्वों को स्वीकार किया गया है वह उपनिषदों में भी दृष्टिगोचर होते हैं । उपनिषदों में एक परमतत्त्व (चेतनतत्त्व) को प्राप्त करने के लिये जो मार्ग प्रशस्त किया है, उसमें सभी तत्त्व श्रृंखलाबद्ध रूप में हैं । अन्नमयकोष से आनन्दमयकोष तक एक श्रृखंला बनी है, जिसमें सम्बद्धता एवं अन्तर्निर्भरता है । तैत्तिरीयोपनिषद् में सृष्टि के परमतत्त्व ब्रह्म–आनन्द तक पँहुचने

[23] Capra, Fritjof, The Web of Life, p. 7-8
[24] Naess, Arne, Ecology, community and lifestyle, p. 18

के लिए पाँच स्तरों की विस्तारपूर्वक चर्चा की गयी है, जिनको पार करते हुए मनुष्य परम स्थिति को प्राप्त करता है ।

इस प्रकार सृष्टि के परमतत्त्व ब्रह्म–आनन्द तक पहुचँने के लिये जो अन्न से आनन्द तक की यात्रा है वह व्यष्टि से समष्टि की ओर गतिमान है । तैत्तिरीयोपनिषद् में वर्णित पंचकोष (अन्नमय, प्राणमय,मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय) क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ते है । केवल अन्नमय तक सीमित रहना स्थूल दृष्टि है जिसे आधुनिक वैज्ञानिकों ने Shallow ecology नाम दिया है । स्थूल अवस्था में भेदात्मक स्थिति रहती है । सर्वत्र व्यष्टिगत भेद परिलक्षित होता है किन्तु स्थूल अवस्था से आगे बढ़ने पर भेद समाप्त होता जाता है और सूक्ष्म से सूक्ष्मतर ज्ञान होता है वही एकात्मक ज्ञान है । एकात्मक ज्ञान की अनुभूति होने पर ही ज्ञात होता है कि सारे कोष एक ही चेतना के विविध रूप हैं । पृथ्वी पर विद्यमान सभी तत्त्व अन्तर्सम्बन्धित एवं परस्पर निर्भर हैं अतः सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक ही तत्त्व की अभिव्यक्ति है । ब्रह्माण्ड के अति सूक्ष्मकण की प्रतिक्रिया भी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रभावित करती है । यही विचार आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित Deep ecology (गहन पारिस्थितिकी) में विद्यमान है, जो हजारों वर्ष पूर्व ही हमारे ऋषि–मुनियों ने अनुभूत किये एवं आज भी वह सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर है । Deep ecology में जिस प्रकार सभी जीव तत्त्व एक श्रृंखलाबद्ध रूप में पृथ्वी पर विद्यमान हैं वही भाव माण्डूक्योपनिषद् में वर्णित पंचकोषों में विद्यमान है । प्रत्येक कोष दूसरे कोष से सम्बद्ध है । अन्नमय का प्राणमय से, प्राणमय का मनोमय से, मनोमय का विज्ञानमय से, विज्ञानमय का आनन्दमय से परस्पर सम्बन्ध है । यहां अन्नमयकोष प्राणमय पर, प्राणमयकोष मनोमयकोष पर, मनोमयकोष विज्ञानमयकोष पर एवं विज्ञानमयकोष आनन्दमयकोष पर निर्भर है अतः सृष्टि का प्रत्येक तत्त्व परस्पर सम्बद्ध एवं अन्तर्निर्भर है एवं एक ही चेतना से उद्भूत है । इस प्रकार उपनिषदों के प्रत्येक मन्त्र में पारिस्थितिकीय चिन्तन विद्यमान है । इस प्रकार उपनिषदों एवं आधुनिक विज्ञान में पर्यावरण संरक्षणार्थ जिस चिन्तन को स्वीकार किया गया है उसमें सभी तत्त्व परस्पर सम्बद्ध तथा एक ही कारण से समुद्भूत है अतः औपनिषदिक कार्य–कारण सिद्धान्त को मानने पर ही यह पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि विकसित हो सकती है ।

एक कारणवाद की स्थापना

कारण एवं कार्य विषयक जिज्ञासा सृष्टि के प्रारम्भ से ही मानव–मन में प्रथम प्रश्न के रूप में उद्घाटित होती है । क्या ब्रह्माण्ड का कारण एक ही है ? या किस सत्ता को कारण रूप में

स्वीकार किया है । निम्न प्रश्नों के उत्तर में स्वीकार किया जाता है समस्त चराचर जगत् का एकमात्र ब्रह्म ही कारण है । ब्रह्म ही निमित्त एवं उपादान कारण हैं अर्थात् जगत् की उत्पत्ति करने में निमित्त बनता है तथा स्वयं से ही ब्रह्माण्ड को उत्पन्न भी करता है । श्वेताश्वतरोपनिषद् में एकमात्र ब्रह्म को ही सबका कारण स्वीकार करते हुए बताया है कि उस मूलसत्ता का कोई कारण नहीं है, वही सबका कारण है–

"न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् ।

स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥" [25]

लोक में उसका कोई स्वामी नहीं है, न कोई शासक या उसका चिन्ह ही है । वह सबका कारण है और इन्द्रियाधिष्ठाता जीव का स्वामी है । उसका न कोई उत्पत्तिकर्ता है और न कोई स्वामी ।

"सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम् ।

सर्वस्य प्रभुमीशानां सर्वस्य शरणं बृहत् ॥"[26]

वह समस्त इन्द्रियवृत्तियों के रूप में अवभासित होता हुआ भी समस्त इन्द्रियों से रहित है, तथा सबका प्रभु, शासक और सबका आश्रय एवं कारण है । इस प्रकार जगत् के कारण का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि प्रत्येक तत्त्व में अन्तर्निहित, सबको शक्ति एवं स्फूर्ति देने वाला, सर्वत्र व्याप्त, सबको परस्पर आबद्ध रखने वाला, सब कुछ जानने वाला, सब पर शासन करने वाला, सभी प्राणियों की अन्तरात्मा में स्थित, सभी भूतों में व्याप्त एवं सभी भूतों का उत्पत्तिस्थान कोई परमतत्त्व है । इस परमतत्त्व को अन्वेषण एवं विश्लेषण ही औपनिषद् दर्शन का मूल बीज है अतः सृष्टि संरचना के कारण को जानने का प्रयास करने पर प्रत्येक जीव यह अनुभूति करता है कि एक ही तत्त्व परमसत्य स्वरूप है, वही सम्पूर्ण सृष्टि का सर्जक है ।

ब्रह्माण्ड का एकमात्र कारण ब्रह्म ही विश्व की सृष्टि, रक्षा एव संहार करने वाला है अतः अखिल ब्रह्माण्ड उस एक तत्त्व में ही समाहित है और वही सबका कारण है । इस प्रकार समग्र वैदिक परम्परा में ब्रह्माण्ड का मूल एक ही कारण को स्वीकार किया गया है, यह सिद्धान्त वर्तमान

---

[25] श्वे.उप. 6/9

[26] वही 3/17

समय में अत्यन्त उपयोगी है । समाज में सर्वत्र भेददृष्टि व्याप्त है, मनुष्य ने स्वयं को सबसे पृथक् मानते हुए परस्पर आचरण करना प्रारम्भ कर दिया जिससे भेदभाव की भावना ने विकराल रूप हो गयी अतः ऐसे समय में एक कारणवाद की भावना में मानव समाज को एकत्व के सूत्र में बांधने का सामर्थ्य विद्यमान है, अन्यथा बढती हुई अहंवादी प्रवृत्ति में मनुष्य अज्ञान के कारण सम्पूर्ण समाज को जीवन्तशक्ति को वर्गों में बांट देता हैं ।

समग्र जगत् का एक ही कारण है यह भावना जनमानस में व्याप्त होने पर व्यवहार में चरितार्थ हो सकती है । "सर्वं खल्विदं ब्रह्म"[27] जो कुछ दृश्य अदृश्य है वह सब ब्रह्म ही है । इस प्रकार जब सब कुछ ब्रह्म ही है तो समस्त नित्य एवं अनित्य पदार्थ ब्रह्म के ही है । सब कुछ नित्य है एवं उसी ब्रह्म का रूप है, सभी उसी से उद्भूत है । "तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति ॥"[28] अर्थात् उस सत् ने ईक्षण किया, मैं बहुत हो जाऊ । अनेक प्रकार से उत्पन्न होऊ । कार्य–कारण के नियमानुसार कारण के अनुरूप ही कार्य की सत्ता होती है । ब्रह्म का सर्वकारणत्व सिद्ध करते हुए बताया है–

"एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।

खं वायुज्योर्तिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ॥" [29]

सर्वप्रथम प्राण उत्पन्न होता है, तत्पश्चात् मन इसके बाद इन्द्रियां, तदनन्तर तन्मात्राओं के क्रम से क्रमशः आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथ्वी का आविर्भाव होता है–

"अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मात्स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः ।

अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च, येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा ॥" [30]

उसी अक्षर ब्रह्म से समस्त समुद्र और पर्वत उत्पन्न हुए है, उसी से अनेक रूपों वाली नदियां बहती है । इसी से सम्पूर्ण औषधियां और रस प्रकट हुए है, जिस (रस) से भूतों से परिवेष्टित यह अन्तरात्मा स्थित होता है अतः मन, इन्द्रियों, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी आदि समस्त तत्त्वों का ब्रह्म ही एकमात्र कारण है । इस प्रकार एककारणवाद की भावना स्वीकार करने पर

---

[27] छा.उप. 3/14/1
[28] वही 6/2/3
[29] मु. उप. 2/1/3
[30] वही 2/1/9

भेद दृष्टि का उन्मूलन सम्भव है । इससे समाज में जड़–चेतन, जीव–अजीव, ऊंच–नीच, अमीर–गरीब इत्यादि समस्त प्रकार की भेददृष्टि की समाप्ति सम्भव है । मुण्डकोपनिषद् में अक्षरब्रह्म को कारण बताते हुए कहा गया है–

"तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तापावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्त्रशः प्रभवन्ते सरूपाः ॥

तथाक्षराद्विविधाः सोम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापि यन्ति ॥" [31]

वह यह (अक्षरब्रह्म) सत्य है । जिस प्रकार अत्यन्त प्रदीप्त अग्नि से उसी के समान रूप वाले हजारों स्फुलिङ्ग (चिनगारियां) निकलेते हैं, हे सोम्य ! उसी प्रकार अक्षर से अनेकों भाव प्रकट होते हैं और उसी में लीन होते हैं ।

एककारणवाद की भावना की सम्पुष्टि करते हुए कठोपनिषद् में बताया है कि यह ब्रह्माण्ड एक अश्वत्थ वृक्ष है । जीव, जगत् और ब्रह्म सभी इसी अश्वत्थ वृक्ष में समाश्रित हैं । इससे बाहर कुछ भी नहीं है ।

"ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः ।

तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ।

तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन । एतद्वै तत् ॥" [32]

यह संसार एक सनातन 'अश्वत्थ' है, जिसका मूल ऊपर और शाखायें नीचे हैं, मूल है परब्रह्म जो जगत् का निमित्त कारण है । उसका तात्विक रूप जगदातीत होने के कारण उसे जगत् से ऊपर कहा गया है । उस अश्वत्थ वृक्ष की शाखाएँ, प्रशाखायें, देव, पित्तर, मनुष्य, पशु–पक्षी आदि क्रम से नीचे फैले हुए हैं । ऐसा यह संसार रूपी अश्वत्थ वृक्ष कभी प्रकट रूप में कभी अप्रकट रूप में अपने कारण रूप ब्रह्म में नित्य स्थित रहता है इसलिए यह सनातन है । इसका जो मूल कारण है जिससे यह उत्पन्न होता है, जिससे सुरक्षित है और जिसमें विलीन होता है, वही विशुद्ध दिव्य तत्त्व 'शुक्र' अर्थात् तेजस्वी और पवित्र कहलाता है, उसी को ब्रह्म कहते हैं । उसी का नाम अमृत है । उसी के आश्रय में सब लोक स्थित रहते हैं । उसका कोई अतिक्रमण नहीं कर सकता है । इस प्रकार अश्वत्थ वृक्ष के माध्यम से सार तत्त्व को समझात

[31] मु. उप. 2/1/1
[32] क. उप. 2/3/1

हुए यम ने नचिकेता को कहा कि यही वह तत्त्व है । साधारण वृक्षों का मूल नीचे और शाखायें ऊपर की ओर होती हैं किन्तु यह संसार वृक्ष ऐसा विचित्र है जिसका मूल ऊपर और शाखायें नीचे हैं । वृक्ष में मूल ही प्रधान होता है । संसार वृक्ष के मूल सर्वोपरि परमात्मा है जैसे मूल वृक्ष का आधार होता है वैसे ही परमात्मा सम्पूर्ण जगत् के आधार है इसीलिए वृक्ष को ऊर्ध्वमूलक कहा गया है । कठोपनिषद् के इस तत्त्वदर्शन का विस्तारित रूप गीता के 15वें अध्याय में मिलता है । भगवान् कृष्ण कहते हैं–

"ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।

छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥[33]

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।

अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥" [34]

ऊपर की ओर मूल वाले तथा नीचे की ओर शाखा वाले जिस संसार रूप अश्वत्थ वृक्ष को अव्यय कहते हैं और वेद जिसके पत्ते हैं उस संसार वृक्ष को जो जानता है, वह वेदों को समझता है । ऊपर और नीचे उसके शाखाएँ फैली हैं जो सत्व, रजस्, और तमस गुणों द्वारा पोषित हैं । इन्द्रियों के विषय उसकी कलिकाएं हैं । नीचे मानव जगत् में कर्मों से बंधे फल के रूप में उसके जड़े फैली हैं । इस विशाल और नानारूपात्मक दृश्यमान संसार के ब्रह्म से उत्पत्ति उन्हें छोटे से बीज में से विशालकाय वृक्ष के विकसित होने जैसी प्रक्रिया लगती है । संसार वृक्ष का बीज क्या है ? इस प्रश्न पर ऋषियों ने विचार किया, शिष्यों से संवाद करते हुए वे जिस परिणाम पर पहुंचे, छान्दोग्योपनिषद् में उसकी उद्घोषणा करते हुए कहा है– "सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं ॥" [35] प्रारम्भ में केवल सत् था, एक वही था, दूसरा कोई नहीं । "एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम् ॥"[36] यह सबका ईश्वर है, यह सर्वज्ञ है, यह अन्तर्यामी है और समस्त जीवों की उत्पत्ति तथा लय का स्थान होने के कारण यह सबका कारण है । एक ही के प्रकाश से समस्त जगत् प्रकाशित होता है, इस विषय में कठोपनिषद् में बताया गया है–

---

[33] श्रीमद्भग. 15/1

[34] वही 15/2

[35] छा. उप. 6/2/1

[36] मा.उप. आगम प्रकरण 6

"न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।

तमेव भान्तिमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥" [37]

वहां (उस आत्मतत्त्व में) सूर्य प्रकाशित नहीं होता, चन्द्रमा और तारे भी नहीं चमकते और न विद्युत ही चमचमाती है, फिर इस अग्नि की तो बात ही क्या है ? उसके प्रकाशमान होते हुए ही सब कुछ प्रकाशित होता है और उसके प्रकाश से ही यह सब कुछ भासता है ।

प्रश्नोपनिषद् में छः शिष्यो नें सृष्टि रचना सम्बन्धी जिज्ञासात्मक प्रश्न किये, इनमें सुकेशा के प्रश्न का उत्तर देते हुए सृष्टि उत्पत्ति के क्रम को इस प्रकार बताया है–"स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्राद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म लोका लोकेषु च नाम च ॥" [38] अर्थात् उस पुरुष ने प्राण को रचा, फिर प्राण से श्रद्धाम् आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन और अन्न को अन्न से वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म और लोकों को एवं लोकों में नाम को उत्पन्न किया ।

कारण एवं कार्य में अभेदात्मक ज्ञान

कारण एवं कार्य के विषय में सर्वत्र यह प्रश्न उपस्थित होता है कि कारण एवं कार्य एक है अथवा अलग–अलग है ? वैदिक परम्परा में कारण एवं कार्य को एक ही मानते हुए दोनों में अभेद को स्वीकार किया है तथा कार्य केवल कारण की अभिव्यक्ति मात्र है ।

"मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं यु महेश्वरं ।

तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥" [39]

प्रकृति को माया जानना चाहिये और महेश्वर को ,मायावी । उसी के अवयवभूत (कार्य–कारणसंघात) से यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है । उपनिषदों में ब्रह्मा का आत्मा के साथ अभेदसम्बन्ध बताया है । दोनों सर्वथा एक ही है, व्यष्टि स्तर पर आत्मा तथा समष्टि स्तर पर परमात्मा । उपनिषदों में सर्वत्रा ब्रह्मात्मैक्य का प्रतिपादन किया गया है । विषयी–विषय, दृष्टा और दृश्य, प्रमाता और प्रमेय, कारण एवं कार्य दोनों में एक ही तत्त्व प्रकाशित हो रहा है जो

[37] क.उप. 2/2/15
[38] प्र. उप. 6/4
[39] श्वे. उप. 4/10

दोनों में व्याप्त भी है एवं दोनों के पारगामी भी है । जीवात्मा में शुद्धा चैतन्य प्रकाशित हो रहा है, वही बाह्य रूप से इस समस्त ब्रह्माण्ड में भी व्याप्त है अर्थात् जो व्यष्टि की आत्मा है, वही समष्टि की भी आत्मा है । जो पिण्ड में है, वही ब्रह्माण्ड में है–"तत्त्वमसि"[40] "अहं ब्रह्मास्मि"[41] "अयमात्मा ब्रह्म" [42] इत्यादि महावाक्यों से सिद्ध है अतः कारण एवं कार्य दोनों एक ही है उनमें परस्पर भेद नहीं है । कारण का अभिव्यक्त रूप ही कार्य है तथा कार्य का समापन होने पर पुनः कारण में विलीन होता है । आधुनिक विज्ञान में भी स्वीकार किया किया गया है कि समस्त पदार्थ एक ही ऊर्जा (Energy) के विविध रूप है । आइन्सटाइन सापेक्षता सिद्धान्त (Relativity theory) में बताया है कि Mass को Energy एवं Energy को Mass में परिवर्तित किया जा सकता है । इसके लिये समीकरण भी प्रस्तुत किया है । '*The Tao of physics'* में Fritjof capra ने कारण एवं कार्य के अभेद सम्बन्ध को व्यक्त करते हुए बताया है–

"The basis recurring theme in Hindu mythology is the creation of the world by the self sacrifice of God 'sacrifice' in the original sense of 'making sacred' where by God becomes the world which, in the end, becomes again God. This creation activity of the Divine is called lila, the play of God, and the world is seen as the stage of the divine play. Like most of Hindu mythology, the myth of lila has a strong magical flovour . Brahman is the great magician who transforms himself into the world and he performs this feat with his 'magic creative power' which is the original meaning of maya in Rigveda." [43]

कारण एवं कार्य में अभेद को स्वीकार करने पर मानव जीवन की अनेक समस्याओं को समाप्त किया जा सकता है । वर्तमान में सर्वत्र ऐसी दृष्टि व्याप्त है जिससे प्रत्येक की यह सोच बनती जा रही कि मैं ही श्रेष्ठ हूं अथवा मैं अन्य सभी जीव तत्त्वों से अलग हूं । इसी भावना के कारण हिंसा, आंतक, नैतिक मूल्यों का पतन, शारीरिक मानसिक समस्याएं बढ़ती जा रही है । यह मानसिक दृष्टि शास्त्रीय भौतिकी का विचारधारा का ही परिणाम है, जिसमें जगत् के सभी तत्त्वों को भिन्न–भिन्न मानते हुए परस्पर अन्तर्सम्बद्धता को अस्वीकार किया है । शास्त्रीय भौतिकी के प्रमुख विचारक न्यूटन एवं रेनेडेकार्ट ने कारण एवं कार्य को दो पृथक् सत्ता मानते हुए कहा कि कारण केवल एक ईश्वर है जिसने ब्रह्माण्ड की रचना करके तथा कुछ

[40] छा. उप. 6/12/3
[41] बृ. उप. 1/4/10
[42] वही 2/5/19
[43] Capra, Fritjof, The Tao of Physics, p.100

नियम डालकर छोड़ दिया है, और उन्ही नियमों के अनुरूप ब्रह्माण्ड आज भी गतिशील है । इसी दृष्टि के कारण चेतन एवं जड़ का भेद निरन्तर बढ़ने लगा जो आज भी बना हुआ है–

"Decartes conceived of the universe as a machine .This machine works according to mechanical laws. Matter functions as machine without any purpose, life or spirituality. This was the world machine view Descartes."[44]

शास्त्रीय भौतिकी विचारधारा के ही परिणामस्वरूप कारण अलग है एवं कार्य अलग है । यह भेद सभी मानने लगे जिससे मनुष्य के दृष्टिकोण में परिवर्तन होने लगा अतः इसी दृष्टि में परिवर्तन लाने के लिये औपनिषदिक दृष्टि को आत्मसात् करना अत्यावश्यक है । आध्यात्मिक तत्त्ववेता ऋषियों ने इन उपनिषदों नश्वर संसार में अविनश्वर सत्य को ढूंढ निकालने का स्तुत्य प्रयास किया है । उस मूल सत्ता की अतीन्द्रिय सत्य के साथपूर्ण अभेदत्व की पुष्टि की है । इस अभेदत्व या एकत्व का ज्ञान चेतना के उर्ध्वतम स्तरों पर सहज स्फूर्ति से होता है । तैत्तिरीयोपनिषद् में बताया है कि ब्रह्म क्या है ? इस विषय में वरूण पुत्र भृगु ने प्रश्न किया, उसी प्रश्न का उत्तर देते हुए वरूण ने कहा–"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तद्विजिज्ञासस्व । तद् ब्रह्मेति ।" [45]अर्थात् जिनसे सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं, पालित होते हैं और अन्त में जिसमें विलीन हो जाते हैं उस परमतत्त्व के महत्व को बृहदारण्यकोपनिषद् में बताया है–

"स विश्वकृत् स हि सर्वस्य कर्ता तस्य लोकः स उ लोक एव ॥" [46]

वही विश्वकृत् (कृतकृत्य) है । वही सबका कर्ता है, उसी का लोक है और वही लोक भी है अर्थात् जगत् को बनाने वाले ने जगत् को तो बनाया ही, स्वयं भी लोक में विद्यमान है । उससे भिन्न नहीं है, उसी की सत्ता कण–कण में व्याप्त है । श्रीमद्भगवद्गीता के 9वें अध्याय में श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं–

[44] Panda,N.C.,Maya in physics, p. 418
[45] तै. उप. 3/1/1
[46] बृ. उप. 4/4/13

"सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।

कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥" [47]

हे अर्जुन ! कल्पों के अन्त में सब भूत मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं अर्थात् प्रकृति में लीन होते हैं और कल्पों के आदि में उनको मैं पुनः रचता हूँ ।

माण्डूक्योपनिषद् में कारण एवं कार्य में अभेद को स्पष्ट करते हुए बताया है–

"नात्मभावेन नानेदं न स्वेनापि कथंचन ।

न पृथड् नापृतक्किंचिदति तत्त्वविदो विदुः ॥" [48]

यह नानात्व न तो आत्मस्वरूप से है और न अपने ही स्वरूप से कुछ है । कोई भी वस्तु न तो ब्रह्म से पृथक् है और न अपृथक् ही है । माण्डूक्योपनिषद् में आत्मैकत्व के भाव को सम्पुष्ट करते हुए बताया है–

"जीवात्मनोरनन्यत्वमभेदेन प्रशस्यते ।

नानात्वं निन्द्यते यच्च तदेवं हि समञ्जसम् ॥" [49]

क्योंकि जीव और आत्मा के अभेदरूप से एकत्व की प्रशंसा की गयी है और नानात्व की निन्दा की गयी है, इसलिये वही (यानी उनकी एकता ही) ठीक है ।

इस प्रकार कारण एवं कार्य में अभेद का ज्ञान होने पर मनुष्यों में परस्पर भेद नहीं रह सकता है । सभी शरीरों में एक ही आत्मा की अनुभूति होने पर मन, बुद्धि, हृदय, सभी अभेद ज्ञान से आप्लवित हो जाते हैं । जाति–सम्प्रदाय–उच्च–निम्न–हेयोपादेय इत्यादि समस्त भेद नष्ट हो जाते हैं ।

---

[47] श्रीमद्भग. 9/7

[48] मा.उप. वैतथ्य प्रकरण 34

[49] वही अद्वैत प्रकरण 13

समष्टिपरक दृष्टिकोण का विकास

औपनिषदिक सिद्धान्त सभ्यता एवं संस्कृति के सारतत्त्व तथा विश्व में व्याप्त असामंजस्यता को दूर करके संतुलन एवं समन्वय लाने की सामर्थ्य से पूर्ण है । भौतिक नियम सृष्टि में सृजन और विनाश की प्रक्रिया का संचालन करते हुए जैसे प्रकृति की सुनिश्चित व्यवस्था रखते हैं, उसी प्रकार आध्यात्मिक ज्ञान विश्व चेतना को सुसंस्कृत और उच्चतर अवस्था में स्थापित करता है । मनुष्य जिस प्रकार सुख, समृद्धि और सुरक्षा प्राप्त करने के लिये भौतिक नियमों का अनुसन्धान करता है । उसी प्रकार अभ्युदय एवं निःश्रेयस को प्राप्त करने के लिये औपनिष्दिक कार्य–कारण सिद्धान्त को समझना अत्यावश्यक है । कार्य–कारण सिद्धान्त के अनुशीलन और अनुपालन से पारस्परिक विरोध, द्वन्द्व या संघर्ष समाप्त हो जाता है तथा वैश्विक शान्ति एवं कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता है । ईशावास्योपनिषद् में इसी भाव को स्पष्ट करते हुए कहा गया है–

"यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥
यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥" [50]

जो सम्पूर्ण प्राणियों में आत्मा को और परमात्मा में सब को देखता है, किसी से घृणा नहीं करता और न ही किसी की निन्दा–स्तुति करता है क्योंकि ईश्वर के ऐसे रूप को जानने वाला 'एकत्वमनुपश्यतः' योगी सब प्राणियों में एकता का अनुभव करता है ।

सभी उपनिषद सह–अस्तित्त्ववाद की लोककल्याणकारी भावना से अनुप्राणित हैं । कठोपनिषद् एवं श्वेताश्वतरोपनिषद् के शान्ति मंत्र में इसी भाव को स्पष्ट करते हुए बताया है–

"ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै ॥" [51]

---

[50] ईश.उप. 6–7
[51] क. उप., श्वे. उप. शान्तिमंत्र

यहाँ आचार्य एवं शिष्य दोनों मिलकर परमात्मा से प्रार्थना करते हैं । हे पूर्ण ब्रह्म परमात्मा ! आप हम गुरू–शिष्य दोनों की साथ–साथ सब प्रकार से रक्षा करें, हम दोनों का समुचित रूप से पालन पोषण करें, हम दोनों साथ ही साथ सब प्रकार से बल को प्राप्त करें, हम दोनों जीवनपर्यन्त स्नेह सूत्र से बंधे रहें, हममें परस्पर द्वेष भाव न हो । हे परमात्मा ! तीनों पापों की निवृत्ति हो ।

समाज के वृहद् परिपेक्ष्य में शान्ति मंत्र मनुष्य का पुनर्निर्माण करने वाले एक स्वर्णिम सूत्र हैं । निस्संदेह जन्म के साथ ही हमारी सम्बन्ध भावना सक्रिय हो जाती है और हम माता, पिता, परिजन आदि के साथ सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं । सम्बन्ध भावना का विस्तार हमारी सामाजिक प्रवृति को उजागर करती है और समाज में व्याप्त 'मैं' 'हम' में परिवर्तित होने लगता है । व्यवहारिक रूप से यह सम्बन्ध भावना सह–अस्तित्व तक सीमित रहती है । जबकि यह मंत्र प्रेरणा देता है कि 'मैं' के स्थान पर 'हम' सब की भावना तथा व्यक्ति के स्थान पर समष्टि को प्रतिष्ठित करें और इस प्रकार आत्मिक विकास का मार्ग प्रशस्त होता है ।

ईशावास्योपनिषद् और बृहदारण्यकोपनिषद् के शान्तिमंत्र में ब्रह्म की पूर्णता को बताते हुए कहा गया है–

"ऊँ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥" [52]

अपने अर्थ और महत्व में यह मन्त्र अत्यन्त गम्भीर है । मंत्र में किञ्चित् शब्दों में सम्पूर्ण दर्शन केन्द्रीभूत है । अदृश्य (ब्रह्म) पूर्ण है, दृश्य (जगत्) पूर्ण है । पूर्ण (ब्रह्म) से पूर्ण (दृश्य जगत्) की उत्पत्ति हुई है । पूर्ण (दृश्य जगत्) की सृष्टि होने के बाद भी पूर्ण (ब्रह्म) पूर्ण ब्रह्म ही रहता है ।

ऐसे दृष्टि बोध से सामाजिक व्यवस्था विकसित होती है जो आनिवार्यतः मंगलकारी होती है और जीवन का समुचित विकास करती है । यह कल्याण संलग्न भावना मनुष्य को पाश्विकता की वृति से मुक्त करती है इसलिये कल्याणकारी भावों को ग्रहण करने और पारस्परिक सुख–दुःख के सहभागी बन कर कल्याणप्रद कार्य करने के लिये प्रयत्न करना

[52] ईश.उप., बृ.उप., शान्तिमंत्र

चाहिए । उपनिषदों में जो एकात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है, उसी की आज आवश्यकता है । औपनिषदिक विचारों को मानवजीवन में चरितार्थ करने पर दृष्टि में परिवर्तन होगा और सभी समस्याएं स्वतः समाप्त हो जायेगी अतः औपनिषदिक सिद्धान्तों की वर्तमान में महती उपादेयता है ।

समग्र मानव समाज के वर्तमान के साथ–साथ भविष्य के सुख–शान्ति के सिद्धान्त को बताने वाले उपनिषदों जैसे हितकर सिद्धान्त अन्यत्र दुर्लभ है । जीवन के विविध पक्षों को उजागर करते हुए उनकी आध्यात्मिक मीमांसा प्रस्तुत करना उपनिषदों की एक अद्वितीय विशिष्टता है । वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना के साथ तादात्म्य स्थापित करना तथा सम्पूर्ण विश्व को ईश्वरमय देखना ही उपनिषदों का मूल सिद्धान्त है ।

औपनिषदिक चिन्तन में जिस समष्टिपरक भाव को स्वीकार किया गया है तथा वही मानव जीवन के लिये उपयोगी भी है, यह आधुनिक विज्ञान में स्वीकार किया है । सृष्टि के प्रत्येक अंश को सम्बद्ध माना हैं, क्योंकि सभी परमाणु परस्पर सम्बद्ध है । इस प्रकार एक समग्र दृष्टि का भाव आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा भी स्वीकृत है–

"This fundamental holistic pattern behind all systems was first proposed by physicist Devid Bohm. Bohm's successful experiment with Bell's Theorem in 1972 confirmed the fact that there is a far deeper underlying unity behind all natural phenomena. Bohm proposed the theory of implicate order in which all things and events are unfolded in a total wholeness and unity."[53]

एकांगी दृष्टिकोण का उन्मूलन

मानवजीवन भौतिकता एवं आध्यात्मिकता दोनों से सम्बन्धित है । मनुष्य स्वाभाविक प्रवृति के कारण भौतिक पक्ष की ओर अधिक उन्मुख होता है । जिसको चयन करने पर अहंकेन्द्रिता एवं प्रतिस्पर्धा का भाव जाग्रत होता है । यह भाव मनुष्य को दृष्टिकोण को पूर्णतया एकांगी बना देते हैं जिससे व्यक्तिगत एवं सामाजिक स्तर पर व्यक्ति का एकांगी आचरण बढ़ता जाता है जो मानव जीवन के लिये अभिशाप है । वर्तमान में तो एकांगी प्रवृति निरन्तर बढ़ती जा रही है । प्रत्येक व्यक्ति सुखभोग के लिये प्रयत्नशील है । ऐसे समय में वह केवल स्वपक्ष का ही अवलोकन करता है । मनुष्य की यह प्रवृत्ति केवल मानव समुदाय तक सीमित नहीं है, अपितु

[53] Jitatmananda, Swami, Holistic science and Vedanta P. 15

पेड़–पौधे, जीव–जन्तु, नदी, समुद्र इत्यादि विभिन्न प्राकृतिक जीव एवं तत्त्व भी इससे पृथक् नहीं है । स्वस्वार्थ की पूर्ति के लिये मनुष्य प्राकृतिक तत्वों का आवश्यकता से अधिक दोहन कर रहा है जिससे वे समाप्ति की अवस्था में आ गये हैं । पाश्चात्य संस्कृति के अनुकरण के कारण वर्तमान में बढ़ती प्रवृति को नियन्त्रित करना आवश्यक है । यह प्रवृति न्यूटन एवं रेनेडेकार्ट के यांत्रिकता सम्बन्धी विचारों से निरन्तर बढ़ती गयी । इसी दृष्टिकोण के कारण जिस मनुष्य ने अपनी सुख–सुविधा के लिये औद्यौगिक विकास किया, आज उसी मनुष्य का अस्तित्व खतरे में हैं । 19वीं शताब्दी के अंग्रेज Romentic Poet willam Blake ने न्यूटन के एकांगी दृष्टिकोण की आलोचना करते हुए कहा है–

"May God us keep

From a single vision and Newton's sleep" [54]

इस प्रकार शास्त्रीय भौतिकी ने एकांगी दृष्टिकोण वाली विचारधारा प्रस्तुत की जो भारतीय परम्परा के विपरीत थी इसलिये आधुनिक भौतिकी ने इसे अस्वीकार करते हुए एक ऐसी विचारधारा प्रस्तुत की जिसमें मनुष्य एवं प्रकृति को परस्पर सम्बद्ध स्वीकार किया गया । ऐसी विचारधारा प्रस्तुत की है जिससे सम्पूर्ण सृष्टि को परस्पर सम्बद्ध माना गया है, क्योंकि एक ही कारण से उत्पन्न हुए और कोई भी एक–दूसरे से पृथक् नहीं है । सभी एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं इस प्रकार आधुनिक भौतिकी में शास्त्रीय भौतिकी के एकांगी दृष्टिकोण वाले विचार को अस्वीकार किया गया ।

"This mind is a part of the universal mind. Each mind is connected with every other mind. And each mind, wherever it is located, is in actual communication with the whole world.The end and The aim of all science is to find the unity, the one out of which the manifold is being manufactured, that one existing as many."[55]

इस प्रकार आधुनिक भौतिकी में मानव को व्यष्टि एवं समष्टि स्तर पर अन्तःसम्बन्धित माना है अतः केवल व्यष्टिभाव से परिपूर्ण अर्थात् एकांगी दृष्टिकोण वाली विचारधारा रखने पर भेददृष्टि अनेक समस्याएं होगी जो मानव–जीवन के लिये घातक है ।

[54] Capra, Fritjof, The Web of Life, p.21
[55] Jitatmananda, Swami, Holistic science and Vedanta P.16

औपनिषदिक चिन्तन में भी भेददृष्टि की निन्दा की गयी है । क्योंकि जो मनुष्य भेदत्व को देखता है वह जन्म–मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है–

"यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह ।

मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥" [56]

जो तत्त्व इस (देहेन्द्रिय संघात) में भासता है, वही अन्यत्र (देहादि से परे) भी है जो अन्यत्र है वही इसमें है । जो मनुष्य इस तत्त्व में नानात्व देखता है वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त करता है ।

"मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन

मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति ॥" [57]

मन से ही यह तत्त्व प्राप्त करने योग्य है । इस ब्रह्मतत्त्व में नाना कुछ भी नहीं है । जो पुरुष इसमें नानात्व देखता है वह मृत्यु से मृत्यु को जाता है । इस प्रकार उपनिषदों में ब्रह्म एवं ब्रह्माण्ड में भेददृष्टि रखने पर भेदात्मक दृष्टि बढ़ती जाती है अतः एकात्मक दृष्टि को विक्सित करने के लिये औपनिषदिक कार्य–कारण सिद्धान्त का ज्ञान अपरिहार्य है क्योंकि समस्त भूतों का एक ही कारण है यह दृष्टि होने पर व्यक्ति को सुख प्राप्त होता है ।कारण एवं कार्य का अभेदात्मक ज्ञान होने पर एकांगी दृष्टिकोण की समाप्ति संभव है ।

जीवन प्रत्येक क्षेत्र में व्यवहारिक ज्ञान देने की तथा आधुनिक समाज की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने की सामर्थ्य उपनिषदों में विद्यमान है । समाज में रहते हुए व्यवहार करने के लिये ही भिन्न–भिन्न नाम उपाधि स्वरूप ग्रहण किये जाते हैं । वास्तविक रूप में समस्त जड़–चेतन तत्त्व एक ही है । विभिन्न जीव रूप, कार्य एवं नाम की दृष्टि से व्यवहार मात्र के लिये अलग–अलग है । वस्तुतः सभी एक ही तत्त्व से उद्भूत है तथा परस्पर सम्बद्ध है ।

"रूपकार्यसमाख्याश्च भिद्यन्ते तत्र तत्र वै ।

आकाशस्य न भेदोऽस्ति तद्वज्जीवेषु निर्णयः ॥" [58]

---

[56] कठ. उप. 2/1/10

[57] वही 2/1/11

[58] मा. उप., अद्वैत प्रकरण, 3/6

घटादि उपाधियों के कारण प्रतीत होने वाले भिन्न–भिन्न आकाशों के रूप , कार्य और नाम में तो भेद है, परन्तु आकाश में तो कोई भेद नहीं है । उसी प्रकार जीवों के विषय में भी समझना चाहिये । अतः व्यवहार में व्याप्त भेद पारमार्थिक दृष्टि करते से ज्ञान करते हुए सभी के साथ सर्वात्मभाव से परिपूर्ण आचरण करना चाहिये । समष्टिपरक भाव से युक्त आचरण करने के लिये कार्य–कारण सिद्धान्त का ज्ञान आवश्यक है जो एकांगी दृष्टिकोण को समाप्त करने में समर्थ है ।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण परिवर्तन में सहायक

वैज्ञानिक दृष्टिकोण का मानव जीवन को प्रभावित करने वाले तत्त्वों में महत्वपूर्ण स्थान है । यह नवीन पीढ़ी की सोच को निर्धारित करता है तथा जीवन को एक नूतन दिशा प्रदान करता है । आज प्रत्येक व्यक्ति विज्ञान द्वारा स्वीकृत सिद्धान्तों को प्रमाणित मानकर उन पर विश्वास करता है तथा जीवन में उनके महत्व को स्वीकार करता है अतः सर्वात्मभाव से परिपूर्ण नवीन वैज्ञानिक दृष्टि को स्वीकार करना अत्यावश्यक है ।

वर्तमान समय में व्याप्त समस्याओं के समाधान के लिये वैज्ञानिक दृष्टिकोण को आत्मसात् करना आनिवार्य प्रतीत होता है जो औपनिषदिक चिन्तन से साम्यता रखता है । वैदिक ऋषियों द्वारा प्रदत्त ज्ञान पूर्णतः वैज्ञानिक है जो आज भी प्रासंगिक है अतः समाज में सभी समस्याओं के समाधान के लिये औपनिषदिक चिन्तन को स्वीकार करते हुए व्यवहार में चरितार्थ करने की आवश्यकता है । आधुनिक वैज्ञानिक जगत् नये सिद्धान्तों से जिस स्तर पर पहुचे है, वह ऋषि चिन्तन के अत्यन्त समीप दिखाई देते हैं । समस्त समस्याओं का मूल कारण मानव का दृष्टिकोण ही है, जो कि पारम्परिक विज्ञान के विचारों से प्रभावित है ।

पारम्परिक विज्ञान भौतिकतावादी सोच पर आधारित है जो मानव के लिये तात्कालिक दृष्टि से तो लाभकारी है, किन्तु इनके दीर्घकालिक परिणाम घातक है । इसमें प्रकृति के साथ समभाव को न मानकर स्वयं को प्रकृति से पृथक् मानकर व्यवहार किया गया । विभिन्न प्राकृतिक तत्वों को भी स्वयं से पृथक् माना गया । इन्हीं सिद्धान्तों के फलस्वरूप उपभोगवादी प्रवृत्ति को प्रबल होती गयी, जिससे मनुष्य ने प्रकृति का असीमित दोहन प्रारम्भ किया । मनुष्य के इस बर्बरता पूर व्यवहार के कारण ही पृथ्वी पर रहने वाले जीव समुदाय का अस्तित्व खतरे में पड़ गया । इस असीमित दोहन से प्राकृतिक संसाधन जैसे–कोयल, गैस, पेट्रोलियम आदि समाप्ति

की ओर बढने लगे हैं । पारम्परिक भौतिकी के सिद्धान्तों ने मनुष्य केन्द्रित विचारधारा को बढ़ावा दिया, जिससे भावात्मक सम्बन्ध समाप्त होते गये । यदि आने वाले समय में भी प्रकृति क इसी तरह दोहन एवं शोषण चलता रहा तो भावी पीढ़ियों का जीवन असम्भव हो जायेगा ।

"The old paradigm is based on anthropocentric (human-centred) values, deep ecology is grounded in ecocentric (earth-centred) values. It is a world view that acknowledge the inherent value of non human life. All living beings are members of ecological communities bound together in a network of interdependencies. When this deep ecological perception becomes part of our daily awareness, a radically new system of ethics emerges." [59]

इसी कारण बुद्धिजीवी लोग, विचारक, वैज्ञानिक दृष्टिकोण में परिवर्तन करने का प्रयत्न कर रहे हैं ।

"Today science is slowly shifting to a new paradigm. What is a paradigm? Thomas Kuhn explains the meaning of paradigm: "On the one hand, it stands for the entire constellation of beliefs, values, techniques and so on shared by the members of a given community. On the other hand, it denotes one sort of elements in that constellation, the concrete puzzle-solution which, employeed as models or examples, can replace explicit rules as a basis for the solution of the remaining puzzle of normal science" A new paradigm may emerge as a sudden illumination or a 'gestalt switch' or an 'intutive leap' as Einstein said, to a completely new way of thinking."[60]

आज विज्ञान के आधुनिक सिद्धान्त एवं प्रयोगों से निरन्तर नवीन सोच बनती जा रही हैं,जिससे यह प्रमाणित होता जा रहा है कि समस्त जीव, पृथ्वी का समग्र समुदाय एक दुसरे के पूरक एवं निर्धारित घटक है । किसी भी एक जो यदि प्रभावित किया जाता है तो सभी पर उसका प्रभाव दिखाई देता हैं । सम्पूर्ण विश्व को एक समग्र दृष्टि से देखा जाता है जिसका एक अवयव मानव भी है । प्रकृति को विजित एवं भोग्य न मानकर प्रकृति के विभिन्न अवयवों के साथ एकाकार मानता है । यहां मनुष्य के कर्त्तव्यों एवं अधिकारों को जोड़कर एक समन्वयात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है, जिससे भावी पीढ़ियों का अस्तित्व संभव हो सके ।

[59] Capra, Fritjof, The Web of Life, p. 11
[60] Jitatmananda, Swami, Holistic science and Vedanta P. 16

"The new paradigm may be called a holistic worldview, seeing the world as an integrated whole rather than a dissociated collection of parts. It may also be called an ecological view, if the term 'ecological' is used in a much broader and deeper sense than usual. Deep ecological awareness recognizes the fundmental interdependence of all phenomena and the fact that, as individuals and societies, we are all embedded in (and Ultimately dependent on) the cyclical processes of nature." [61]

इस प्रकार के विचार होने पर ही यह ज्ञान होगा कि हम प्रकृति के ही अंश है उससे पृथक हमारा अस्तित्व संभव नहीं है ।

"We discover that parts of nature are parts ourselves. We cannot exist separate from them. If we try, our self-realising is blocked." [62]

प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय प्रकृति पर निर्भर है । सभी प्राणी इसी पर अवस्थित है । यही भाव व्यक्त करते हुए उपनिषद् में कहा गया है–

> "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तद्विजिज्ञासस्व । तद् ब्रह्मेति ॥" [63]

इस प्रकार एक ऐसी समग्र दृष्टि का विकास किया गया है जिसमें प्रकृति को विजित एवं भोग्य न मानकर मानव स्वयं को प्रकृति के विभिन्न अवयवों से एकाकार मानते हैं ।

इस प्रकार वर्तमान वैज्ञानिक जगत् में भी इस निष्कर्ष को स्वीकार किया गया है कि औपनिषदिक दृष्टि से परिपूर्ण जीवन ही उपयुक्त है अतः ऋषिप्रदत्त दृष्टिकोण को मानकर ही जीवन में व्यवहार करने की आवश्यकता है ।

---

[61] Capra, Fritjof, The Web of Life, p. 6
[62] Naess, Arne, Ecology, community and lifestyle, p. 10
[63] तै.उप. 3/1/1

उपसंहार

ब्रह्माण्ड की संरचना के रहस्यों को उद्घाटित करने में वैदिक परम्परा शाश्वत् एवं यथार्थ ज्ञान राशि के समुच्चय से परिपूर्ण है । ऋषियों ने अपनी दिव्य दृष्टि से जिस ज्ञान देखा एवं अनुभूत किया, वह मानव मात्र ही नहीं वरन् समस्त ब्रह्माण्ड के जीवधारियों, घटकों, जैव–अजैव तत्त्वों के कल्याण एवं सुख की भावना से परिपूर्ण है । दृश्य जगत् में समस्त प्राणी एवं पदार्थ चेतना के अविच्छिन्न प्रवाह से परस्पर सम्बद्ध हैं । उपनिषदों में भी जीव, जगत् एवं ब्रह्म के अन्तर्सम्बद्धता विषयक विचारों को ऋषियों द्वारा व्यवस्थित रूप में वर्णित किया गया है । मनुष्य का सृष्टि के साथ अन्तःसम्बन्ध को स्वीकार करते हुए कण–कण में ब्रह्म की सत्ता को प्रतिष्ठित स्वीकार किया है । सृष्टि में विद्यमान प्रत्येक तत्त्व ब्रह्म का ही अभिव्यक्त रूप है, इसी भावना के कारण ऋषियों ने प्राकृतिक पदार्थों के साथ तादात्म्य एवं देवत्व भाव को अंगीकार करते हुए संरक्षण एवं संवर्धन पर बल दिया । उपनिषदों में अन्तर्जगत् एवं बाह्यजगत् के ज्ञान–विज्ञान का सुव्यवस्थित संश्लेषण प्रस्तुत किया गया है यही कारण है कि उपनिषदों का सन्देश देश–काल एवं व्यक्ति की सीमा से इतर आज भी प्रासंगिक है । मनुष्य जिस प्रकार सुख, समृद्धि और सुरक्षा प्राप्त करने के लिये भौतिक नियमों का अनुसंधान करता है, उसी प्रकार अभ्युदय और निःश्रेयस को प्राप्त करने के लिये औपनिषदिक मन्त्रों में अनूस्यूत मूल्यों को जीवन में धारण करता है । ये मंत्र भौतिक नियमों की तरह सार्वत्रिक और व्यवहारिक हैं । इनके अनुशीलन और अनुपालन से पारस्परिक विरोध, द्वन्द्व या संघर्ष समाप्त हो जाता है एवं वैश्विक शान्ति तथा कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता है ।

आध्यात्मिक और नैतिक साधना का समस्त प्रक्रम मनुष्य और प्रकृति के पीछे निविष्ट आध्यात्मिक तत्त्व के बोध की ओर अग्रसर करता है । इन्द्रियों द्वारा हमें भिन्नत्व का बोध होता है किन्तु आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा हमें विविधताओं में एकता का बोध होता है । इन्द्रियों के द्वारा उपलब्ध ज्ञान ने इस सम्पूर्ण जगत् को अनन्त विषमताओं से युक्त मानते हुए, यह निर्धारित किया कि विविध स्वभावयुक्त असंख्य पदार्थों के संघर्ष और समन्वय से ही इस सृष्टि की संघटना हुई है । इन्द्रिय ज्ञान द्वारा सीमित दृष्टि से देखने पर जगत् में इतने भेद, द्वन्द्व, नियम श्रृंखलाएं, कार्य–कारण सम्बन्ध है, जिनका कहीं अन्त ज्ञात करना असंभव प्रतीत होता है, किन्तु ऋषियों की अतीन्द्रिय चेतना ने यह ज्ञात कर लिया कि यह सम्पूर्ण जगत् मूलतः एक ही है । एक ही अखण्ड सत्ता विभिन्न सत्ताओं के रूप में इन्द्रियों के सम्मुख प्रतीत होती है ।

समस्त इन्द्रियगोचर पदार्थ एक ही अद्वितीय, नित्य तथा निर्विकार तत्त्व के विभिन्न रूपों और विभिन्न नामों में आत्मप्रकाश मात्र है । एक से ही सभी प्रादूर्भूत है । एक के ही आश्रय से सबकी स्थिति हैं, एक की ही सत्ता से सभी नियन्त्रित हैं, एवं अन्त में सभी एक ही तत्त्व में विलीन हो जाते हैं । इस प्रकार समस्त चराचर जगत् पदार्थों में आद्यन्तहीन, नित्य, निर्विकार, एक ही अद्वितीय तत्त्व की सत्ता है । जगत् में जो भी तत्त्व प्रतीत हो रहा है, वह सब ब्रह्म ही है । कोई भी वस्तु सच्चिदानन्दघन परमात्मा से पृथक नहीं है । स्थावर–जगंम समस्त चराचर जगत् में ब्रह्म ही व्याप्त है और उसी का अंश प्रत्येक तत्त्व में विद्यमान है अतः अखिल ब्रह्माण्ड स्वयं ब्रह्म का ही स्वरूप है । यह अनुभूति कराना ही समस्त उपनिषदों का परम प्रयोजन है । ऋषि चेतना के उदय से समस्त भेदज्ञान सर्वथा दूर हो जाता है । समग्र बह्माण्ड एक ही तत्त्व का यथार्थ स्वरूप है यही उपनिषदों का परमसत्य है ।

वर्तमान समय में आधुनिक तकनीकी एवं भौतिक प्रगति से उत्पन्न समस्याओं के समाधान के लिये औपनिषदिक एकात्मक दृष्टि आवश्यक है, जो कि कार्य–कारण को जानने पर होती है । ब्रह्माण्ड का कारण क्या है ? एवं कार्य क्या है ? तथा कैसे उत्पत्ति हुई ? कारण एवं कार्य सम्बन्ध क्या है ? कारण एवं कार्य स्वरूप क्या है ? यह प्रत्येक जिज्ञासु के मानस पटल पर अंकित होने वाला प्रथम प्रश्न है । ब्रह्माण्ड के कारण को जानने के लिये वैज्ञानिकों द्वारा भी नित्य नवीन सिद्धान्त प्रस्तुत किये जा रहे हैं अतः आधुनिक विज्ञान में वैज्ञानिकों द्वारा दिये गये गहन प्रयोगों एवं अनुसन्धानों से जो निष्कर्ष प्राप्त हुए है, वे निर्विवाद रूप से वैदिक परम्परा में वर्णित कार्य–कारण सिद्धान्त की समीचीनता को सिद्ध करते हैं ।

वैज्ञानिक जगत् ने ब्रह्माण्ड के कारण को जानने के लिये की गयी साधना के अनन्तर जिन रहस्यों का उद्घाटित किया, उनका वेदों एवं उपनिषदों में स्पष्ट संकेत मिलता है । जगत् की उत्पत्ति के रहस्य को प्रकट करने वाले विभिन्न सिद्धान्तों–तापगतिकी सिद्धान्त, ऊर्जा संरक्षण सिद्धान्त, सापेक्षता सिद्धान्ता,अनिश्चितता का सिद्धान्त, महाविस्फोट सिद्धान्त औपनिषदिक चिन्तन में स्पष्ट प्रतीत होते हैं तथा यह सिद्ध करते हैं कि औपनिषदिक कार्य–कारण सिद्धान्त सामयिक एवं समीचीन है । आधुनिक विज्ञान में प्रकृति के रहस्यों को जहां तक परिभाषित किया गया है, उससे भी आगे के गहन सत्य को हजारों वर्ष पूर्व ही ऋषियों ने प्रतिपादित किया था । ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में सृष्टि उत्पत्ति के पूर्व की स्थिति का भी वर्णन प्राप्त होता है जबकि आधुनिक विज्ञान उस स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने एवं वर्णन करने में अभी असमर्थ है ।

वर्तमान में पारम्परिक भौतिकी की जड़वादी एवं द्वैतवादी विचारधारा जनमानस में व्याप्त है, जिससे मानव जीवन अशान्ति की ओर अग्रसर है । यहां जिस स्वार्थपरक दृष्टिकोण को स्वीकार किया गया है उससे मानव केवल स्व तक ही सीमित रहता है तथा एक तत्व का दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं है यह माना गया है । इसी दृष्टिकोण के फलस्वरूप समाज में भेदभाव, हिंसा, आतंक, अमीर–गरीब का भेद, भ्रष्टाचार जैसी समस्याएं नित्य प्रतिदिन बढ़ रही है । कुंठित एवं अवसादग्रस्त मनुष्य के आचरण से ही विघटित परिवार तथा विश्रृंखलित समाज बन रहे हैं । मानव ने मानव के साथ तो स्वार्थ पूर्ण आचरण किया ही, प्रकृति को भी इससे अछूता नहीं रखा है । प्राकृतिक तत्त्वों को निर्जीव मानकर उनका असीमित तथा आवश्यकता से अधिक उपभोग किया, जिससे आज वर्तमान एवं भविष्य दोनों पीढ़ियों का अस्तित्व संकट में है । विभिन्न प्राकृतिक स्रोत समाप्ति की ओर है अतः ऐसे समय में मानव के दृष्टिकोण में परिवर्तन अत्यावश्यक है, ओर इसके लिये औपनिषदिक चिन्तन को आत्मसात् करना अपरिहार्य है, जो कि सभी समस्याओं के समाधान में पूर्णतः समर्थ है । औपनिषदिक कार्य–कारण सिद्धान्त को जानने पर ज्ञात होता है कि समस्त ब्रह्माण्ड का मूल कारण एक ही है । सभी चर–अचर, जैव–अजैव समुदाय उसी के अंश है–

"ईशावास्यमिदं सर्व यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥" [1]

अखिल ब्रह्माण्ड में जो भी जड़–चेतन रूप जगत् है वह सर्वत्र परमेश्वर से व्याप्त है । समस्त जगत् उसी से परिपूर्ण है कोई भी अंश उससे रहित नहीं है । परमात्मा का सर्वदा स्मरण करते हुए मनुष्य इस जगत् में आसक्ति का त्याग करके केवल कर्तव्यपालन के लिये ही कर्मों का आचरण करें । समस्त जगत् परमात्मा की ही अभिव्यक्ति है । इस प्रकार एक ही कारण से उत्पन्न सभी पदार्थ परस्पर समबद्ध हैं एवं एक दूसरे को प्रभावित करते हैं । कारण से उत्पन्न कार्य, मात्र कारण का अभिव्यक्त रूप है, उससे पृथक् नहीं है, वह कण–कण में विद्यमान है । समस्त प्रपञ्चों का कारण स्वयं से सृष्टि को उत्पन्न करता है, तथा उसी में अनुस्यूत रहता है । नष्ट होने पर उसी में मिल जाता है । तैत्तिरीयोपनिषद् में भी इसी भाव की सम्पुष्टि करते हुए बताया गया है–

[1] ईश. उप. 1

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तद्विजिज्ञासस्व । तद् ब्रह्मेति ॥" [2] जिससे निश्चय ही ये सब भूत उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होने पर जिसके आश्रय से ये जीवित रहते हैं और अन्त में विनाशोन्मुख होकर जिसमें ये लीन हो जाते हैं उसे विशेष रूप से जानने की इच्छा कर वही ब्रह्म है ।

"यथोर्णनाभिः सृजते गृह्यते च यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति ।

यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम् ॥"[3]

मकड़ी जिस प्रकार अपने शरीर से अभिन्न तन्तुओं को बाहर निःसृत करती है और प्रलयकाल में अपने अन्दर समाहित भी कर लेती है उसी प्रकार पृथ्वी से अनेक प्रकार की औषधियाँ उत्पन्न होती हैं । जीवित पुरूष से केश लोम उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार ब्रह्म से समस्त विश्व उत्पन्न होता है ।

कारण एवं कार्य में अभेदात्मक ज्ञान होने पर सर्वात्मभाव से परिपूर्ण दृष्टि विकसित होगी, जिससे मानव समाज की समस्याओं का समाधान सम्भव है । प्रत्येक व्यक्ति के मन में यदि भाव जाग्रत हो कि जिस सत्ता के कारण ही मैं उत्पन हुआ हूं, उसी से मेरे इतर समस्त तत्त्वों का भी निर्माण हुआ है, तथा अन्त में सभी उसी में समाहित होने वाले हैं अतः परस्पर भेद सम्भव ही नहीं है । मनुष्य जब सृष्टि विज्ञान और आध्यात्मिक ज्ञान में समन्वय करके संसार में अपने कर्तव्यों का निर्वाह करता है तब उसका ध्यान विश्वात्मा की ओर जाता है और व्यक्ति विश्वात्मा को प्राप्त करने के लिये तप करना प्रारम्भ करता है । तप के द्वारा आत्मसाक्षात्कार रूपी फल प्राप्त होता है । आत्मसाक्षात्कार वर्तमान समस्याओं का समाधान करने में सक्षम है, क्योंकि उससे द्वैधीभाव समाप्त हो जाता है और अद्वैत की सिद्धि होती है । यह अद्वैत भावना मानव मन में ही नहीं, प्राणिमात्र में एक आत्मतत्त्व के दर्शन कराती है । इस अनुभूति से अपने–पराये का भेद समाप्त हो जाता है तथा विश्वबन्धुत्व की भावना को बल मिलता है ।

वर्तमान में व्याप्त समस्याओं के समाधानार्थ एक नवीन दृष्टि की आवश्यकता है जिसमें मानव सर्वात्मभाव से परिपूर्ण व्यवहार करें एवं कण–कण में उस परमतत्त्व की सत्ता को स्वीकार करें । वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बोस ने स्वीकार किया कि प्रत्येक वस्तु में चेतनता विद्यमान है ।

---

[2] तै.उप. 3/1/1

[3] मु. उप. 1/1/7

यद्यपि मनुष्य में चेतना प्रकृष्ट रूप में दृष्टिगोचर होती है परन्तु पेड़–पौधे तथा धातु भी जीवित हैं ।

"In 1899 Bose began a comparative study of the non-living like metals and the animals. Experimentally he found that metals become less sensitive if continuously used……. Bose found that plants also responded in the similar way like metals."[4]

उपनिषदों में अन्तर्जगत् एवं बाह्य जगत् दोनों के ज्ञान–विज्ञान का सुव्यवस्थित संश्लेषण प्रस्तुत किया गया है । सत्य का सत्य के अन्वेष्टा से साक्षात्कार कराया है यही कारण है कि उपनिषदों के सन्देश देश–काल, व्यक्ति की सीमा से परे आज भी उतने ही प्रासंगिक एवं उपयोगी है । उपनिषदों के महत्व को प्रतिपादित करते हुए ERWIN SCHRODINGER ने *WHAT IS LIFE ?* पुस्तक में बताया है कि अतिरिक्त समय में दर्शन का गहनतम अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि, आधुनिक विज्ञान का एकीकृत क्षेत्र सिद्धान्त उपनिषदों में विद्यमान है–" I had accepted a post as a lecturer in theoretical physics in Czernowitz and had already envisaged spending all my free time acquiring a deeper knowledge of philosophy, having just discovered Schopenhauer, who introduced me the Unified Theory of the Upanishadas." [5]

मानव आज सङ्क्रान्ति के जिस पथ पर विद्यमान है, उसके लिये ऐसे दर्शन की आवश्यकता है जो पूर्ण, यथार्थ और वैज्ञानिक हो, श्रेष्ठ संस्कृति का विकास कर सके, समाज को आदर्श की प्रेरणा दे सके, ऋत पालन के प्रति सचेष्ट कर सके, सत्य के पालन हेतु सामर्थ्य दे सके, भद्र और अभद्र में विवेक बुद्धि जाग्रत कर सके, मुक्ति की चिर सञ्चित अभिलाषा को पूर्ण कर सके अतः उपनिषदों का धर्म एवं दर्शन इन सभी के लिये पूर्णतः समर्थ है ।

औपनिषदिक मूल्य समाज एवं संस्कृति के प्राणवान् बिन्दु कहे जाते हैं जो समाज में दृष्टि परिवर्तन करने में अत्यन्त सहायक हैं । इनसे भेददृष्टि समाप्त होती है और समग्र दृष्टि का विकास होता है, जिससे मनुष्य स्वेतर प्राणियों एवं प्रकृति के प्रत्येक तत्त्व के प्रति स्वानुकूल आचरण करता है । आज औपनिषदिक मानवीय मूल्यों को आत्मसात् करने की आवश्यकता है, जिससे वर्तमान समस्याओं का समाधान संभव हो सके । यदि औपनिषदिक मानवीयमूल्यों का

[4] Jitatmananda, Swami, Holistic Science and Vedanta, p. 2-3
[55] SCHRODINGER ERWIN,WHAT IS LIFE, P. 167

व्यवहारिक जीवन में प्रयोग करें तो सम्पूर्ण देश एक नवीन उर्जा, नवीन संकल्प, नवीन साधना और नवीन अनुशासन से अनुप्राणित हो सकेगा । वैज्ञानिक शोपेन हावर का भी मन्तव्य है–

"In the whole world there is no study so beneficial and so elevating as that of the Oupnekhat (Upanisads). It has been the solace of my life, it will be the solace of my death !."[6]

इस प्रकार आध्यात्मिक दृष्टि से हम सब एक है । सभी में एक तत्त्व की सत्ता विद्यमान है । उपनिषदों में समस्त विश्व, ब्रह्माण्ड, खगोल और पार्थिव शरीर की सारभूत आध्यात्मिक एकता के बल पर दिया है किन्तु विश्व के ऊपरी सतह पर भेद व्याप्त है, उसी को समाप्त करने की आवश्यकता है । यह तभी संभव है जब व्यक्ति आत्मसाक्षात्कार द्वारा स्वयं को परमसत्ता का अंश स्वीकार करे । ऐसा ज्ञान होने पर प्रत्येक व्यक्ति समस्त ब्रह्माण्ड के प्रत्येक तत्त्व के साथ आत्मवत् व्यवहार करेंगे और समस्याएं स्वतः समाप्त हो जायेंगी ।

वर्तमान समय में पारम्परिक भौतिकी की भेदवादी विचारधारा के स्थान पर "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" [7] अर्थात् प्रत्येक कण में चेतनता विद्यमान है, की भावना को जीवनशैली का अंग बनाना अपरिहार्य है । आधुनिक जीव वैज्ञानिक भी प्रत्येक अंश में चेतनता को स्वीकार करते हुए निरन्तर गहन शोध में संलग्न है । इस प्रकार औपनिषदिक चिन्तन एवं आधुनिक वैज्ञानिक चिन्तन में अभिव्यक्त एक कारणवाद की स्थापना करके समस्याओं के समाधान करने में पूर्ण समर्थ है । प्रस्तुत शोध कार्य के अनन्तर निम्नलिखित तथ्य उपलब्ध हुए हैं–

- सम्पूर्ण सृष्टि ब्रह्म का ही अभिव्यक्ति रूप है, इस औपनिषदिक दृष्टि के आधार पर एकात्मक दृष्टिकोण का विकास करना ।
- ब्रह्माण्ड के कण–कण में एक ही तत्व की सत्ता विद्यमान है, यह सिद्ध करना ।
- औपनिषदिक कार्य–कारण सिद्धान्त के अनुसार कारण एवं कार्य में अभेदात्मक ज्ञान होने पर सम्पूर्ण जगत् में परस्पर सम्बद्धता का ज्ञान होता है ।
- कार्य–कारण सिद्धान्त के ज्ञान से जड़ एवं चेतन का भेद समाप्त होता है ।
- औपनिषदिक कार्य–कारण सिद्धान्त आधुनिक विज्ञान के विभिन्न सिद्धान्तों से साम्यता रखता है । दोनों में ही एक ऊर्जा को ही ब्रह्माण्ड का मूल माना है ।

[6] Maxmuller 2011, p. 13
[7] छा. उप. 3/14/1

- औपनिषदिक कार्य–कारण सिद्धान्तके अनुसार में एक ही तत्त्व को सृष्टि का मूल कारण है । स्थूल, सूक्ष्म, कारण एवं तुरीय सभी अवस्थाएं परस्पर सम्बद्ध है और सभी का मूलाधार तुरीयावस्था है ।
- सृष्टि प्रक्रिया में स्थूलावस्था से तुरीयावस्था की ओर बढ़ने पर भेदात्मक ज्ञान की समाप्ति तथा अभेदात्मक ज्ञान की वृद्धि होती जाती है ।
- प्रकृतिवादी यूनानी विचारधारा में भी समस्त प्राकृतिक तत्त्वों में देवत्व को स्वीकारते हुए उन्हें सृष्टि का मूल कारण माना है ।
- पारम्परिक भौतिकी विचारधारा ने ब्रह्माण्ड के समस्त तत्त्वों की असम्बद्धता पर बल देते हुए मनुष्य का प्रकृति के प्रति भोगवादी दृष्टिकोण विकसित किया जिससे अनेक समस्याएं सर्वत्र व्याप्त है ।
- आधुनिक भौतिकी ने परमाणुओं के परस्पर सम्बन्ध को स्वीकार करते हुए पारम्परिक भौतिकी के मत को अस्वीकृत किया जिससे मनुष्य के एकांगी दृष्टिकोण में परिवर्तन सम्भव है ।
- कारण एवं कार्य में अभेद ज्ञान पृथिवी पर रहने वाले प्राणी समुदाय एवं प्रकृति के मध्य एक सामञ्जस्य विकसित करती है जिससे भावी पीढ़ियों का अस्तित्व सुरक्षित संभव हो सकता है ।
- औपनिषदिक चिन्तन में अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय एवं आनन्दमय कोष परस्पर सम्बद्ध एवं अन्तःनिर्भर है तथा सभी एक ही तत्त्व के विस्तृत रूप हैं ।
- औपनिषदिक मानवीय मूल्य, त्याग भावना, श्रेयमार्ग, शान्ति मंत्र इत्यादि का मानव द्वारा व्यवहार में उपयोग करने पर सभी समस्याओं से स्वतः मुक्ति संभव है ।
- प्राकृतिक सम्पदाएं सीमित हैं अतः भावी पीढ़ियों के अस्तित्त्व को सुरक्षित रखते हुए उपयोग करने की प्रेरणा सन्निहित है ।
- सभी समस्याओं का मूल कारण भेद दृष्टि है अतः समग्र सृष्टि एक ही चेतनतत्त्व से समुद्भूत है । यह भावना जनमानस में व्याप्त करना जिससे समस्याओं का समाधान संभव हो सके ।
- मानव के अस्तित्त्व के लिये प्राकृतिक शक्तियां अत्यावश्यक है अतः प्राकृतिक तत्त्वों के प्रति समादर का भाव रखते हुए उनके सरंक्षण एवं संवर्धन के लिये प्रेरित करना ।
- प्राकृतिक सम्पदाओं का त्यागपूर्वक उपभोग करना ।

- मनुष्य सर्वश्रेष्ठ एव सर्वशक्तिशाली नहीं है तथा प्रकृति पर भी उसका आधिपत्य नहीं है क्योंकि वह ब्रह्माण्ड का ही एक अवयव है अतः वह प्रकृति के अनुरूप ही कार्य करे ।
- विभिन्न प्राकृतिक तत्त्वों में मनुष्य स्व का ही अंश स्वीकार करते हुए स्वानुकूल आचरण करे इस भावना का विकास किया है ।
- पशु–पक्षी, वृक्ष–वनस्पति आदि में संवेदना को अनुभूत करते हुए आत्मवत् व्यवहार करना ।
- ब्रह्माण्ड के प्रत्येक तत्त्व में चेतना व्याप्त है, इस दृष्टि का बल प्रदान करना ।
- सम्पूर्ण सृष्टि का प्रत्येक तत्त्व परस्पर सम्बद्ध एवं अन्तःनिर्भर है अतः एक की विकृति होने पर समग्र ब्रह्माण्ड प्रभावित होता है ।
- औपनिषदिक मूल्य समाज में व्याप्त असामंजस्य को समाप्त कर वैश्विक कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने में समर्थ है ।
- उपनिषदों में वर्णित सार्वभौमिक दृष्टि विशिष्ट है अतः शिक्षा पाठ्यक्रम में सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक रूप से उसे स्वीकार करने पर यह उपयुक्त दिशा प्रदान कर सकती है ।

औपनिषदिक महावाक्य मानव जीवन की सर्वतोमुखी उन्नति के आधार सूत्र हैं जिनके अध्ययन से मानव नैतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत बनता है तथा अनुकूल आचरण करता है । कारण एवं कार्य का अभेदात्मक ज्ञान प्राप्त करके सभी समस्याओं के समाधानार्थ औपनिषदिक महावाक्य व्यवहारिक व्यवस्था प्रदान करते हैं । "अहं ब्रह्मास्मि"[8] की अनुभूति "अयमात्मा ब्रह्म"[9] का बोध तथा "तत्त्वमसि"[10] का दृढ़ उपदेश ही "प्रज्ञानं ब्रह्म"[11] का चरमस्तर है । प्रज्ञान वह सीमा है जहाँ अस्मद्, युष्मद, तत् तथा इदं का भेद नहीं रहता है । वहाँ जो व्यष्टि के लिये है वही समष्टि के लिये है । इस प्रकार की भावना से जीवनयापन करने पर निश्चित रूप से सभी व्यक्ति जड़ तथा चेतन, पशु–पक्षी, वृक्ष–वनस्पति, स्थावर–जङ्गम इन सभी में आत्मभाव को देखेंगे ।

[8] बृ. उप. 1/4/10
[9] वही 2/5/19
[10] छा. उप. 6/12/3
[11] ऐ. उप. 3/1/3

सन्दर्भग्रन्थ सूची (Selected Bibliography)

(क) प्राथमिक स्रोत *(Primary Sources)*

(I) साक्षात् स्रोत *(Direct Sources)*

1. *ईशादि नौ उपनिषद्,* गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2066
2. *ईशावास्योपनिषद्,* गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2061
3. *ईशकेनोपनिषद्,* (सं.) विजयनारायण मिश्र, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1991
4. *ऐतरेयोपनिषद्,* गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2060
5. *ऐतरेय उपनिषद्,* ईशादि नौ उपनिषद्, व्याख्याकार हरिकृष्णदास गोयन्दका, गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस गोरखपुर, सं.2029
6. *कठोपनिषद्,* गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2061
7. *कठोपनिषद्* (शांकरभाष्य) , डॉ. बैजनाथ पाण्डेय, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1977
8. *कठोपनिषद्,* सानुवाद शांकरभाष्य सहित, प्रकाशक मोतीलाल अलान, गीताप्रेस गोरखपुर, सं. 2032
9. *केनोपनिषद्,* ईशादि नौ उपनिषद्, व्याख्याकार हरिकृष्णदास गोयन्दका, गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस गोरखपुर, सं.2040
10. *छान्दोग्योपनिषद्,* गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 1995
11. *छान्दोग्योपनिषद्,* आनन्दगिरिकृतटीका संवलिता शांकरभाष्य समेता, वाणीविलास संस्कृत पुस्तकालय:, काशी, 1942
12. *तैत्तिरीयोपनिषद्,* गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2063
13. *दशोपनिषद्,* आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावलि:, 1982
14. *न्याय दर्शनम् ,* (अभिनवरीतिपरिष्कृत–विद्योदयभाष्य सहितम्); उदयवीर शास्त्री, विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली 2014
15. *प्रश्नोपनिषद्,* गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2061
16. *बृहदारण्यकोपनिषद्,* गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 1995

17. *माण्डूक्योपनिषद्,* गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2065
18. *मुण्डकोपनिषद्,* गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2066
19. *मुण्डकोपनिषद्,* ईशादि नौ उपनिषद्, व्याख्याकार हरिकृष्णदास गोयन्दका, गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस गोरखपुर, सं.2040
20. *माण्डूक्योपनिषद्,*गौडपादीय कारिका, शांकरभाष्य तथा हिन्दी अनुवाद सहित, प्रकाशक गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस गोरखपुर, सं.2042
21. *वैशेषिक सूत्रम्,* कणाद, सं. नारायण मिश्र, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1969
22. *वैशेषिक दर्शनम्* (अभिनवरीतिपरिष्कृत–विद्योदयभाष्य सहितम्); उदयवीर शास्त्री, विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली 2006
23. *श्वेताश्वतरोपनिषद्,* गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2066
24. *श्वेताश्वतरोपनिषद्,* ईशादि नौ उपनिषद्, व्याख्याकार हरिकृष्णदास गोयन्दका, गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस गोरखपुर, सं. 2040

अंग्रेजी–

1. Naess, Arne, *Ecology, Community and Lifestyle, outline of An Ecology*, Cambridge University Press,1989
2. Odum, Eugene, P., *Fundamentals of Ecology*, Saunders, Philadelphia, 1953
3. Einstein Albert, , *Ideas and Opinians*, , Rupa Publications, New Delhi India Pvt. Ltd. 2012
4. Einstein, Albert, *EINSTEIN: ON COSMIC RELIGION AND OTHER APHORISMS*, (app.) GEORGE BERNARD SHAW, Mineola, DOVER PUBLICATIONS, INC. New York 2009
5. Newton, Issac, (edited by Alexandre Koyre, I. Barned cohen and Anne Whitman) *Philosophiae naturalis principia mathematica*, Cambridage University Press, London 1972

(II)* असाक्षात् स्रोत *(Indirect Sources):

1. *अथर्ववेद संहिता, (सुबोध भाष्य)* श्रीपाददामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी (सूरत), 1958

2. *अथर्ववेदः,* (शौनकीयः), श्रीसायणाचार्यकृतभाष्येण संयोजितः, (सम्पा.) विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानंद वैदिक शोध संस्थानम्, होशियारपुरम्, 1961
3. *अथर्ववेदः,* (शौनकीयः), श्रीसायणाचार्यकृतभाष्येण संयोजितः, (सम्पा.) ए. महादेव शास्त्री तथा के. रंगाचार्य, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1984 (प्र. सं.)
4. *अथर्ववेद संहिता,* (सम्पा.) नागशरण सिंह, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1987
5. *अथर्ववेद संहिता,* डॉ रघुवीर, सरस्वती विहार, लाहौर, 1993 (वि. सं.)
6. *अथर्ववेद संहिता,* श्रीपाददामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, औंध, सताता, 1995 (वि. सं.)
7. *अथर्ववेद संहिता,* (सम्पा.) देवीचन्द, मुन्शीराम मनोहरलाल, दिल्ली, 2001
8. *अथर्ववेद संहिता,* (सरल हिन्दी भावार्थ सहित), श्रीरामशर्मा आचार्य, युग निर्माण प्रेस, गायत्री तपोभूमि, मथुरा (उत्तरप्रदेश), 2008
9. *अथर्ववेद संहिता,* (भा.) स्वामी दयानंद सरस्वती, (सम्पा.) पंडिता राकेश रानी, वेदमंदिर, महात्मा वेद भिक्षु सेवाश्रम, दिल्ली
10. *ऋग्वेद संहिता (दयानंद भाष्य),* वैदिक यंत्रालय, अजमेर, वि. सं. 1980
11. *ऋग्वेद संहिता (मूल)* , स्वाध्याय मण्डल, पारडी, सूरत, 1957
12. *ऋग्वेद संहिता (स्कन्दस्वामी, उद्गीथ, वेंकटमाधव, मुद्गल भाष्य),* विश्वेश्वरानंद वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, 1967
13. *ऋग्वेद संहिता (सायण भाष्य),* वैदिक संसोधन मण्डल, पूना, 1983
14. *ऋग्वेद संहिता , सायणाचार्यकृतभाष्यसहित,* (अनु. तथा सम्पा.) डॉ. जियालाल कम्बोज, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, (प्र.सं.) 2002
15. *ऋग्वेद संहिता, सायणाचार्यकृतभाष्यसंवलिता,* (अनु. तथा सम्पा.) रामगोविन्द त्रिवेदी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2003
16. *ऋग्वेद संहिता (जयदेव भाष्य),* आर्य साहित्य मण्डल, वाराणसी
17. *काठक संहिता,* (सम्पा.) पं. सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, 1943
18. *किरणावली,* (हिन्दी भाषाव्याख्यानसमलङ्कृता); उदयनाचार्य प्रणीता सम्पादकोऽनुवादकश्च गौरीनाथ शास्त्री, सम्पूर्णानन्द–संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणस्याम्, संस्कृतम्, द्वितीयम् ।
19. *गोपथ ब्राह्मण,* (सम्पा.) डॉ. प्रज्ञा देवी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, 1999
20. *जैमिनीय ब्राह्मण,* (सम्पा.) डॉ. लोकेशचन्द्र, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1986

21. *तर्कसंग्रह,* अन्नंभट्ट, (व्या.) पङ्कज कुमार मिश्र, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2001
22. *ताण्ड्य ब्राह्मण, सायणभाष्य सहित,* (सम्पा.) चिन्नास्वामी शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1993
23. *तैत्तिरीय संहिता,* (सम्पा.) सातवलेकर , स्वाध्याय मण्डल, पारडी, 1957
24. *तर्कसंग्रह,* दीपिका, अन्नम्भट्ट, सं. अथल्ये बोडास, बाम्बे संस्कृत सीरीज
25. *तर्कभाषा;* केशवमिश्र; सं. बदरीनाथ शुक्ल, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी 1968
26. *तर्कभाषा;* (तर्करहस्य दीपिका, हिन्दी व्याख्या विभूषिता); केशवमिश्र प्रणीता, व्या.विश्वेश्वर, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, संस्करण ग्यारहवां, 2062
27. *तैत्तिरीय ब्राह्मण, भट्ट भास्कर भाष्य सहित,* (सम्पा.) महादेव शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2002
28. *निरूक्त* (यास्क), छज्जुराम शास्त्री (व्या.), मेहरचन्द लछमनदास पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2008
29. न्यायकुसुमाञ्जलि, उदयनाचार्य, सं. महाप्रभुलाल गोस्वामी, मिथिला विद्यापीठ ग्रन्थमाला, सं.1982
30. *पञ्चदशी,* व्याख्यादिसमेता, (व्या.) रामकृष्ण, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 1994
31. *प्रशस्तपादभाष्यम् (पदार्थधर्मसंग्रहः),* प्रशस्तपाद, (सम्पा.) नारायण मिश्र, काशी संस्कृत ग्रन्थमाला, सं. 173, वाराणसी, 1966
32. *ब्रह्मसूत्र–शांकरभाष्यम्* (श्री वाचस्पति मिश्र प्रणीत 'भामती' संवलित), स्वामी योगीन्द्रानंदकृत 'भामती' हिन्दी व्याख्या विभूषित, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1995
33. *भाषापरिच्छेद (कारिकावली) (न्यायसिद्धान्तमुक्तावली सहित);* विश्वनाथ, सं. हरिराम शुक्ल शास्त्री, काशी संस्कृत सीरीज, वाराणसी 1972
34. *मनुस्मृति,* (सम्पा.) जगन्नाथशास्त्रीतैलङ्ग., भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, 2002
35. *मैत्रायणी संहिता,* (सम्पा.) श्रीपाददामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, बम्बई, 1973
36. *यजुर्वेद संहिता (दयानंद भाष्य),* वैदिक यंत्रालय, अजमेर, 1929

37. *यजुर्वेद संहिता,* श्रीमदुव्वटाचार्य विरचित मन्त्रभाष्येण, श्रीमहीधराचार्य कृत वेदप्रदीप भाष्येण च समन्विता, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1978
38. *यजुर्वेद संहिता, (सुबोध भाष्य)* श्रीपाददामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी

39. *लक्षणावली,* (भट्टकेशवकृत प्रकाश सहित); उदयनाचार्य कृता सम्पादकोव्याख्याकारश्च, शशिनाथ झा शर्मा, मिथिला संस्कृत विद्यापीठम् प्रकाशिता 1963 (सूरत), 1985
40. *लक्षणावली,* उदयनाचार्य, (सम्पा.) शशिनाथ झा, मिथिला विद्यापीठ ग्रन्थमाला, सं. 14, दरभंगा, 1963
41. *वाजसनेयि संहिता (उव्वट, महीधर भाष्य), निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1912*
42. *व्योमवती,* (प्रथमो भागः) व्योमशिवाचार्य विरचिता, सं. गौरीनाथ शास्त्री, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय ,वाराणस्याम्, संस्करणम् प्रथमम 1983
43. *वेदान्तसार,* सदानन्द, (सम्पा.) सन्तनारायण श्रीवास्तव्य, सुदर्शन प्रकाशन, इलाहाबाद, 1972
44. *वेदान्तसार,* सदानन्द, (व्या.) डॉ आद्याप्रसाद मिश्र, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहबाद, 2001
45. *वेदान्त परिभाषा,* धर्मराज अवधीन्द्र, व्या. गजानन शास्त्री मुसलगावंकर, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी ।
46. *वै. सू. अज्ञातकर्तृक व्याख्या*; अनन्तलालठाकुर, मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, 1957
47. *शुक्लयजुर्वेदीयतैत्तिरीयसंहिता,* भट्टभाष्करमिश्रविरचितभाष्यसहिता, (सम्पा.) ए. महादेव शास्त्री तथा के. रंगाचार्य, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, (प्र.सं.) 1984
48. *शुक्लयजुर्वेदीयतैत्तिरीयसंहिता,* सायणभाष्यसमेता, (सम्पा.) मण्डनमिश्रः, श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम्, नई दिल्ली, 1986
49. *शतपथ ब्राह्मण,* (सम्पा.) स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती, (अनु.) गंगाप्रसाद उपाध्याय, विजयकुमार गोविन्दराम हासानंद, दिल्ली, 2000
50. *श्रीमद्वाजसनेयिमाध्यन्दिनशुक्लयजुर्वेदसंहिता, श्रीमदुव्वटाचार्यविरचितमन्त्रभाष्येण श्रीमन्महीधरकृतवेदप्रदीपाख्यभाष्येण च संवलिता,* (सम्पा.) वासुदेव शर्मा, निर्णय सागर प्रेस, मुम्बई, 1913
51. *सामवेद,* (सुबोध भाष्य), श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, 1985
52. *सर्वदर्शन संग्रहः* (सपरिशिष्ट 'प्रकाश'–हिन्दी व्याख्योपेतः माधवाचार्य कृतः, भाष्य, उमाशंकर शर्मा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2006
53. *सांख्यसूत्रम्,* कपिल, (सम्पा.) रामशंकर भट्टाचार्य, भारतीय विद्या प्रकाशन, बनारस,1977
54. *श्रीमद्भगवद्गीता* (शांकरभाष्यसहित), गीताप्रेस, गोरखपुर, 2000

अंग्रेजी–

1. Barnhill, David Landis and Gottieb, S., *Deep Ecology and World Religions New essays on sacred Grounds*, State University of New York Press, 2001
2. Capra, Fritjof, *The Tao of Physics: An Exploration of the Parallels between Modern Physics and Eastern Mysticism,* Shambhala Publications, Berkley, California, 1991
3. Capra, Fritjof, *The Web of Life 'A New Synthesis of Mind and Matter from the author of the Tao of Physics,* Harper Collins Publishers, 1996
4. Capra, Fritjof *The Turning Point: Science, Society, and the Rising Culture*, (1982), Simon and Schuster, Bantam paperback 1983
5. Chaubey, Braj Bihari, *Treatment of Nature in the Rigveda,* Vedic Sahitya Sadan, Hoshiarpur, 1970
6. Chemistry, Part-2, National Council of Education research and Training, New Delhi 2011
7. Descartes, Rene, (Edited by John Cottingham) *Meditions on First Philosophy*, with *Selection from the objection and Replies*, Cambridage University Press, London 1996
8. Descartes, Rene, *Principles of Philosophy*, Wilder Publication Limited 2009
9. Das, Indulata, *MYSTICISM AND THE UPANISADS,* Nag Publication, Delhi, 2002
10. *EINSTIN: The meaning of relativity*, London and NewYork, 2012,Ed I first India reprint
11. *EINSTEIN:The World As I see It*, filliquarian publishing, LLC
12. F.Max Muller, *The Upanishads*.Vol.1, Motilal Banarasidas, Delhi 1965
13. *Geography*, Unit-2, Chapter-2, NCERT and Training, New Delhi, 2011
14. Isaacson, Walter, *Einstien His Life and Universe*, pocket books, 2008
15. Jitatmanand, Swami, *Holistic Science and Vedanta,* Bhartiya Vidya Bhavan, Mumbai, 1991
16. JITATMANANDA,SWAMI, *MODERN PHYSICS AND VEDANTA*, Bharatiya Vidya Bhavan ,Mumbai, 2012

17. Lakhmir Singh and Manjit kaur, *Chemistry,* Part-2, S. Chand Publication, New Delhi
18. MISHRA, RUDRAKANTA, *THEORY OF CREATION,* TIRABHUKTI PUBLICATION , ALLAHABAD, 1992
19. MUKHYANANDA, SWAMI, *VEDANTA IN CONTEXT OF MODERN SCIENCE (A COMPARATIVE STUDY)* , Bharatiya Vidya Bhavan ,Mumbai, 1997
20. Panda, N. C., *Māyā in Physics*, Motilal Banarsidass Publishers Private Limited, Delhi, 2005
21. Phillips, A.C., *Introduction of Quantum machanics,* John Wiley and Sons Ltd
22. R.C. Dwivedi, *Brahamanas and Upanishads,* Motilal Banarasidas First edition, 1965
23. Schrodinger, ERWIN, *What is Life?*,London Cambridge University Press, 2010
24. Schrodinger, ERWIN, *MY VIEW OF THE WORLD,* OX BOW PRESS, Woodbridge Connecticut 1983
25. TATHAGATANANDA, SWAMI, *ALBERT EINSTEIN HIS HUMAN SIDE,* The Vedanta Socienty of New York, 2009
26. Verma, Shri Ram, *VEDAS: THE SOURCE OF UTIMATE SCIENCE,* Nag Publication, Delhi, 2005
27. Werner Heisenberg, *Physics and philosophy*, Harper and Row publication, New York,1958
28. Werner Heisenberg, *Physics and Beyond,* Harper and Row publication, New York

(ख) द्वितीयक स्रोत *(Secondary Sources):*

हिन्दी–

1. अखिलदास, *उपनिषद् सौरभ,* कबीर पारख संस्थान, इलाहबाद, 1994
2. अग्रवाल, वासुदेवशरण, *वेदरश्मि,* स्वाध्याय मण्डल, पारडी, सूरत, 1965
3. अवस्थी, विश्वम्भर दयाल, *वैदिक संस्कृति और दर्शन,* सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद, 1979

4. आचार्य, बलवीर, *ऋग्वेदीय ब्राह्मणों का सांस्कृतिक अध्ययन,* विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 1991
5. उपाध्याय, बलदेव, *भारतीय दर्शन,* शारदा मंदिर, वाराणसी, 1997
6. उपाध्याय, रामानुज, *वैदिक देवता तत्त्व विमर्श,* साहित्यकार सहयोगी प्रकाशन, मदैनी, वाराणसी, 1999
7. उर्वी, *यजुर्वेदीय ब्राह्मणों के प्रमुख आख्यानों का समीक्षात्मक अध्ययन,* जे. पी. पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली (प्रथम संस्करण), 1994
8. एस., राधाकृष्णन, *भारतीय दर्शन,* राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1966
9. कुमार, शशिप्रभा, *वैदिक अनुशीलन,* विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 1998
10. कुमार, शशिप्रभा, *वैदिक विमर्श,* जे. पी. पब्लिशिंग हाऊस, 1996
11. कुमार, शशिप्रभा, *वैशेषिक दर्शन में पदार्थ निरूपण,* प्रकाशन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली 1992
12. कृष्णलाल, *संस्कृत शोध प्रक्रिया एवं वैदिक अध्ययन,* विभुवैभवम्, दिल्ली, 1978
13. कृष्णलाल (सम्पा.), *वैदिक–व्याख्यान–माला,* ईस्टर्न बुक लिंकर्स, 1982
14. कृष्णलाल (सम्पा.), *वेद व्याख्या और वैदिक विचारधारा,* नाग पब्लिशर्स, दिल्ली (प्रथम संस्करण), 1987
15. कृष्णलाल, *वैदिक संहिताओं में विविध विद्याएं,* जे. पी. पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1993
16. कृष्णलाल, *वैदिक वाङ्मय विश्लेषण,* जे. पी. पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1993
17. घिण्डियाल, विवेक बन्धु, *औपनिषदिक परमसत् एवं मूल्य–सिद्धान्त,* वाराणसी
18. चतुर्वेदी, गिरिधर, *वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति,* बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1972
19. चौधरी, रामदास, *विज्ञान का क्रमिक विकास वैश्विक परिप्रेक्ष्य में,* नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, 2011
20. *जीवविज्ञान,* कक्षा–12, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2011
21. झा, धनेश्वर, *वैदिक साहित्ये सृष्टिप्रक्रिया,* राष्ट्रिय संस्कृत साहित्य केन्द्र, जयपुर, 2009
22. झा, हरिमोहन, *न्याय वैशेषिक दर्शन* (भारतीय दर्शन परिचय प्रथम एवं द्वितीय खण्ड); पुस्तक भण्डार, लहेरियासराय, पटना, 1964

23. टेलर, ए.ई., (अनु.) सुधीन्द्र शर्मा, *तत्त्व मीमांसा,* हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उ.प्र. 1967

24. तिवारी, केदारनाथ, *तत्त्वमीमांसा एवं ज्ञान मीमांसा,* मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2004 (च.सं.)

25. त्रिपाठी, चन्द्रबली, *उपनिषद् रहस्य भाग 1,* नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1986

26. द्विवेदी, कपिलदेव, *अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन,* विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1988

27. प्रसाद, हनुमान, *उपनिषदों के चौदह रत्न,* गीताप्रेस, गोरखपुर, 2006

28. बूजले, एडी., *ज्ञानमीमांसा* (परिचय), बिहार ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1989

29. भारद्वाज, ईश्वर, *उपनिषदों में सन्यासयोग–समीक्षात्मक अध्ययन,* क्लाशिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 1993

30. भाटिया, ऋषि गोपाल, *सृष्टि की उत्पत्ति,* सिद्धार्थ पब्लिकेशन, करनाल, 1990

31. *भौतिकी,* भाग–1, (कक्षा 11), राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2008

32. मिश्र, कमलाकान्त (सम्पा.), *संस्कृत वाङ्मय में विज्ञान का इतिहास,* राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली, (प्र.सं.) 2003

33. मिश्र, नारायण, *वैशेषिक दर्शनः एक अध्ययन;* चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 1968

34. राधाकृष्णन् एस., *उपनिषदों का सन्देश,* राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, 1981

35. राधाकृष्णन्, एस., *उपनिषदों की भूमिका,* राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, 1981

36. रानाडे, आर.डी, (अनु.) रामानन्द तिवारी, *उपनिषद् दर्शन का रचनात्मक सर्वेक्षण,* राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1981

37. रानी, प्रतिभा, *वैदिक संहिताओं में आचार मीमांसा,* परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली, 1989

38. रंगनाथानन्द,स्वामी, *उपनिषदों का सन्देश,* रामकृष्ण मठ, नागपुर

39. रञ्जना, *ब्राह्मण ग्रन्थ एक अनुशीलन,* शिवाराधन प्रकाशन, इलाहाबाद, 1988

40. वर्मा, विष्णुकान्त, *सृष्टि उत्पत्ति की वैदिक परिकल्पना,* प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 2008

41. *विज्ञान और प्रौद्योगिकी* (कक्षा 10), राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2003

42. वेदालंकार, आचार्य जयदेव, *उपनिषदों का तत्त्वज्ञान* (समालोचनात्मक दार्शनिक विवेचन), भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 2001
43. वैदिक, वेदवती, *उपनिषद् वाङ्मयः विविध आयाम,* नाग प्रकाशन, दिल्ली, 1997
44. शर्मा, दामोदर, व्यास हरिश्चन्द्र, *आधुनिक जीवन और पर्यावरण,* प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1991
45. स्वामि, विद्यानन्द सरस्वती, *अध्यात्म–मीमांसा,* सुषमा प्रकाशन, दिल्ली, 1999
46. स्वामि, महात्मा नारायण, *उपनिषद् रहस्य* (एकादशोपनिषद्), विजय कुमार गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली, 2009
47. सरस्वती, दयानन्द, *उपनिषत्समुच्चय,* चौधरी एण्ड सन्स, बनारस, 1933
48. सिद्धान्तालंकार, सत्यव्रत, *उपनिषद् प्रकाश,* विजय कृष्ण लखनपाल, नई दिल्ली
49. सिद्धान्तालंकार, सत्यव्रत, *वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार,* विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली, 2002
50. सिंह, वीरेन्द्रपाल, *उपनिषद्–दर्शन,* पंकज पब्लिकेशन, दिल्ली, 1994
51. सोनी, सुरेश, *भारत में विज्ञान की उज्ज्वल परम्परा,* अर्चना प्रकाशन, भोपाल, 2008
52. शर्मा, डॉ. उर्मिला (अनु.), *वेद व विज्ञान,* विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1992
53. शुक्ल, नित्यानंद, *ब्राह्मण ग्रन्थों में सृष्टि विचार,* कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 1983
54. शास्त्री, डॉ मंगलदेव, *भारतीय संस्कृति का विकास औपनिषद् धारा,* भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी 1966

अंग्रेजी–

1. Aurobindo, Sri, *Kenopanisad*, Reprint (Pondicherry, 1970)
2. Bali, Suryakant (ed.), *Historical and Critical studies in the Atharvaveda,* Nag Publishers, Delhi, 1981
3. Besant, Annie, *The Wisdom of Upanisads*, Pub.The Theosophical publishing House:1990
4. Belwalker, S.K. Ranade, *History of Indian Philosophy*,Poona 1927
5. Chaubey, Braj Bihari, *The New Vedic Selection,* Bhartiya Vidya Prakashan, Varanasi, 1972
6. Chakravarty,S.C., *The Philosophy of the Upanishads*, New Delhi 1992

7. Dwivedi, O.P., *World Religion and Environment*, Gitanjali Publishing House, New Delhi (India), First Published in 1989
8. Deussen, Paul, *The Philosophy of the Upanishads*, New York 1966
9. Deussen, Paul, *Sixty Upanishads of the Veds*, Vol.I and II, Delhi 1980
10. Deshpande, Dhananjay, *MODERN SCIENCES IN VEDAS,* BHARATIYA VIDYA BHAWAN, MUMBAI, 2007
11. DAKSHINAMURTI, CHIRRAVURI, *ORIGIN OF UNIVERSE VEDIC APPROCH,* BHARTIYA VIDHYA BHAWAN, MUMBI, 2004
12. Esq Colebrook, H.T., *Essays on the Religion and Philosophy of Hindus*,Ashok Publications, New Delhi 1978
13. Frawley, David, *The Creative Vision of the Early Upanisads,* Rajshri Printers, Madras 1982
14. Ghatak, Ajoy, *Albert Einstein, a glimpse of his life*, philosophy and Science, viva Books, New Delhi, 2011
15. Gadker, Gajendra K.V., *New Upanisadic Philosophy*, Bombay 1959
16. Gough,A.E., *The Philosophy of the Upanishads*, Delhi 1975
17. Hume Rebrot Earnest, *The Thirteen Principal Upanishads,*1931
18. Jha,V.N., *Environmental conciousness in the Sanskrit literature*, center of advance study, Pune, Maharastra
19. Kalam, A. P. J., Abdul, *Ignited Minds,* Penguin books, India, 2002
20. Kar, Namita, *Humanistic Trends in Some principal Upanishads,* Delhi 1980
21. Keith, A.B., *Ancient India Education*, Oxford University Press, 1942
22. LOVELOCK, JAMES, *HEALING GAIA,* Harmony Books, New York, 1991
23. LOVELOCK, JAMES, *THE AGES OF GAIA: A Biography of our living Earth,* New York, Norton, 1995
24. LOVELOCK, JAMES, *GAIA: A NEW LOOK AT LIFE ON EARTH,* Oxford University Press, 2000
25. LOVELOCK, JAMES, *HOMAGE TO GAIA: The life on an Independent Scientist,* Oxford University Press, 2001
26. LOVELOCK, JAMES, *THE REVENGE OF GAIA: Why the Earth is Fighting Back and how we can still same Humanity,* Santa Barbar CA; Allen lane 2007
27. LOVELOCK, JAMES, *THE VANISHING FACE OF GAIA AGES OF GAIA: A Final Warning,* NY:Basic Books, New York
28. Mahadevan, T.M.P, *The Upanisads*, Bharitiya Kala Prakashan, Delhi: 2004

29. Margulis, lynn, *Gaia: The Living Earth, Dialogue with Fritjof Capra*, The Elmwood News Letter, Berkeley, Cal., Vol. 5, 1989
30. Mukhopadhyaya, Gobind Pal, *Studies In The Upanisads*, Calcutta:1960
31. Mukhopadhyaya, G.G., *Studies In the Upanisads*, Calcutta: 1960
32. Murthy, S. R. N. , *Vedic View of the Earth-A Geographical Insight into the Vedas,* D.K. Printworld (P) Ltd., New Delhi, 1997
33. Maxmuller,F., *The Upanishads,* vol I and XV, Delhi 1975
34. Prime, Ranchor, *Hinduism and Ecology Seeds of Truth*, Cassell Publishers Limited, New York, Reprinted 1996
35. Patwardhan, K.A.,*Upanishad and Modern Biology,* Bombay 1957
36. Ranade, R.D. , *A Constructive Survey of Indian Philosophy,* Poona 1926
37. SHARMA, BALDEV RAJ, *The concept of Atman in the Principal Upanisads*, DINESH PUBLICATIONS,NEW DELHI-15
38. Sprentak,Charlene, *Lost Goddess of Early Greece*, Moon Books, 1978
39. Swami, Abhedanada, *Philosophy and Religion,*Calcutta 1951
40. Sharma Maan, *Life in the Upanishads, Delhi 1985*
41. S.RADHAKRISHNAN, *THE PRINCIPAL UPANISADS*, Harper Collins Publishers, Uttar Predesh, 2011
42. Vannucci, M., *Human Ecology in the Vedas*, D. K. Printword (P) Ltd., New Delhi, Frist Published in India, 1999
43. Vernadsky, Vladimir, *The Biosphere*, (Reprint) Synergetic Press, Oracle, Arizona, 1986

(ग) कोष एवं विश्वकोष ***(Dictionaries and Encyclopaedias):***

संस्कृत–हिन्दी–

1. *अमरकोश,* अमरसिंह, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1961
2. *'उणादिसूत्रव्याख्या' उणादिकोष,* दयानन्द सरस्वती, अजमेर, सं. 2021
3. *उपनिषद्–वाक्य–महाकोश,* एस. गजानन शम्भु सधाले, श्री सतगुरू पब्लिकेशन, दिल्ली, 1940–41
4. न्यायकोश; भीमाचार्य झलकीकर, भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीव्यूट, पूना 1978

5. *भारतीय दर्शन बृहत्कोश* (खण्ड–7), बच्चूलाल अवस्थी, शारदा पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2005
6. *भारतीय संस्कृति कोश,* (सं.) देवेन्द्र मिश्रा, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2006
7. *मेदिनीकोष,* मेदिनीकार, काशी, संस्कृत सीरीज, बनारस, 1916
8. *वाचस्पत्यम्,* चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला, वाराणसी, 1969
9. *वाचस्पत्यम्,* तारानाथतर्कवाचस्पतिभट्टाचार्यः, चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी, 2026 (सं.)
10. *वैदिक निर्वचन कोष,* डॉ जियालाल, जे.पी. पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2000
11. *वैदिक इण्डेक्स,* मैकडॉनल और कीथ, (अनु.) डॉ. रामकुमार राय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1962
12. *वैदिक ऋषि–देवतानुसारी मन्त्रानुक्रमकोषः,* (सम्पा.) रविप्रकाश आर्य, इण्डियन फाउण्डेशन फॉर वैदिक साइन्स, रोहतक, (प्र.सं.) 2004
13. *वैदिक–कोशः,* भगवद्दत एवं हंसराज, विश्वभारती अनुसन्धान परिषद्, ज्ञानपुर, वाराणसी, 1926
14. *वैदिक–कोश,* चन्द्रशेखर उपाध्याय एवं अनिल कुमार, नाग प्रकाशन, दिल्ली, 1995
15. *वैदिक–कोश (दयानंद भाष्याधारित),* पं. राजवीर शास्त्री, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, 1999
16. *वैदिक निघण्टु संङ्ग्रह,* (सं.) धर्मवीर विद्यावारिधि, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ (सोनीपत), 1989
17. *वैदिक निर्वचन कोष,* डॉ. जियालाल कम्बोज, जे. पी. पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2000
18. *शब्दकल्पद्रुम,* राजाराधाकान्त देव, चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला, वाराणसी, 1969
19. *शांकरवेदान्तकोश,* डॉ मुरलीधर पाण्डेय, वाराणसी, 1998
20. *संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश,* वामन शिवराम आप्टे, रचना प्रकाशन, जयपुर, 2006
21. *हिन्दी विश्व कोश* (1–12 खण्ड), (सं.) कमलापति त्रिपाठी, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1970

अंग्रेजी–

1. *A Concordance to the Principal Upanishads and Bhagavadgita*, Colonel G.A. Jacob, Motilal Banarasidas, Delhi, 1999
2. *Encyclopedia of Indian Philosophy*, Vol.1, Karl H. Potter, Motilal Banarasidas, Delhi, 1995
3. *Encyclopaedia Britannica, Micropaedia* (vol.1-10), Helen Heminqway, Benton, ed:15th, 1973-74
4. *Encyclopaedia of Indian Philosophy, Vol. 1, Karl H. Potter, Motilal Banarasidas, Delhi, 1995*
5. Encyclopaedia of Vedanta,Sharma, Ram Murti, Eastern Book Linkers, Delhi, 1993
6. *English-Sanskrit- Dictionary,* (Reprint edition) Monier Williams, Munshi Ram Manohar Lal, Delhi
7. *Sanskrit-English Dictionary*, Monier William, Sharda Publishing House, Delhi, 2005
8. *The Encyclopedia of Philosophy*, Vol.3, Editor in chief-Paul Edwards, Collier Macmillan Limited, London, 1967
9. Upanishad Vakya Kosha" Concordance To The Principal Upanishads And Bhagavita, George Adolphus Jacob, Motilal Banarsidass Pub. 1986, page 1982
10. *Vedic Index of Names and Subjects*, A. A. Macdonell & Keith, Motilal Banarsidas, Delhi, 1982
11. *Vedique Biblliographie*, Louis Renou (ed.) R.N. Dandekar, Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona

(घ) शोध प्रबन्ध (Research Work)-

1. Borah, Surjya Kamal, *Epistemology in Kathopanisad*, Special centre for Sanskrit studies, Jawaharlal Nehru University: 2006
2. Borah, Surjya Kamal, *Epistemology in The Principle Upanisads*, Special centre for Sanskrit studies, Jawaharlal Nehru University: 2011
3. Jha, Dr. Ram Nath, *An Epistemological Study of Shankarbhashaya on prasthantrayi*, Sanskrit Department, Delhi University, 2000

4. Sarongi, Sasmita, *Religion and Ecology*: a Sociological Study With Reference to the Major Religious in India, Jawaharlal Nehru University, 1996
5. उपाध्याय, प्रियंका, *प्रमुख उपनिषदों में गहन पारिस्थितिकीय चिन्तन,* विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 2013
6. मेहर, सुरेश्वर *भारतीय दर्शन एवं विज्ञान में सृष्टि संरचना का अनुशीलन ('जगदीश चन्द्र हसीजा–कृत अविनाशी विश्व–नाटक' के विशेष परिपेक्ष्य में),* विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 2012
7. राजपूत, मोहन सिंह, *शांकरवेदान्त में गहन पारिस्थितिकीय चिन्तन,* विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय 2013

(ङ) शोध पत्र एवं पत्रिकाएं :

1. Barua, Arati, *Schopenhauer in the light of Indian philosophy: With a Special reference to Shankar's Advita vedanta*
2. Bhattacharya, umeshchanra, *"The home of the upanisads"* Indian Antiquary 1928, Vol. 57, page 166-185
3. Bhattacharya, umeshchanra, *"The Teaching of Upanisads"* Kalkata review, Vol. 3, page 51-62
4. Bodas, M.R., *"A Brief survey of the upanisads"* Journal of Bombay Branch of the Royal Asiatic Society, 1908, Vol. 22, page 67-80
5. Jha, R.N., *"Modeling Conciousness in Upanishads"* centre in Advance Study Pune University 2012
6. Jha, R.N., *"The Philosophy of Upanisads and Taoism"* Prevelling in Korean Culture in the 8th Pacific and Asia conference on Korean Studies Organized by Special centre for Sanskrit studies, Jawaharlal Nehru University from 15-17 December
7. Kumar Shashi prabha, " *Sankara on kena Upanisad*" Journal of Indian council of Philosophical Research, 17(1); pp 126-133, Delhi 1999
8. Kumar Shashiprabha, *"Vedic conception of Human Body"* paper presented at Ist Asian Philosophy Congress Organized by ICPR at JNU, during March 6-9, 2010

9. Narahari,H.G., "*On the Origin of the Upanisadic Thought"* Puna Orientalist, Vol. 6, 1941, page 139-148
10. *Bhartiya Vidya*, Bhartiya Vidya Bhawan, Bombey
11. *India and Korea Thought The Ages: Historical, Religious & cultural perspectives*, Manak Publications PVT LTD, first ed. 2009, ISBN. 978-81-7831-178-4
12. *International Journal of Dayanand Vedpith*, Delhi
13. *Man and Environment,* India Society for Prehistoric and Quaternary Studies, editor-V.N.Mishra
14. *Nature Reviews*, Nature Publishing Group, USA.
15. *Vishwa Jyoti*, Vedic Sodha Sansthan, Hoshiarpur
16. *The Symbology of a Sacrificial Horse in Brihdaranyaka Upanishad*,V.P.Bhatta, AIOC, 1969 P.P.226
17. *Conception of God in the Mundakopanishad*, Bitai,Ramesh Chandra, (JR. of the Bombay branch of the Royal Astatic Society 1908 Vo.2, P.67-80)
18. *आधुनिक युग और उपनिषद् दर्शन,* स्टडीज इन इन्डोलोजी एण्ड म्युजिकोलोजी, डॉ. पी. एन.कवठेकर फेलिसिटेशन वाल्यूम, दिल्ली, 1993
19. *महास्विनी,* प्रधान सम्पादक आचार्य हरेकृष्ण शतपथी, षाण्मासिक शोध पत्रिका, राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठम् , तिरुपतिः, आन्ध्रप्रदेशः ।

(च)अन्तर्जालीय स्रोत *(Internet Sources):*

1. http://www.en.wikipedia.org/wiki/deep-ecology
2. http://www.lifepositive.com/mind/philosophy/gaia
3. http://www.nanotechnology.com/
4. https://hi.wikipedia.org/s/6fuu
5. http://hi.wikipedia.org/s/32t
6. https://hi.wikipedia.org/wiki/विशिष्ट_आपेक्षिकता
7. http://hi.wikipedia.org/wiki/तरंग–कण_द्वैधता
8. http://hi.wikipedia.org/wiki/कण_भौतिकी
9. https://en.wikipedia.org/wiki/Wave%E2%80%93particle_duality